सृजन रचना निर्माण

विद्यार्थी
कुछ भी हो सकता है
देश द्रोही नहीं
कदापि
नहीं

सृजन रचना निर्माण

छात्र विक्षोभ

सम्पादक

कृष्णवीर द्रोण

उत्तिष्ठत् जाग्रत् प्राप्य वरान्निबोधत् ।

[राजस्थान शिक्षक संघ, शाखा-जिला जयपुर, के अधिकार द्वारा प्रकाशित]

प्रकाशक

अनुपम प्रकाशन

जयपुर

प्रकाशक मोहनलाल जैन
संचालक
अनुपम प्रकाशन
चौड़ा रास्ता, जयपुर
प्रथम संस्करण १९६९
मूल्य : पाँच रुपये पचास पैसे
आवरण-सज्जा '[illegible],' उदयपुर
मुद्रक [illegible] प्रिन्टर्स, जयपुर

भारत
के
तेजस्वी युवा छात्रो को,
जिन का प्रखर मानस,
राष्ट्र–निर्माण के पुनीत,
कार्य
के
हेतु
समर्पित
है
●

अनुक्रम

प्रथम खण्ड 'लेख'

द्वितीय . खण्ड 'भेट-वार्तायें'

तृतीय खण्ड 'विचार-बिन्दु'

हमारी बात

•

राष्ट्र-व्यापी किंवा विश्व-व्यापी छात्र-आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य मे 'राजस्थान शिक्षक सघ' (शाखा-जिला जयपुर) की ओर से हमारी यह पुस्तक "छात्र-विक्षोभ" शिक्षा-जगत की सेवा मे प्रस्तुत की जा रही है। हमारा 'विश्व परिप्रेक्ष्य' से तात्पर्य यह नही है कि यह पुस्तक सारे विश्व मे युवक हृदय के आन्तरिक एव वाह्य आन्दोलित स्पन्दनो की प्रतिध्वनि सुनाने की चेष्टा करती है, ऐसा कहना हमारी पुस्तक की सीमा के बाहर की बात होगी। वस्तुत. हमारा तात्पर्य यह है कि विश्व भर के अशान्त युवा-मानस के समानान्तर भारतीय युवक के मन की पीडा, बेचैनी, आकुलता तथा छटपटाहट को सोचने-समझने का हमने यह छोटा सा प्रयास किया है। वैसे इस सन्दर्भ मे अन्य देशो के युवक-आन्दोलनो का भी यत्र-तत्र जिक्र आया है, परन्तु वह सब है हमारी अपनी समस्या को समझने और विश्लेपरण करने के हेतु ही।

इधर कुछ दिनो से यह सुनने में आता रहा है कि शिक्षक-सगठन आमतौर से अपने वेतन-स्तरों को ऊ चा उठाने, महगाई-भत्ता बढवाने एव ट्रेड-यूनियन जैसी गतिविधियों में प्रवृत्त हो रहा है, तथा देश का शिक्षक-वर्ग राष्ट्र की ज्वलत समस्याओं को सुलझाने, शैक्षणिक, साहित्यिक एव सास्कृतिक पुनरुत्थान जैसे पुनीत कार्यों के प्रति अपना अनिवार्य दायित्व नही निभा रहा। हमारी इस पुस्तक का प्रकाशन शैक्षणिक जगत की वर्तमान अनेक असंगतियों में एक विषम असगति (छात्र-असन्तोष) के समय शिक्षको के अपने विशेष उत्तर-दायित्व को अनुभव करने का ही प्रतिफलन है। यद्यपि इतने भर से ही भारत का शिक्षक अपने अन्य गुरुतर दायित्वो से मुक्त नही हो जाता, तथापि 'बूंद-बूंद से घट भरे' के अनुसार अपनी व्यक्तिगत कठिनाइयो के बावजूद वह (शिक्षक) अपने नाराज, व्याकुल एव रूठे विद्यार्थी को मनाने, उसमे आत्म-विश्वास, आस्था तथा शान्ति लाने के कर्त्तव्य से विमुख नही हुआ है। शिक्षक यह भी नहीं भूला है कि राष्ट्रीय-उद्‌बोधन, जन-जाग्रति एव सेवा का कार्य भी उसी को सम्पादित करना है। देश मे लोक-राज्य के स्थान पर नौकर-शाही के बढते हुए कदम, हमारी शिक्षा-व्यवस्था की लक्ष्यहीनता, राष्ट्रीय

जीवन की प्राथमिकताओ मे शिक्षा की सर्वोच्चता के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति जैसी परिस्थितियो मे आज उसका कार्य–भार और अधिक बढ जाता है।

शिक्षक समाज अपने आत्मबल तथा ज्ञान को ही अपनी शक्ति मानकर चलता है और इसी कारण वह ट्रेड–यूनियनो से अपनी शक्ति सिंचित करने की बात नही सोचता। लेकिन इसका यह भी तात्पर्य नही लगाना चाहिये कि आज का शिक्षक वर्तमान यथार्थ को झुठलाकर अ धी भावुकतावश अपने मानवोचित अधिकारो की ओर से आँखे मूंद लेगा। कर्तव्य के साथ-साथ अपने अधिकार को भी न पहचानना पाप माना गया है। रही "ट्रेड–यूनियन भावना" की बात, सो अध्यापक अपने परम्परागत विनीत–भाव से सबके परामर्श को सुनेगा व समझेगा, परन्तु करेगा वही जो उसके अन्तरतम का "जाग्रत गुरु" उसे सदेश दे रहा है। वह भलीभाति जानता है कि परामर्श देने, समाज–व्यवस्था को नयी दिशा देने, परम्परागत शब्दो और वाक्यो–सूत्रो को नवयुग के सन्दर्भों की छाया मे नवीन अर्थ, अर्थ का नवीन विश्लेषण और विश्लेषण का नवीन सश्लेषण करने का कार्य सृष्टि के जागरण से उसी का रहा है। अतः उसे 'ट्रेड–यूनियनिज़म' का क्या अर्थ ग्रहण करना है, यह भलिभाँति स्पष्ट है।

इसमे सन्देह की कोई बात ही नही है कि शिक्षक वही करेगा, जो उसके देश व मानव-जाति की शिक्षा, कला, साहित्य तथा सस्कृति के उत्थान एव सत्य, शिवं, सुन्दरम् की कल्पना के अनुरूप होगा। राष्ट्र–सेवा के महत् कार्य के लिये भारत का शिक्षक कटिबद्ध है, जागरूक है, और यही हमारे 'शिक्षक सघ' के निर्माण का भी अन्तिम लक्ष्य है, अन्तिम सकल्प है।

इस पुस्तक के प्रकाशन के बारे मे भी कुछ कहना अप्रासगिक न होगा। कुछ समय पूर्व हमारे ही कुछ शिक्षक-बन्धुओ ने जब सारे देश मे चल रहे छात्र–आन्दोलन का जिक्र मुझ से किया एव इस विषय पर एक पुस्तक प्रकाशित करने और मुझ से उसके सम्पादन–कार्य को सम्भालने की बात कही तो मैने बडे आनन्द-भाव से इस कार्य को स्वीकार कर लिया। वैसे वर्षों तक अध्यापन-कार्य करने, छात्र-जीवन के अति निकट रहने, उनके मनोभावो को समीप से पढने-समझने, उत्कट राष्ट्रप्रेमी युवा-छात्रो से सम्पर्क बनाये रखने तथा हडताली छात्रो को समझाने-बुझाने के अध्यापकीय कर्त्तव्यो को करने का मुझे सुअवसर प्राप्त होता रहा है। इधर छात्र-आन्दोलन के प्रश्न को लेकर मेरा एक लेख—"फूलो का विद्रोह कौन बल रोकेगा"

'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' (१२ मार्च, १९६७) मे प्रकाशित हुआ ही था । इन सब कारणो से मेरे स्वय के मन मे इस दिशा मे कुछ विशेष करने की एक बलवती भावना भी मुझे कुछ समय से प्रेरित कर रही थी । इन सब परिस्थितियो मे मैंने पुस्तक-सम्पादन का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया । लेकिन आज मै अनुभव करता हूँ कि जोश के साथ होश नही खोना चाहिये। मुझे अपनी परिस्थितियो मे यह कार्य स्वीकार नहीं करना चाहिये था, क्योंकि कोई भी कार्य यदि ठीक प्रकार से किया जाय तो अत्यन्त कष्टप्रद होता है । लेकिन मैं इस तथ्य को भी नही अस्वीकारता कि एक अच्छा कार्य स्वय मे एक आनन्द है, एक पुरस्कार है।

अन्त मे हम यह भी बता देना उचित समझते हैं कि इस पुस्तक से शिक्षक सघ को जो भी आय प्राप्त होगी, वह शिक्षक-कल्याण तथा शैक्षणिक एव साहित्यिक-गतिविधियो के हेतु ही व्यय की जायगी।

कृतज्ञता—

एक बात जो कहीं अधिक महत्वपूर्ण है—मैं शिक्षक–सघ की ओर से उन सभी विद्वानो को जिन्होंने हमारी प्रार्थना पर अपने लेख भेजने का कष्ट किया, अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करता हूँ । साथ ही भेंट— वार्ताओं मे अपना बहुमूल्य समय देने वाले सज्जनों को भी मैं उनके कष्ट के लिये हार्दिक धन्यवाद देता हूं । मैं श्रीमती ऊषा चरणजीतराय के प्रति भी आभार प्रगट करता हूं, कि जिन्होंने आर्थिक सहयोग देकर शिक्षक–सघ को कृतार्थ किया। राजस्थान विधान सभा के अध्यक्ष श्री आचार्य महोदय एव शिक्षा मंत्री श्री शिवचरण माथुर के प्रति मैं अपनी· विशेष कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, कि जिन्होंने अपनी उदयपुर–यात्रा के अत्यन्त व्यस्त कार्यक्रम मे से भी अपना मूल्यवान समय निकालकर अपने विचार प्रदान किये तथा इस पुस्तक की प्रकाशन–योजना के प्रति सदैव ही अत्यन्त उत्साहजनक भाव व्यक्त किये । डा० राजकृष्ण की भी इस ओर विशेष कृपा रही है, जिन्होंने अपनी दो–दो विदेश यात्राओं मे से भी अपना समय निकाल कर अपने विचार प्रदान किये। जयपुर मेडिकल कॉलेज के छात्र–बन्धुओ से तो मैं उऋण हो ही नही सकता, जिन्होंने न केवल आधी रात्रि तक अपने विचारों से मुझको अवगत कराया, बल्कि चाय बना–बना कर भी पिलाई। श्री आनन्द कश्यप, श्री शिवलहरी शर्मा, डॉ० नेमीचन्द श्रीमाल, श्री महावीर सिंहल, श्री जगदीश व्यास एव श्री भगवतीलाल व्यास के प्रति भी मैं अपना हार्दिक धन्यवाद प्रगट करता हूँ,

जिनका मनसा–वाचा–कर्मणा सहयोग हमे प्राप्त होता रहा है। पुस्तक की आवरण-सज्जा के लिये मैं विशेषरूप से उदयपुर विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री ओम उपाध्याय तथा विद्या–भवन, शिक्षक महाविद्यालय उदयपुर के दृश्य–श्रव्य शाखा के श्री गौरीशकर शर्मा के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रगट करता हूँ।

श्री जे. पी नायक, प्रो० एम वी माथुर, डॉ० मोहनसिंह मेहता की उदारता को भी मैं भुला नही सकता जिन्होंने अपनी मजबूरियो की चिन्ता न कर अपने विचार देकर हमारा उत्साह–वर्धन किया। श्री ओमप्रकाश यादव के अतिरिक्त राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय घाटगेट, जयपुर के अध्यापक श्री सुरेन्द्रदेव शर्मा, श्री के० पी० शर्मा, श्री भारत भूषण भटनागर तथा श्री रामेश्वर दयाल पारीक के प्रति मे अपना स्नेहसिक्तआभार प्रदर्शित करता हूँ, जिनकी अनवरत भागदौड के परिणाम स्वरूप यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है। वैसे तो यह पुस्तक ही उनकी अपनी है, परन्तु औपचारिकता के नाते जयपुर जिला शिक्षक–सघ के गत वर्ष तथा इस वर्ष की कार्यकारिणी के सभी सदस्यो (विशेषत. अध्यक्ष महोदय, श्री नाथूलाल शर्मा एव मत्री महोदय, श्री रामस्वरूप गुप्ता) के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रगट करना चाहूँगा, जिन्होंने मुझे इस गम्भीर कार्य के लिए योग्य समझा।

प्रकाशक महोदय, श्री मोहनलाल जैन के प्रति भी मै अपनी कृतज्ञता प्रगट करना न भूलूँगा जो इस सारी प्रकाशन गतिविधि मे उदार एव सहयोगी रहे हैं। राज० उ० प्रा० विद्यालय, जयपुर के शिक्षक भाई दुर्गालाल यादव तथा श्री रुदेशचन्द्र शर्मा के प्रति मैं अपने कृतज्ञताभाव प्रगट करने मे असमर्थ हूँ, जिनकी निष्ठा और परिश्रम के कारण ही इस पुस्तक का प्रकाशन सम्भव हो सका है।

अन्त मे उन सभी हजारो लाखो अध्यापको के प्रति मैं शिक्षक सघ की ओर से अपने श्रद्धा–सुमन समर्पित करता हूँ, जिनकी प्रेरणा और सम्बल से यह कार्य सम्पन्न हो सका है। पुस्तक मे सम्पादक अथवा संघ का कुछ भी नहीं है, सभी कुछ दूर-दूर तक फैले उन अज्ञात एवं अपरिचित शिक्षक बन्धुओ का ही है, जो गांव-गांव तथा शहर शहर मे अपनी कठिनाइयो की चिन्ता न कर देश के बाल-गोपालो की मुस्कानो मे फूल खिलाते हुए, राष्ट्रोत्थान के पुनीतकार्य मे जुटे हुए हैं।

—सम्पादक

सम्पादकीय भूमिका

छात्र परिवेदन के इस काल मे, जबकि भारतीय राष्ट्र का हृदय धधक उठा है, सतत् जागरूकता का यह तकाजा है कि हम अपनी बौद्धिकता और चेतना को एक बार पुनः जाग्रत करें। एक समूची पीढी, जिसका जीवन ही उद्वेलन का पर्याय हो चला है, के मानस-छायाचित्रो, उसके अन्तराल के बिम्ब-प्रतिबिम्बों की भूमिका के रूप मे यह पुस्तक प्रबुद्ध चिन्तकों के समक्ष प्रस्तुत है।

पुस्तक को तीन खण्डो—'लेख', 'भेंट-वार्तायें', तथा 'विचार-बिन्दु' मे विभाजित किया गया है। प्रथम खण्ड के अन्तर्गत समस्या के मूल मे पहुँचने की दृष्टि से देश के लब्धप्रतिष्ठ शिक्षा-शास्त्रियों, अध्यापको, शिक्षा-अधिकारियो, समाज-शास्त्रियो, मनोवैज्ञानियो तथा समाज सेवियो के लेख रखे गये हैं। यद्यपि आज हमारे विद्यार्थी का नवीनता के प्रति ज़बरदस्त आकर्षण है, तथापि उसकी मानसिक परम्परा प्राचीनता से वैसी ही चिपकी हुई है, जैसे—तने से छाल। छाल उतारने की भारी कोशिश है, परन्तु पतली झिल्लीदार छाल फिर भी चिपकी रह जाती है। बस, यही झिल्लीदार पतली छाल सारे विक्षोभ और अन्तर्द्वन्द्व के मूल में है। पुरातन से मोह-भंग हो गया है, लेकिन वह भी छुड़ाये छूटता नहीं। नवीन मूल्यो को स्वीकृति (Sanction) अभी प्राप्त हो नही सकी है। अतः इसी पुरातन-नवीन की पृष्ठभूमि मे हमने लेखों का सकलन किया है। कुछ विचार यद्यपि अत्यन्त पुरातनतावादी एव परम्परागत जैसे प्रतीत हो सकते हैं, परन्तु समस्या को विवस्त्र करने की दृष्टि से यह आवश्यक ही प्रतीत हुआ है। असल मे तो हमें जिस विद्यार्थी का अध्ययन करना है वह 'भारत का विद्यार्थी' है, जिसके मन में शताब्दियो पुरानी धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्मृतियों की परतें जमी हुई हैं। मेरा उन लोगों से मतभेद है जो इस विद्यार्थी को पाश्चात्य-जगत के मापदण्डों से परखने की चेष्टा कर रहे हैं।

दूसरे खण्ड मे अध्यापको, आन्दोलनकारी विद्यार्थियों, सरक्षको, पुलिस तथा शिक्षा अधिकारियो एव देश के प्रमुख राजनीतिक दलो के नेताओ की

भेंट-वार्तायें सम्मिलित की गई हैं। मेरी जानकारी मे मेरे चतुर्दिक जब कभी कोई उत्तेजनापूर्ण घटना शिक्षा-जगत मे घटी है, तो मैंने अविलम्ब सम्बन्धित व्यक्तियो की मनोभूमि को उनके असल रूप मे ग्रहण करने की दृष्टि से उनके पास पहुँचने का यथासम्भव प्रयास किया है। भेंट-वार्ताओं के सम्बन्ध मे इस बात की विशेष सावधानी रखी गयी है, कि वे नितान्त अनौपचारिक वातावरण मे आयोजित की जांय, जिससे सामयिक उद्वेलित भावनाओ तथा विचारो के कालगत तापक्रम को सही-सही नापा जा सके। सम्पादक को यह प्रसन्नता है कि उसको ऐसे 'उत्तेजित स्थलों' की "On the spot study" करने का अवसर प्राप्त हो सका है। हमारा विश्वास है कि विद्यार्थी-आन्दोलन मे सम्बन्धित उन कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यक्तियों के विचार, जो हमारी समस्या को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्पर्श कर रहे हैं, हम भेंट-वार्ताओ के द्वारा पाठको तक पहुँचाने मे कदाचित् सफल हो सकेंगे।

पुस्तक के अन्तिम भाग—"विचार-बिन्दु" मे हम उन विद्वानो के दृष्टि-बिन्दुओ को प्रस्तुत कर रहे हैं, जिन्हे उन्होने सारगर्भित लघु रूप मे अभिव्यक्त किया है।

वैसे तो सभी विचारको ने अपने-अपने मौलिक दृष्टिकोण इस समस्या के बारे मे प्रकट किये हैं, परन्तु आमतौर पर यह धारणा सब से प्रबल है कि विद्यार्थी-आन्दोलन के लिये विद्यार्थी को दोष नही दिया जाना चाहिये, बल्कि इसके लिये देश की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक एवं सास्कृतिक परिस्थितियों को ही उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। श्री वाई. वी दामले, डॉ० वी. के. आर. वी राव, श्री बालकृष्ण नेमा एव डॉ०रुहेला का मत है कि राजनीतिक परिवर्तन तथा औद्योगिक तकनीकीकरण के कारण देश के युवको के मनों मे से परम्परागत जीवन-मूल्यो, सास्कृतिक एवं सामाजिक स्थापनाओं से आस्था उठ गई है, परन्तु अभी नवीन मूल्य स्थापित हो नही पाये हैं। अत यह दो विरोधी मूल्यों का सघर्ष-काल है। श्री जे. पी. नायक एव डॉ० राव का यह कथन भी उचित है कि स्वतन्त्रता के बाद कुछ छात्र विद्यालयो मे ऐसे परिवारों से आये हैं, जिनमे शैक्षणिक परपरायें नही रही हैं। अत' ऐसे छात्र शहरी वातावरण से अपना सामजस्य नही बिठा पाते। प्रो० नेमा इस असन्तोष को छात्र-असन्तोष न कह कर एक विशेष आयु-वर्ग (१५ से २५ वर्ष) के युवकों का सामान्य असन्तोष मानते हैं।

श्री ब्रजनन्दन के विचार से छात्र-असन्तोष विगत महायुद्धों के स्नायुविक तनाव तथा पाश्चात्य कुण्ठा (जो भारत मे भी आयात हो रही है) का परिणाम हैं। डॉ० राव का मत है (और मैं भी इमसे सहमत हूँ) कि गत महायुद्धों ने नव-पीढी के मानस मे प्रौढ़ों के विवेक के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न कर दी है। और साथ ही पुराने लोग ममाज की समस्त सुविधाओं को समेटकर बैठ गये हैं। इसी प्रकार के विचार मुझे जयपुर मैडिकल कॉलेज के छात्रो से भेंट करने पर मिले थे। श्री जे पी नायक के अनुसार भी नवीन और पुरानी पीढी के मध्य वैचारिक वैषम्य उत्पन्न हो गया है।

सभी विद्वान् इस विचार से सहमत है कि हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली दूषित है। डॉ० भगवानदास माहौर के अनुसार तो सारा का सारा वर्तमान छात्र-असन्तोष ही "पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में सन्निहित आन्तरिक विरोध" के रूप मे पनप रहा है। वे वर्तमान शिक्षक को "ऐजूकेशनल-लेबरर" तथा छात्र को "प्रमाण-पत्र धारी नौकर" की संज्ञा देते हैं। डॉ० माहौर, डॉ० रामविलास शर्मा, श्री रघुवीर प्रसाद भटनागर के अनुसार तो सच्चे समाजवाद की तथा डॉ० रामानन्द तिवारी के अनुमार सामाजिक सेवा-भाव की स्थापना द्वारा ही अनुशासन की स्थापना की जा सकती है। इस विषय मे मेरा स्वय का मत यह है कि 'वाद' कोई सा भी क्यो न हो, बिना 'लोक-राज्य' की भावना के समाज में स्थायी शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती।

शिक्षा-मन्त्री महोदय श्री शिवचरण माथुर का विचार है कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का सबसे बडा दोष यह है, कि इससे नौकरी करने की ही प्रेरणा मिलती है। उपन्यासकार श्री गुरुदत्त के अनुसार हमारी शिक्षा मन, बुद्धि और आत्मा का विकास नही करती। शिक्षार्थी मानव न बन कर "सरकारी मशीन के पुर्जे" के रूप मे ढलकर आता है। इसी कारण समाज में सर्वत्र हाहाकार है। उनका विचार है कि समाज के स्थान पर व्यक्ति-निर्माण पर अधिक बल दिया जाना चाहिये, क्योकि समाज भी तो व्यक्तियों से ही बनता है। श्री गुरुदत्त के विचार से डिग्री, डिप्लोमा तथा प्रमाण-पत्रों को देने की प्रथा समाप्त कर देनी चाहिये तथा शिक्षा-क्षेत्र से सरकारी हस्तक्षेप को सर्वथा हटा देना चाहिये। मेरे विचार से वर्तमान मे जब कि राज्य के स्वरूप को लोक-कल्याण के आदर्शों (Ideals of welfare state) पर गढा जा रहा है तथा जब व्यक्ति, समाज तथा राज्य की अन्योन्याश्रितता एक अनिवार्यता बनती जा रही है, तो व्यावहारिकता का एकमात्र यही तकाजा है कि हम शिक्षा की कुछ ऐसी व्यवस्था करें कि जिससे एक ओर तो

शैक्षणिक मनमानी (Educational Anarchy) को अवकाश न मिल सके, तो दूसरी ओर व्यक्ति के विचार-स्वातन्त्र्य, विशुद्ध ज्ञान एवं सत्य की ओर बढते हुए कदमो को किसी भी दशा मे अवरुद्ध न किया जा सके। ऐसी व्यवस्था नितान्त निस्वार्थता, सावधानी, सूक्ष्म एव गहन चिन्तनशीलता के वातावरण मे ही निर्मित हो सकती है।

सभी विद्वान् इस तथ्य को भी स्वीकारते हैं कि छात्रों को शिक्षा सम्बन्धी आवश्यक सुविधायें उपलब्ध नहीं हो पाती, अधिकाशत: शिक्षक भी योग्य नही हैं, विद्यार्थी और शिक्षक के बीच मधुर सम्बन्ध नही पनप पाते, तथा छात्रो के माता-पिताओ की आर्थिक दशा ठीक नही है। आचार्य निरन्जननाथ जी के अनुसार विद्यार्थी के माता-पिता भी अपना उत्तरदायित्व भलीभांति नही निभा रहे हैं। श्री जे पी. नायक का यह सुझाव भी काफी विचारणीय है कि शिक्षकों और विद्यार्थियों के मध्य मतैक्य का रहना अत्यन्त आवश्यक है, और इसको बनाये रखने के लिये किसी तीसरी मध्यस्थ कडी का विकास करना चाहिये, जो दो पक्षों के वीच उत्पन्न हुये भ्रमो को उत्पन्न न होने देने में अपना सहयोग प्रदान करे। मेरा स्वय का ऐसा विश्वास है कि सामयिक उपचार की दृष्टि से कोई भी साधन विकल्प के रूप में अपनाया जा सकता है, परन्तु अन्तत छात्र और शिक्षक को जोड़ने वाली बोध की कड़ी स्वयं शिक्षक और छात्र के अन्तरतम से विकसित होनी चाहिये, क्योंकि कोई भी तीसरे पक्ष मे इन दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित करने की सक्षम पात्रता नहीं है।

डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिघवी तथा श्री शिवचरण माथुर के अनुसार छात्रों को सक्रिय राजनीति मे भाग नही लेना चाहिये। उनके अनुसार देश की गतिविधि का वे ध्यान रखें, लेकिन उनका मुख्य लक्ष्य ज्ञानार्जन ही होना चाहिये। इसके विपरीत श्री रामानन्द अग्रवाल, मास्टर आदित्येन्द्र, तथा श्री माणिक्यलाल वर्मा,के अनुसार छात्रों को देश की ज्वलंत समस्याओं के समाधान हेतु सदैव अपने को प्रस्तुत करते रहना चाहिये। श्री भैरोंसिह शेखावत के अनुसार व्यावहारिक दृष्टि से "छात्रो का राजनीति से अलगाव" वाला "स्लोगन" (नारा) अब अर्थहीन हो गया है। डॉ० मथुरालाल शर्मा के अनुसार इस शताब्दी के प्रारम्भ से ही छात्रों मे अविनय का भाव जाग्रत हो चुका था। उनके विचार से स्वतन्त्रता-सग्राम मे जब अध्यापक किन्ही कारणो से राजनीति से अलग रहे, तो विद्यार्थियो के मनो मे उनके प्रति अश्रद्धा के भाव जाग्रत हो गये और वे भाव अभी भी चले आ रहे हैं। मेरा स्वय का

ऐसा मत है कि वर्तमान अध्यापक के प्रति श्रद्धा-भाव की कमी को डॉ० शर्मा के विचारों से सिद्ध करना बहुत दूर की कौडी मारना ही होगा। इसके लिये हमें वर्तमान की ओर ही अधिक देखना होगा।

डॉ० मुखर्जी, श्री राकेश दत्त त्रिवेदी, श्री विद्यासागर, श्री प्रभाकर माचवे, श्री ब्रजनन्दन, डॉ० सम्पूर्णानन्द, डॉ० गोविन्द चन्द पांडे तथा स्वतन्त्रपार्टी के श्री देवीसिंह मडावा के अनुसार देश के राजनीतिक दल छात्रो का उपयोग अपनी निजी स्वार्थ-सिद्धि हेतु कर रहे हैं, और यह स्थिति अहित-कर है। डॉ० सम्पूर्णानन्द का विचार है कि "समस्त दूषित प्रभावों के बावजूद छात्र-आन्दोलनों में राजनीतिक पार्टियोंका भाग लेना बहुत खतरनाक नही है ।" लेकिन यदि कोई राजनीतिक दल छात्र-आन्दोलन को अपनी राजनीतिक-रणनीति का अग बनाले, तो खतरा वास्तविक गहरा तथा दूरगामी बन जाता है।" प्रो० शम्भूसिंह मनोहर का मत है कि इस अनुशासन-हीनता को स्पष्ट सर्वाधिक प्रोत्साहन हमारे राजनेताओं से ही मिलता है। मेरे विचार से बात कुछ इस प्रकार है, कि हमारे समाज मे आज आकर्षण व आदर के दो ही केन्द्र रह गये प्रतीत होते हैं---राजनीति और धन। ऐसी स्थिति में जैसा आचरण राजनीति तथा धन-सम्पन्न वर्गों द्वारा किया जाता है वैसा ही नवयुवक भी करने की चेष्टा करता है।

प्रो० एम वी माथुर के अनुसार सिनेमा और डॉ० राजकृष्ण के अनुसार सिनेमा, रेडियो तथा सस्ता साहित्य भी आज युवको को आकृष्ट कर रहे हैं। मेरे मत से सिनेमा को मेरे द्वारा उल्लिखित दो "आकर्षण-केन्द्रों" से पृथक् तीसरा आकर्षण-केन्द्र नही माना जाना चाहिये, बल्कि इसे धन और राजनीति से प्राप्त शक्ति-वैभव वाले आकर्षण मे ही सम्मिलित करना चाहिये। बात यह है कि सिनेमा मे सैक्स, प्रेम, रोमास, धन, शक्ति आदि का जो प्रदर्शन किया जाता है, वह युवक के मन मे व्याप्त वैभव और पद-शक्ति की लिप्सा की कुण्ठित भावनाओं को परितृप्त करता है, यथार्थ मे तो इससे उन्हें वास्तविक शांति प्राप्त हो नहीं पाती। मैं तो इसे "मानसिक पलायन" ही कहूँगा। इस बात को उलट कर यो भी कहा जा सकता है कि जब वास्तविक जगत मे आज युवक को प्रेम, स्नेह, यौवन, आशा, साहस, त्याग, जीवट-प्रदर्शन के साधन तथा अह-परितृप्ति (जिसे श्री दामले ने "Problem of Identity" के नाम से पुकारा है) के माध्यम नही मिल पाते, तो वह उनकी खोज चल-चित्रो मे करता है। लेकिन कुल प्रभाव चल-चित्रों का भी अच्छा नही पडता। इन सस्ते मनोरजन के साधनो के विषय मे

डॉ० राजकृष्ण ने कहा है कि आज हमारे नवयुवक को अन्य किसी प्रेरणा-युक्त आकर्षण का स्थान उपलब्ध नही है, इसी कारण वह सिनेमा, रेडियो इत्यादि का ही आश्रय लेता है। मेरे मतानुसार वर्तमान परिस्थितियो के रहते सिनेमा का स्थान अन्य कोई वस्तु ले सके, यह तनिक कठिन सा ही लगता है। सिनेमा युवक की पुंजीभूत मानसिक कामनाओ को एक साथ तृप्त करता है, अत. इसका आकर्षण वडा दुराग्रही है। मेरी समझ मे सिनेमा का स्थान सिनेमा ही ले सकता है। अच्छा होगा यदि राज्य स्वय (अथवा अन्य सस्थाओ को आर्थिक सहायता प्रदान कर), युवक सिनेमा-गृह तथा युवक-फिल्मे तैयार करावें, जो प्रेम, साहस, त्याग, वलिदान की भावनाओ का सही मार्गान्तरीकरण अत्यन्त कलात्मक कौशल के साथ कर सकें। विना सरकारी सहायता के तथा विना 'वाक्स आफिस' की चिन्ता किये सामान्यत कोई भी इस योजना को प्रारम्भ करने का साहस नही ले सकता। वैसे तो मै समझता हूँ कि हमारे वर्तमान सामान्य चल-चित्रो की दिशा के वारे मे भी पुर्नविचार करना आवश्यक है।

कुछ विद्वानो का जैसे, डॉ० मथुरालाल शर्मा, प्रो० शम्भूसिंह मनोहर, श्री माणिक्यलाल वर्मा, मास्टर आदित्येन्द्र का विचार है कि छात्र-आन्दोलनो की परम्परा का वीज तो गाधीजी द्वारा असहयोग आन्दोलन मे छात्रो के आह्वान द्वारा डाला गया है। लेकिन डॉ० सिघवी, एडवर्ड शिल्स की मान्यता को स्वीकार करते हुये लिखते है कि "भारतीय विद्यार्थियो मे उथल-पुथल "सविनय अवज्ञा आन्दोलन' की परम्परा का परिणाम नही है ।" डॉ० सम्पूर्णानन्द भी कुछ इसी प्रकार कहते हैं कि "कुछ लोगो का विचार है कि हमने 'भारत छोडो' आन्दोलन मे छात्रो को सम्मिलित कर जो वीज-वपन किया है, आज उसी का फल हमे भुगतना पड रहा है।" परन्तु डॉ० साहव के अनुसार यह "अनुमान मतहीन और त्रुटि पूर्ण है ।" मत्री महोदय श्री शिवचरण माथुर का कथन है कि यह ठीक है कि गाधीजी ने छात्रो का आह्वान किया था, परन्तु आज हम गाधीजी के उच्च-लक्ष्यो व उनकी मानसिक तैयारी को तो भूल गये और कार्य करने के वाह्य क्रियात्मक पहलू को ही याद रख पाये हैं। काका कालेलकर साहेव का मत है कि गाधीजी ने हमे "अवज्ञा" करना तो वताया, लेकिन उसके साथ "सविनय" और "अहिंसा" जैसी "सर्वोच्च सस्कारिता और सज्जनता और जोड दी" परन्तु दुर्भाग्य की वात है कि अव लोग "अवज्ञा" को तो याद रख पाये हैं और "विनयशीलता" को भूल गये है। सम्पादक का विचार है कि वर्तमान परिस्थितियो में अब मात्र उपदेशो से

छात्र को राजनीति से नहीं बचाया जा सकता। अच्छा हो, समाज के आकर्षण के केन्द्र, जिनसे विद्यार्थी आदर्श ग्रहण कर रहा है, उन्हें उच्च-प्रेरणा दें तथा विद्यार्थियों की मूलभूत समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करें, तब ही कुछ सफलता की आशा की जा सकती है।

शिक्षा-प्रशासन मे दृढता की ओर डॉ० सम्पूर्णानन्द तथा श्री दी जॉन ने ध्यान आकर्षित किया है। डॉ० सम्पूर्णानन्द का कहना है कि छात्रों के साथ अनावश्यक ढिलाई न की जाय। इससे उनमे यह भावना उत्पन्न होती है कि वे कानून से ऊपर हैं। डॉ० साहब के विचार से "विश्वविद्यालयो तथा शिक्षण-सस्थाओ मे प्रॉक्टर-मजिस्ट्रेट नियुक्त करने की पद्धति पुन. लागू की जाय।" मेरे विचार से प्रशासनिक ढिलाई का सबसे बड़ा कारण यह है कि जब भी कोई प्रशासन उचित बात के लिये दृढता का रुख अपनाता है, तुरन्त उसमे राजनीतिक हस्तक्षेप होना प्रारम्भ हो जाता है। जब तक राजनीति जनता के वोटों को, बिना सिद्धान्तों पर ध्यान दिये, हर कीमत पर बटोरने के लिये भागती रहेगी, तब तक शासन मे दृढता आना दुष्कर ही प्रतीत होता है और बिना दृढ़ता के न्यायपूर्ण शासन चल नहीं सकता।

डॉ० सम्पूर्णानन्द जी ने छात्र-सघो के मामलो मे भी दृढता अपनाने की सलाह दी है। मेरा स्वय का अनुभव है कि छात्र-सघो की पद्धति जिन प्रजातान्त्रिक परम्पराओं को सीखने के पवित्र उद्देश्यो को लेकर प्रारम्भ की गयी थी, उनसे छात्रों का कोई विशेष वास्ता अब नही रहा। मेरे विचार से छात्र-सघ के सन्दर्भ मे निम्न विन्दुओं को दृष्टि मे रख कर विचार किया जा सकता है:—

(१) स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय की भव्य-गाथा छात्रो को याद है कि उनके वरिष्ठ छात्र बन्धुओं ने अपने नेताओ के साथ कंधे से कधा मिला कर स्वतन्त्रता प्राप्त की थी।

(२) स्वतन्त्रता के पश्चात् यदि उन्हें कुछ काल के लिये निश्चित जीवन प्राप्त हो पाता, तो उनकी भूतकालीन आन्दोलनकारी स्मृतियाँ धीरे-धीरे धूमिल होने लगती, लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

(३) देश मे प्रजातन्त्र की स्थापना हुई, जिसमे सत्य, समानता, स्वतन्त्रता, भ्रातृत्व तथा न्याय के नारे बुलन्द किये गये, लेकिन अपेक्षित 'यूटोपिअन-कल्पना' साकार न हो सकी।

(४) हमारे देश में प्रजातन्त्र की नींव के पत्थरो का निर्माण पाश्चात्य सिद्धान्तों और वहीं की परिस्थितियों की प्रेरणा के

अनुरूप ही विशेषत: हुआ। पाश्चात्य जीवन-दर्शन तथा वहाँ की राजनीतिक परम्परा सघर्ष, विरोध और स्पर्धा के आधार पर निर्मित हुई है। ठीक उसी प्रकार का दर्शन हमने अपनी राजनीति मे अपना लिया।

(५) देश मे वयस्क-मताधिकार के आधार पर शासन की नीव डाली गयी, जिसमे प्रत्येक व्यक्ति औचित्य एव अनौचित्य की ओर बिना ध्यान दिये अपनी योग्यता और अयोग्यता पर बिना विचार किये शासन व राजनीति मे अपना अधिकार जताने लगा।

(६) स्वतन्त्रता के पश्चात् नारे लगाने तथा माँग, प्रदर्शनो इत्यादि को सवैधानिक अधिकार के रूप मे मान लिया गया।

(७) माँगो को मनवाने के लिए राजनीतिक दलो तथा व्यवसायिक सगठनो द्वारा विरोध-प्रदर्शन करना जोरशोर से प्रारम्भ हुआ।

(८) राजनीतिक लाभ के लिये दलो द्वारा असैद्धान्तिक गठबन्धन के उदाहरण देखने-सुनने मे आने लगे।

(९) व्यवस्थापिका सभाओ मे आपसी अभद्र व्यवहार प्रारम्भ हो गये और अन्त मे,

(१०) छात्रो को अपना विद्यालयी छात्र-सगठन बनाने की सुविधा भी प्राप्त हो गयी।

अब यदि छात्र अपने असन्तोष के समय मे स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से पूर्व के छात्रो की विदेशी शासन से टक्कर लेने की बातें याद करें, प्रजातत्र द्वारा प्रदत्त सत्य, न्याय और समानता की माँग करें, अपने छात्र-सघो क चुनाव के समय उसी प्रकार के चुनाव के गलत तरीको को अपनाये तथा विद्यालयो मे पाश्चात्य चुनाव-पद्धति के अनुसार अपने भाइयो के मध्य सीधा सघर्ष, विरोध और कटुता पैदा करें तथा साथ ही प्रत्याशी की योग्यता पर भी ध्यान न दें, अपनी माँगें पूरी न होने पर अन्य राजनीतिक दलो के समानान्तर उग्र प्रदर्शन करें, अपने हित-साधन के लिये विद्यालय से बाहर अन्य राजनीतिक दलों से गठबन्धन करें, आपसी मतभेद होने पर पारस्परिक अभद्र व्यवहार करें, तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ? हमने युवको को प्रजातन्त्र के परीक्षण के लिये छात्र-ससद के रूप मे प्रयोगशाला दी है तथा हमारे प्रजातन्त्र, हमारे नेतृत्व-वर्ग तथा राजनीतिक दलो ने उन प्रयोग शालाओं में

प्रयोग करने हेतु, जिस प्रकार की सामग्री प्रस्तुत की है, उसी सामग्री से तो हमारा नवयुवक इन छात्र-ससदों में निरन्तर प्रयोग कर तथाकथित प्रजातान्त्रिक परम्पराओं की शिक्षा, ग्रहण कर रहा है।

श्री विद्यासागर ने यह भी संकेत दिया है कि विद्यार्थियों मे यौनवाद के प्रति अवांछित प्रवृत्ति बढ रही है। डॉ० सम्पूर्णानन्द के अनुसार विवाह की आयु को घटाने से भी किसी सीमा तक चरित्र की रक्षा की जा सकती है। डॉ० दामले का कथन है कि हमारे देश के प्राचीन रीतिरिवाजों के कारण आज के नवयुवक को अपना जीवन-साथी स्वेच्छापूर्वक चुनने की स्वतन्त्रता नही है और इस प्रकार वह अनेक प्रकार के बन्धनों से दबा हुआ है, जो कुण्ठाओ के रूप में प्रगट हो रही हैं।

यो तो शिक्षक की उनकी आर्थिक विपन्नावस्था से उभारने की ओर लगभग सभी विचारकों ने कहा है, परन्तु श्री शम्भूसिंह मनोहर ने पंचायत समितियों के आधीन कार्य कर रहे, राजस्थान के शिक्षकों की दयनीय अवस्था की ओर भी ध्यान आकर्षित कराया है। वास्तव मे यदि शीघ्र ही इस ओर उचित कदम न उठाया गया तो राजस्थान का शिक्षक ग्रामीण अशिक्षित राजनीति के हाथों कठपुतली बन कर रह जायगा।

हमारी इस क्षोभ जनक अवस्था के कारणों को जानने हेतु जब हमने गांधीवादी दर्शन का आश्रय लिया तो श्री काका कालेलकर ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये—"विद्यार्थियों के सामने आज कोई ऐसा जीवनोद्देश्य-मिशन, अथवा पुरुषार्थ है नहीं" तथा 'आज भारत मे राजतन्त्र ऊपर से नीचे तक नये आदर्श से प्रेरित हुआ नहीं दीख पडता है" हमारे जीवन में राजतन्त्र के हावी होने तथा लोक-भावना के लोप होने के विषय मे श्री बी बी जॉन लिखते हैं कि "हमारे समाज मे से स्वयसेवी सस्थाओं का लोप होता जा रहा है।" श्री हनुमान शर्मा के विचार भी इसी प्रकार के हैं "भारतीय जन-व्यवस्था की सबसे बडी विशिष्टता यह थी, कि वह लोक-समाज पर आधारित थी। आज वह दुर्दैववश टूट-टूट कर गिरती जा रही है।"

छात्र-असन्तोष के सन्दर्भ मे जब हमने अरविन्द-दर्शन से कुछ जानकारी करनी चाही, तो पाँडिचेरी से श्री व्रजनन्दन ने विचार व्यक्त किया कि वर्तमान विषम परिस्थितियों से घबडाने की आवश्यकता नही है, क्योंकि "आज हम जगत् के इतिहास की ऐसी वेला मे खडे हैं, जबकि उच्चतर प्रकाश की शक्तियों के चाप के परिणाम स्वरूप मानव-चेतना मे एक विशेष क्रांति

आने वाली है।" वर्तमान असन्तोष एव बेचैनी का कारण यह है कि "अधकार की शक्तियाँ" भी अपना कार्य कर रही हैं, लेकिन हमे "क्रूर नियति"-पर विश्वास न कर "एक मगलमय, करुणामय नियति के अस्तित्व पर" अटूट आस्था रखनी चाहिये। और यह कार्य शिक्षा—जो मगलमय नियति की एक विधायक प्रक्रिया है—द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है। शिक्षा के उद्देश्यो पर प्रकाश डालते हुऐ वे आगे लिखते हैं, कि बालक को प्रारम्भ से ही "एक उच्चतर जीवन जीने" तथा "उच्च लक्ष्य" प्राप्त करने के "सकल्प" को जगा देना चाहिये। शिक्षा का लक्ष्य बालक के अन्दर सुप्त "अनन्त क्षमताओ" का विकास करना है और जिसे आज हमारी शिक्षा व्यवस्था कर नही पा रही है। मेरे विचार से श्री व्रजनदन का "अनन्त क्षमताओ" से तात्पर्य कदाचित् अरविंद दर्शन के सर्वाधिक सारगर्भित तथा मूलभूत शब्द "महत्-चेतना" (Super-mind) से है, क्योकि अरविंद-दर्शन के अनुसार "महत्-चेतना" ही सत्यान्वेषिणी है, तथा यह आत्म-साक्षात्कार की वह स्थिति है, जिसमे सम्पूर्ण शरीर, मन तथा आत्मा का अद्‌भुत रूपान्तरण सत्-चित्-आनन्द मे हो जाता है।

"अनुशासन तत्त्व" की व्याख्या के लिये डॉ० रामानद तिवारी का "अनुशासन का अध्यात्म" डॉ० चन्द्र शेखर भट्ट का "अनुशासन की तात्त्विक व्याख्या और शिक्षा मे उसका महत्व" नामक लेख तथा पुलिस के महानिरीक्षक श्री हनुमान शर्मा की "भेंट-वार्ता" विशेष रूप से उपलब्ध करायी गयी है। डॉ० तिवारी के अनुसार "अनुशासन" और "शासन" मे सबसे बडा अन्तर तो यह है कि यदि "शासन" एक 'बाह्य आरोपण' है, तो "अनुशासन" एक आन्तरिक एव "आत्मिक सस्कार" है तथा "अनुशासन" का सम्बन्ध हमारे "अध्यात्म" से है। डॉ० तिवारी की एक विशिष्ट मान्यता यह है कि वे "अध्यात्म" तथा "भौतिकता" को एक दूसरे का विरोधी न मान कर, यह प्रतिपादित करते हैं कि वस्तुत "अध्यात्म" ही हमारे लौकिक (भौतिक) जीवन के व्यावहारिक पहलू का कल्याणकारी साधन है, और इस प्रकार "भौतिक वाद" तथा "अध्यात्मवाद" का प्रचलित अन्तर भ्रमात्मक है। अनुशासनहीनता के कारणो पर प्रकाश डालते हुए आप लिखते है कि वह (अनुशासनहीनता) मुख्य रूप से व्यक्ति के अहकार एव स्वार्थ के कारण उत्पन्न होती है। इन हीन प्रवृत्तियो का निराकरण "अध्यात्म" द्वारा ही किया जा सकता है, तथा निराकरण का साधन है—व्यक्ति के स्वार्थ का समाजीकरण। विद्यार्थियो के जीवन मे अनुशासनहीनता की भावना उत्पन्न होने का कारण देश मे जीवन्त राष्ट्रीय उच्चादर्शों के अभाव का होना है।

डॉ० चन्द्रशेखर भट्ट के अनुसार शिक्षा और अनुशासन मे कोई भेद नहीं है तथा "शिक्षा अनुशासन का ही नाम है।" आपके मतानुसार शिक्षा मे अनुशासन की स्थापना "आदेश" के द्वारा न होकर "आदर्श" होती है। आपने इसके लिये गुरु-शिष्य के व्यक्तिगत सम्बन्धो मे निकटता लाने पर बल दिया है।

इन दिनो छात्र और पुलिस के मध्य भी अस्वाभाविक सम्बन्ध बढे हैं। अत जब "अनुशासन" का वही प्रश्न आई जी पी. महोदय के समक्ष उठाया गया तो उन्होने स्पष्ट शब्दो मे यही विचार प्रगट किये कि बिना "उत्तम अध्यापक" के विद्यार्थी मे अनुशासन उत्पन्न नही किया जा सकता। उन्होने विद्यार्थियो की अनुशासनहीनता के लिये सामान्य रूप से सारी समाज-व्यवस्था को दोषपूर्ण ठहराते हुए अध्यापक को विशेष रूप से इसके लिये उत्तरदायी ठहराया। शिक्षा-क्षेत्र मे अनुशासन लाने के लिये आपने डॉ० रामानन्द तिवारी एव डॉ० चन्द्रशेखर भट्ट के समान ही "शासन" और "अनुशासन" को क्रमश वाह्य एव आन्तरिक वस्तुएँ माना तथा साथ मे यह भी स्वीकार किया, कि विद्यार्थियो को पुलिस के द्वारा अनुशासित बनाया जाना सम्भव नहीं, बल्कि शिक्षा-सस्थाओ मे पुलिस का प्रवेश अशुभ है। लेकिन साथ ही उन्होने पुलिस की इस मजबूरी की ओर भी सकेत किया, कि जब समाज के किसी भी क्षेत्र में कानून और व्यवस्था समाप्त होती दृष्टिगोचर होती है, तो पुलिस को कभी-कभी निषिद्ध स्थानो पर भी बेमन से जाने को विवश होना पडता है। श्री शर्मा ने स्वीकार किया, कि यदि लम्बे समय तक पुलिस इस प्रकार बेमन से कार्य करती रही तो पुलिस के 'मानस' (Morale) मे गिरावट आने की सम्भावना है। अन्त मे यह पूछे जाने पर कि पुलिस के प्रति विद्यार्थियो के मनो मे घृणा व विरोध की भावना क्यो है, तो इसे आपने ब्रिटिश-काल की देन बताया।

देश के विभिन्न राजनीतिक दलो के नेताओ की भेंट-वार्ताओं से स्पष्ट है कि निम्न चार बातो पर सभी दलो के नेता एकमत हैं :—

(१) देश मे युवक अशान्ति व अनुशासनहीनता के लिये हमारी आदर्शहीन सामाजिक व्यवस्था ही उत्तरदायी है।
(२) देश मे युवक-शक्ति का सदुपयोग नही किया जा सका है।
(३) हमारी शिक्षा-नीति दोषपूर्ण है।
(४) सामाजिक-सन्तुलन तथा अनुशासन की स्थापना देश मे उच्चादर्शों को लाने तथा शिक्षा को जीवनोपयोगी बनाने से ही की जा सकती है।

जब छात्रो द्वारा राजनीति मे भाग लेने का प्रश्न उठाया गया, तो विभिन्न दलों के नेताओ के उत्तर इस प्रकार से आये —

(क) **कांग्रेस—(श्री शिवचरण माथुर) :—**

श्री माथुर के अनुसार छात्रो मे राजनीतिक जागरूकता तो अवश्य रहनी चाहिये, परन्तु उन्हे (वर्तमान परिस्थितियो मे) दलगत राजनीति मे सक्रिय भाग नही लेना चाहिये ।

(ख) **जनसंघ—(श्री भैरोंसिंह शेखावत) :—**

सैद्धान्तिक तौर पर कुछ भी कहा जा सकता है, परन्तु वैसे व्यवहार मे छात्रो को राजनीति से पृथक् रखने का उपदेश वर्तमान परिस्थितियो मे एक थोथा 'स्लोगन' (नारा) मात्र रह गया है। आज विद्यार्थी हर गतिविधि मे भाग ले रहा है ।

(ग) **संयुक्त समाजवादी दल—(मास्टर आदित्येन्द्र) —**

भला विद्यार्थी राजनीति मे भाग क्यो न लें, उन्हे अवश्य देश की समस्याओ से जूझना चाहिये । गांधीजी ने भी यही करने का आह्वान किया था ।

(घ) **साम्यवादी दल—(श्री रामानन्द अग्रवाल) —**

राजनीति दलबन्दी मात्र ही नही है । वह व्यक्ति तथा समाज की समस्याओं का समाधान खोजने का अलग-अलग रास्ता बताती है । जो रास्ता उचित लगे विद्यार्थी उसी को अपनायेंगे ।

(ङ) **स्वतन्त्र दल—(श्री देवीसिंह मंडावा) :—**

अध्ययन-काल मे छात्रो का मस्तिष्क पूर्ण विकसित नही हो पाता, अत उन्हे राजनीति मे भाग नही लेना चाहिये ।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि श्री माथुर विद्यार्थियो का दल गत राजनीति मे सक्रिय भाग लेना उचित नही मानते (वर्तमान परिस्थितियो मे), श्री भैरोंसिंह के मतानुसार आज के हालातों मे विद्यार्थी राजनीति मे भाग लेने से बच नही पा रहा हैं । इस कारण इस समय उसके लिये राजनीति से बचने की बात कहना व्यर्थ सा ही लगता है । मास्टर जी के अनुसार विद्यार्थियो को राजनीति मे खुल कर भाग लेना चाहिये तथा श्री अग्रवाल के अनुसार उन्हें खुल कर भाग लेना ही नहीं चाहिये, बल्कि इसके बिना काम ही नही चल सकता । यह अपरिहार्य है ।

तथा श्री मडावा के अनुसार अध्ययन–काल मे छात्रो को अपनी बौद्धिक अपरिपक्वता के कारण सक्रिय राजनीति से दूर रहना चाहिये ।

जब विद्यार्थियो द्वारा अपनी मागो को मागने के ढग पर प्रश्न उठा तो श्री माथुर ने कहा कि विद्यार्थियों का तरीका विघटनात्मक एवं तोड-फोड का नही होना चाहिये । श्री भैरोंसिह ने बताया कि सरकार जिस प्रकार की भाषा सुनने की आदी हो, उसे वैसी ही भाषा मे सुनाया जाना चाहिये । श्री आदित्येन्द्र के अनुसार युवको को अपने अधिकारो के लिये आन्दोलन करने चाहिये । श्री रामानन्द अग्रवाल के अनुसार "प्रजातान्त्रिक ढग से मागें मागने वाली बात" उन लोगो की है, "जो परिवर्तन मे विश्वास नहीं करते ।" हडताल और प्रदर्शन तो "अन्याय और शोषण के खिलाफ लड रही 'एक जानदार जिन्दगी' (Robust life) के लक्षण हैं ।" श्री अग्रवाल के अनुसार "नई सामाजिक व्यवस्था ही सब समस्याओ का हल प्रस्तुत करेगी ।" "इस उथल–पुथल से निराश होने की कोई आवश्यकता नही ।" "यह जीवन ही है • •••मृत्यु नहीं ।" तथा "परिवर्तन ही जीवन है और स्थैर्य ही मृत्यु ।" श्री देवीसिह मडावा ने यद्यपि जनतान्त्रिक ढग का समर्थन किया, तथापि उन्होंने इस बात पर अपना खेद प्रगट किया कि हमारा प्रशासन बिना स्ट्रॉग डैमॉन्स्ट्रेशन (उग्र प्रदर्शन) के टस से मस नही होता ।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री माथुर के अनुसार विद्यार्थियों को अपनी माग मागने का न केवल अधिकार ही है, बल्कि वे उनके द्वारा आयोजित प्रदर्शनों को भी बुरा नही समझते, लेकिन शर्त यह है कि उनकी माग न्यायपूर्ण हो तथा प्रदर्शन का ढग सवैधानिक एव प्रजातान्त्रिक हो । श्री भैरोंसिह "जस को तस" के सिद्धान्त के अनुसार किसी भी प्रकार के ढंग को भला–बुरा नहीं कहते । उनके कथन से तो यह ध्वनि निकलती प्रतीत होती है, "भई, समय बड़ो बलवान" वह (समय) जो कुछ भी जैसा किसी से करवा ले, वही उस समय औचित्य की परिभाषा में आ जाता है । लगता है, श्री शेखावत का दृष्टिकोण नितान्त व्यावहारिक–दर्शन (Pragmatism) से प्रभावित है । रही श्री रामानन्द की बात, सो यह स्पष्ट ही है कि वे बिना किसी दुराव–छिपावके घोषित करते हैं, कि उनके लिये साधन से अधिक साध्य महमियत रखता है । उथल-पुथल उनके लिये "रॉवस्ट लाइफ" 'जीवन' एवं 'परिवर्तन' का लक्षण है । कदाचित् मेरा विश्लेषण सही ही है, कि श्री रामानन्द के अनुसार विद्यार्थियो को एक नये सामाजिक परिवर्तन के लिये एक "उथल–पुथल" भरी "जानदार जिन्दगी" बितानी चाहिये ।

स्वतन्त्र दल के श्री मजावा की सम्मति मे प्रजातांत्रिक ढग ही अधिक उचित है। यद्यपि आज परिस्थितियां इसके अनुकूल नही है, तथापि यदि एक बार अप्रजातान्त्रिक ढग को मान्यता मिल जाती है तो कालान्तर मे हर परिस्थिति के लिये अप्रजातान्त्रिक ढग की परम्परा पड जायेगी, जो हानिप्रद है।

विद्यार्थियो से जो विचार प्राप्त हुए है, उनका निष्कर्ष यह है, कि यद्यपि वे तोड-फोड मे विश्वास नही रखते, परन्तु फिर भी "भीड-मनोवृत्ति" के कारण उन्हे ऐसा करना पडता है, जिसका बाद मे उन्हे पश्चाताप भी होता है। छात्रो के अनुसार विद्यार्थियो द्वारा राजनीति मे भाग लेने का कारण यह है, कि छात्रो के आन्दोलनो मे छात्र-राजनीतिज्ञ, दलगत राजनेता, यूनिवर्सिटी के लोग(छात्रों के अनुसार यूनिवर्सिटी स्वय राजनीति दल-बन्दी के दुश्चक्र मे फँसी रहती है), घुस कर उनमे दलीय राजनीति का रग भर देते हैं। छात्र-वर्ग भी अध्यापकों की योग्यता, शिक्षा सम्बन्धी सुविधाए तथा हमारी शिक्षा-नीति से असन्तुष्ट हैं। उनका कहना है कि उनका भविष्य अन्धकारमय है तथा जो जीविका के साधन उपलब्ध भी हैं, वे भी योग्यता के आधार पर न दिये जाकर सिफारिश, भाई-भतीजावाद तथा राजनीति के आधार पर अधिकतर अयोग्य लोगों को दे दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रौढ व्यक्ति सुख और सुविधाओ के सभी स्थानो पर चिपक कर बैठ गये है। सेवा-निवृत्ति पश्चात् भी ये लोग आपस मे मिलजुल कर सेवा-काल वृद्धि करवा लेते हैं और इस प्रकार ये देश की बेरोजगार नवपीढी को बिना काम ही हताश और भारी मन लिये इधर-उधर सडको पर घूमने के लिये विवश कर देते हैं। विद्यार्थियो की यह भी एक धारणा है कि आज की इन असवेदनशील परिस्थितियो मे उनकी न्यायपूर्ण माँगो की सुनवाई तब तक नही हो सकती, जब तक कि वे उग्र रुख न अपनावे। अब तो एक मात्र चारा "क्रांति" ही रह गया है। **(मेरे विचार से हमारे युवको के मनो मे इस प्रकार की निराशाजनक धारणा यदि दृढ़ता से घर करती गयी तो इसके परिणाम भयकर हो सकते हैं प्रजातंत्र के रक्षार्थ देश के चिन्तनशील विचारको को इस ओर अविलम्ब ध्यान देने की आवश्यकता है।)**

यहाँ छात्रो के अभिभावकों की बात कहना भी आवश्यक है। इस विषय मे अभिभावको के दृष्टिकोण जानने के लिये कुछ भेट-वार्ताएँ भी आयोजित की गयीं। अन्य बातों के अतिरिक्त दोनो ही अभिभावक महानुभाव श्री एल० पी० श्रीवास्तव एवं श्री रघुवीर प्रसाद भटनागर इस बात से सहमत थे, कि देश की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियो के

कारण ही यह सारा का सारा कष्ट उपस्थित है । श्री भटनागर के अनुसार सामाजिक, एवं आर्थिक विषमता को हटाने, शिक्षा में सुधार लाने तथा समाजवाद की स्थापना से ही देश की अवस्था मे सुधार लाया जा सकता है। श्री एल. पी श्रीवास्तव के अनुसार आज अभिभावक वैसे ही महंगाई के युग मे मुश्किल से अपना काम चला पा रहा है, और उधर हर दिन पाठ्य-पुस्तकों के बदलने, फीसो की वृद्धि होने तथा आये दिन के विद्यालयी खर्चों के कारण, उसकी समस्या द्विगुणित हो जाती है। और फिर इतना करने पर भी वह अपने बच्चों की नौकरी मिलने के प्रति निश्चित नहीं है। आज सबसे बड़ी चिन्ता, जो अभिभावक को खाये जा रही है, यह है कि अपने इन बच्चो को पढा-पढा कर वह कहाँ रखे और उठाये ?

आन्दोलन में बच्चो के भाग लेने के प्रश्न के उत्तर मे अभिभावक श्री एल. पी श्रीवास्तव की धारणा यह रही कि सामान्यत आन्दोलनात्मक कदम तो अच्छा नहीं है (मेरे विचार से अभी सामान्य भारतीय व्यक्ति में परिवर्तन की क्रांतिकारी प्रवृत्ति, सघर्ष व असतोष के प्रति विद्रोह का भाव, जो पाश्चात्य देशों की मनोवृत्ति कही जा सकती है, प्रत्यक्ष रूप से उभरा नही है। भारतीय "सहनशीलता" जगत्-प्रसिद्ध है। और जो कुछ उग्रता कभी-कभी देखने को मिल जाती है, वह मुख्यत. राजनीतिक दलों से प्रेरित होती है। वैसे आज का शहरी नागरिक गाँव वालो मे अधिक असहनशील हो चला है।), परन्तु सभी लोग इनसे न तो बच पा रहे हैं और न ही बचना चाहते हैं। इसके विपरीत श्री भटनागर को उग्र आन्दोलनात्मक कदम से परहेज नहीं है। मेरे मत से आज के अभिभावक का मन विभ्रमता तथा किंकर्तव्य-विमूढता की हालत मे पहुँच गया है। एक तरफ आन्दोलनों में भाग लेने से उसके बच्चे की सुरक्षा पर आँच आती है, तो दूसरी तरफ अपनी ढेर सारी चिंताओ के अतिरिक्त उसके (बच्चे के) अनिश्चित भविष्य के कारण वह व्यग्रताओं से ग्रस्त रहता है। अपने बच्चे द्वारा जब वह आन्दोलनो मे भाग लेने की बात सुनता है, तो वह उन्हें डाँटता है, फटकारता है, लेकिन जब बच्चे न्याय-सगत तर्क देने लग जाते हैं, तो अभिभावक शस्त्रविहीन होकर यह कह कर अपना उत्तरदायित्व भर पूरा कर देना चाहता है कि—"नालायक कहीं के ! नहीं मानता है तो जाकर हमारी तरफ से 'चूल्हे मे से निकल कर भाड में पड़', हे भगवान ! इससे तो अच्छा था कि तू जन्मते ही मर जाता' ." वस्तुत वह ऐसा कह कर उसे मना भी कर रहा है और नहीं भी कर रहा। इसका कारण यह भी तो है कि वह स्वयं भी अपनी

अवस्था से नाराज है, असन्तुष्ट है। लेकिन वह स्वय परिवर्तन लाने में असमर्थ है, असहाय है। और सच बात तो यह है कि वह डरता है, उसमे साहस भी नहीं है।'

यद्यपि आज पाश्चात्य व्यक्तिवाद के आरोहण के कारण अभिभावक अपने बच्चो से कुछ अधिक कहने मे झिझकते हैं, तथापि यदि वे चाहे तो अपने बच्चो पर किसी सीमा, तक नियन्त्रण रख भी सकते है आखिर को तो ये इन्ही के जिगर के टुकडे—"लस्ते जिगर" हैं, उनके रक्त के अ श है। वे उन्हे "सेन्सिबिल" (समझदार) भी समझते है, परन्तु वे कुछ अपने से, कुछ अपनी सतान से और कुछ सारी दुनिया से अपने को परेशान महसूस करते हैं। इस विषय मे एक वात और—अभिभावक का भी अपने वच्चो से समीप का सम्वन्ध नही रह पा रहा है। इसका कारण यह है कि कुछ अभिभावको को तो अपनी दाल-रोटी की चिंता से ही अवकाश नही है तथा कुछ को इस बात का ज्ञान भी नही है कि वच्चो के समीप रहने की वच्चे के अनुशासन, चरित्र तथा मानसिक स्थायित्व तथा सुरक्षा की दृष्टि से, कितनी बड़ी आवश्यकता है। यद्यपि बच्चे को बिगडने मे अभिभावक को अपने उत्तरदायित्त्व से हटना नही चाहिये, तथापि वह उसके विगडने मे अपने को उत्तरदायी न मान कर समाज को ही दोप देता है और एक प्रकार से निश्चित होकर—वीडी पीकर अथवा लेट कर अपना "मजबूर समय" काट देता है। मै इस स्थिति को "अभिभावक का मजबूरी से समझौता" करना ही कहूँगा। परन्तु यह पलायनवादी स्थिति समाज के लिये शुभ नही है। **मेरा सुझाव है कि अब समय आ गया हैं कि जब अभिभावक को भी सचेत हो जाना चाहिये और अपने पारिवारिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्वो के प्रति कुछ अधिक साहसिकता से कदम उठाना चाहिये। "लोक-राज्य" की यही पहली शर्त है।**

युवा–जगत की समस्या के समाधान हेतु इस पुस्तक मे विचारको द्वारा अनेक सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं। अभी कुछ समय पूर्व प्रकाशित कोठारी–आयोग ने अपने प्रतिवेदन मे छात्र–कल्याण हेतु कुछ अच्छे सुझाव दिये हैं। गत १६ मई, से २५ मई १६६८ तक वम्बई मे "अखिल भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षक–छात्र–शिविर" का आयोजन श्री गजेन्द्र गड़कर के सयोजकत्व मे सम्पन्न हुआ, जिसमे राष्ट्रीय भावात्मक एकता तथा युवा–शक्ति के रचनात्मक उपयोग के तरीको पर विचार–विमर्श किया गया। मेरी समझ से यह सब कुछ एक अपूर्व एव प्रशसनीय कदम था। तथा सुनने मे आया है

कि अब एन० सी० सी० को वैकल्पिक करके "भारतीय समाज-सेवा कोर" की स्थापना की जा रही है। मैं स्वयं इन समस्त कार्यक्रमों की सफलता के प्रति विशेष आशावान नहीं हूं। वैसे शुभ है, कुछ न कुछ अच्छा कार्य चलता रहना चाहिये, इससे वातावरण बनता है, परन्तु सच्ची सफलता तो तब ही हाथ लग सकेगी, जबकि देश में राष्ट्रीय-भावना, समाज-सेवा, त्याग, तथा ईमानदारी के अनुकूल जन-मानस तैयार होगा। मानस का बनना आदर्शों पर निर्भर होता है। और आदर्श सदैव ऊपर से नीचे की ओर चलता है। और साथ ही हमें अपनी वर्तमान जडता की स्थिति को छोड़ कर 'कल्याण-कारी नवीनता' को साहसिकता एवं दृढ़ता के साथ अपनाना चाहिये। मुझे श्री देवी सिंह मंडावा के इस सुझाव ने भी काफी आकर्षित किया कि बालकों के चरित्र निर्माण की दृष्टि से प्रारम्भिक शिक्षा में ही एक राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाया जाना चाहिये।

हमें अभी भी अपनी युवा-शक्ति के प्रति आशावान रहना चाहिये। पूर्णमासी को ही समुद्र में ज्वार उठता है। परन्तु अब इसी में हमारी बुद्धिमानी है कि हम समय रहते अपने परम मित्र, हमदम, हमराही एवं शुभचिंतक की दिशाहीन प्रचंड-शक्ति को सही मार्ग-निर्देश दे सकें। परन्तु यह सब कुछ तब ही सम्भव होगा, जब हम पहल करने का संकल्प स्वयं लें।

—कृष्ण वीर द्रोण

"बाल दिवस"
१४, नवम्बर, १९६८,
विद्या भवन, उदयपुर,
(राजस्थान)

प्रथम खंड

लेख

तरुणाई का उफान और हमारा आत्म-चिन्तन

डॉ० वी के. आर वी. राव

इस तथ्य को कोई भी अस्वीकार नही कर सकता है कि आज भारतीय विद्यार्थी-जगत् गहन व्याकुलता एव अशाति की अवस्था मे है। देश के सभी भाग विद्यार्थी उपद्रवो एव विद्यार्थी अनुशासनहीनता से पीडित हैं। वास्तव मे इन घटनाओ ने ऐसे रूप धारण किये हैं कि ये कानून एव व्यवस्था के लिये समस्या बन गये हैं। मुझे इस पर गहरा खेद है। विद्यार्थी अनुशासनहीनता न तो युवा ओज का प्रदर्शन मात्र ही है, और न इसकी व्याख्या निहित स्वार्थ वाले बाहरी तत्त्वो, जो विद्यार्थी अशाति से लाभ उठाने के लिये प्रयत्नशील हैं, चाहे वे राजनीतिक हो अथवा गैर-राजनीतिक, के कार्यों द्वारा की जा सकती है। विद्यार्थी अनुशासनहीनता एक सास्कृतिक, आर्थिक, समाजशास्त्रीय एव शैक्षणिक समस्या है। यदि हम इसके उपचार के उचित उपाय प्राप्त करना चाहते हैं, तो इसका वस्तुनिष्ठ एव वैज्ञानिक रीति से अध्ययन एव विश्लेषण करना होगा। किसी रोग का निवारण उसके बाहरी लक्षणो का उपचार करके अथवा इसके प्रकट रूप का, शक्ति द्वारा शमन करने से नहीं होगा।

बिना कारणो को समझे, शक्ति द्वारा दमन करने से किसी घटना को कुछ काल के लिये ही दबाया जा सकता है, परन्तु अनुकूल अवसर प्राप्त होने पर उसके और भी उग्र रूप मे विस्फोटित होने की सम्भावना होती है। हमे उपचारात्मक उपायो के कार्यक्रम को प्रारम्भ करने से पूर्व इन घटनाओं के कारणो को पूर्णतया समझना आवश्यक है तथा अध्ययन एव शोध द्वारा ही इन कारणो को समझा जा सकता है। मुझे ज्ञात है कि इस विषय पर विशेपकर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की उपर्युक्त विषय की समिति, जिसने १९६० मे प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था, द्वारा अध्ययन किये गये हैं। हाल ही मे हमारी राष्ट्रीय शिक्षा समस्या के विभिन्न पहलुओं पर व्यापक

प्रतिवेदन मे शिक्षा आयोग ने इस समस्या का यत्र–तत्र उल्लेख किया है। मैं इस कथन से संतुष्ट नही हूँ कि हम इस विषय पर आवश्यक वैज्ञानिक एव शोध के उपायो पर ध्यान दे सके हैं। अतः मैं भारत सरकार से इस विषय पर पूर्ण जाच के लिये राष्ट्रीय आयोग अथवा समिति की नियुक्ति की आवश्यकता का अनुरोध करूगा। इसकी अध्यक्षता किसी सुप्रसिद्ध भारतीय समाजशास्त्री द्वारा की जानी चाहिये और इसके सदस्यो मे न केवल उच्च शिक्षा से सम्वन्वित अनुभवी शिक्षक एव प्रशासक ही हो वरन् माध्यमिक शिक्षा से सम्वन्धित व्यक्ति भी हो। साथ ही इसमे विद्यार्थी नेतृत्व का भी प्रतिनिधित्व होना चाहिये, एव मेरी सम्मति में विद्यार्थियो की राय का प्रतिनिधित्व केवल साक्ष्य मे ही नही होना चाहिए वरन् समस्या के समस्त अध्ययन एवं उपचारात्मक उपाय प्रस्तावित करने मे भी होना चाहिये। समिति के कार्य के पूर्व अथवा साथ-साथ ही गत पाँच वर्षों मे हुए कुछ महत्त्वपूर्ण विद्यार्थी उपद्रवो पर विशेष शोध–अध्ययन होने चाहिये। यह कार्य समिति की समस्या को समझने एव उचित तथा वास्तविक उपाय सुझाने के लिये आवश्यक वैज्ञानिक सामग्री उपलब्ध करायेगा।

सर्व प्रथम तो हमे जानना होगा कि छात्र-असतोष केवल भारतीय घटना ही नही है। वास्तव मे यह विश्वव्यापी घटना है और यह सम्पूर्ण विश्व मे युवा-वर्ग द्वारा पुरानी पीढी के मायाजाल से क्रमश मुक्त होने के प्रयत्नो का प्रतिनिधित्व करती है। पुरातन के लिये युवा-वर्ग मे अब आदर का भाव नही है। जब हम उनको सलाह देते हैं तो वे हम पर विश्वास नही करते एव उन्हें उपदेश का रूप देकर अस्वीकार कर देते हैं। वे हमारी कथनी एव करनी में तालमेल नही पाते। आणविक युद्ध, जो सम्पूर्ण मानव सस्कृति को नष्ट कर सकता है, का भय उनके उभरते हुये मानस-क्षितिज पर काले बादलो की भाति छाया हुआ है। वे इस बात का कारण नहीं समझ पाते कि विश्व–नेतृत्व स्थायी शाति–स्थापना का मार्ग क्यों नहीं खोज पाता ? विज्ञान एव प्राद्यौगिकी के विकास के वर्तमान वातावरण मे वे हमें पुराना मानते हैं तथा ज्ञान के क्षेत्र में भी वे पुरावशेष मानते हैं। हमारी रूढिवादिता उनके लिये कष्टप्रद है, हमारे सामाजिक एव सास्कृतिक दृष्टिकोण उनके लिये असुविधाजनक हैं। आज हम संपूर्ण विश्व में पीढियों के बीच संघर्ष को देख रहे हैं, जो कि नव पीढी के ज्ञान की बढती हुई दूरी, उनके दृष्टिकोण, आचार एव मान्यताओ द्वारा और भी तीक्ष्ण हो रहा है। अत अब हमारी पुरानी पीढी को युवा-वर्ग के हेतु अब तक प्रदान किया हुआ अवबोध एव सहानुभूति

से अधिक अवबोध एव कल्पनामय सहानुभूति प्रदर्शित करनी होगी। अनुशासन नि:सन्देह अच्छा है, परन्तु शक्ति द्वारा बनाये रखने की अपेक्षा इसे स्वत: ही विकसित होना चाहिये। दृढता नि सन्देह आवश्यक है, परन्तु साथ ही साथ युवा-वर्ग मे भी यह समझ और भावना बनी रहनी चाहिये कि जो हमसे अनुशासन का पालन कराते हैं, उनके दिलो मे युवा-वर्ग के प्रति स्नेह, उनकी कमजोरियो के प्रति दया-भाव एव उनके साहस जो असावधानी का सीमावर्ती है, के लिये प्रशसा का भाव रहता है। प्रेम वह कुजी है जो कि चिरस्थायी एव स्व-प्रेरित विद्यार्थी अनुशासन का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने कहा है, "प्रेम अत्यन्त असम्भव मार्गों को खोलता है, प्रेम विश्व के सभी रहस्यो का द्वार है।" अत मैं कहूँगा कि हम सभी को जो अधिकार एव नेतृत्व की स्थिति मे है, यह स्वीकार करना होगा कि विद्यार्थी अनुशासनहीनता को सुलझाने की एक आवश्यक दशा अधिक सहानुभूतिपूर्ण रुख को अपनाना है, जो कमजोरी अथवा तुष्टिकरण की अपेक्षा समझ, आदर-भाव एव स्नेह पर आधारित हो।

समस्या का एक अन्य पक्ष गत कुछ वर्षों मे विद्यार्थियो की सख्या मे भारी वृद्धि एव समाजशास्त्रीय और आय सविरचना मे हो रहे भारी परिवर्तनों का होना हैं। इस पक्ष का अध्ययन किया जाना आवश्यक है। सख्याओं मे वृद्धि के कारण अध्यापक एव विद्यार्थी के बीच व्यक्तिगत सम्पर्क बनाये रखना अति कठिन हो गया है, जिसके कारण अध्यापक एव विद्यार्थियो के बीच आवश्यक व्यवहार-विनिमय मे तीव्र गति से कमी हुई है। विद्यार्थियों मे व्याप्त सन्देह, मिथ्या धारणाऐं एव उचित कठिनाईया तक भी अध्यापको अथवा शैक्षणिक अधिकारियों की जानकारी मे नही आती है, एव वे समस्याऐं जो प्रारम्भ मे ही ज्ञात होने पर सुगमता से सुलझाई जा सकती थी, उपेक्षा के कारण बढती जाती हैं, एव जब वे विद्यार्थी अनुशासनहीनता के रूप मे फूट पडती हैं, तो आश्चर्य एव सक्षोभ उत्पन्न करती है। विद्यार्थी समाज का बदलता हुआ स्वरूप भी सामाजिक, सास्कृतिक एव भावात्मक समायोजन की कठिनाइयो को बढाता हैं। शैक्षणिक अधिकारी न तो इनको समझ ही पाते हैं और न ही इनका समाधान प्रस्तुत कर पाते हैं। विकास की योजनाओ द्वारा हमने जिस गति से प्रगति की है, उसके परिणामस्वरूप एक प्रकार का "शिक्षा-विस्फोट" हुआ है, इसके कारण विद्यार्थी-जगत् मे ग्रामीण जीवन एव निम्न आय-वर्ग से भी विद्यार्थियो का प्रवेश हुआ है। काफी दृष्टान्तो मे वे ऐसे परिवारो से आते हैं जिनमे कोई शैक्षणिक परम्परा नही रही तथा बहुत काफी

मामलों में उनके घरो पर न केवल आवश्यक वातावरण का ही अभाव होता है वरन् अध्ययन एव पाडित्य के लिये भौतिक सुविधाओ की भी कमी होती है। शहरी पर्यावरण मे आकर वे हक्के-बक्के से हो जाते हैं, जहाँ उनके कुछ साथी विद्यार्थियो के उच्च दृष्टिकोण एव सामाजिक प्रभिन्नतायें होती हैं तथा साथ ही उन अनिवार्य शैक्षणिक सुविधाओ की भी वास्तविक कमी रहती है, जिनकी पूर्ति होने पर वे अपने बौद्धिक व्यक्तित्व को दृढतापूर्वक स्थापित कर, अपनी आत्म-पूर्ति कर सकें।

यह शुभ है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस तथ्य को स्वीकार किया है एव छात्रावासो, विद्यार्थी–केन्द्रो, पुस्तकालय–भवनों एव पुस्तकों को क्रय करने के लिये विकास–अनुदान देकर कुछ सुविधाओ को उपलब्ध कराने का प्रयत्न किया है। फिर भी, जो कुछ भी किया गया है, पर्याप्त नही है एव बहुत कुछ किया जाना शेष है, विशेषत राज्य सरकारो द्वारा जो अपने क्षेत्र मे कालेज शिक्षा के लिये प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी हैं। शिक्षक एव विद्यार्थियो के बीच मनोवैज्ञानिक खाई को पाटने का प्रयत्न करना भी आवश्यक है। यह तभी किया जा सकता है जबकि कालेज एव विश्वविद्यालयो में ऐसे विशेषज्ञ हो जो मानवीय सम्बन्धो के ज्ञाता हो एव जो विद्यार्थियों में होने वाली कानाफूसियो की मरमराहट पर भी निरतर अपने कान लगाये रख सकें। केवल कारखानों में ही कार्मिक एव औद्योगिक सम्बन्ध–अधिकारियो की आवश्यकता नही होती, बल्कि कालेजो एव विश्वविद्यालयो मे भी मानवीय सम्बन्धो के विशेषज्ञ–अध्यापकों की सेवाओ का उपयोग होना आवश्यक है। वे यह कार्य समाजशास्त्र, मनोविज्ञान अथवा समाज–कार्य के माध्यम से सपन्न कर सकते हैं। हमारे यहा उच्च–शिक्षा की सभी सस्थाओ मे विद्यार्थी कल्याण के निर्देशको की आवश्यकता है।

विद्यार्थी अनुशासनहीनता का तृतीय तत्त्व बेरोजगारी का भय है जो विद्यार्थी-जगत् पर, जब वे अपनी शिक्षा समाप्त करते हैं, काली छाया की भाति मँडराने लगता है। रोजगार के अवसर उपलब्ध होने पर भी, एक प्रकार की भावना कि नियुक्तियो मे अधि-योग्यता लब्धिया महत्वपूर्ण भाग अदा करती हैं, व्याकुलता उत्पन्न करती है। जब वास्तव मे रोजगार मिल जाता है, तब रोजगार मे लगे हुए काफी नये स्नातकों मे मूल्य-वृद्धि एव विकासमान उपभोग-स्तर, वेतन-क्रमो एव कार्य की अवस्थाओं के प्रति असतोष को बढावा देते हैं। यह सत्य है कि हमारी पचवर्षीय योजनाओं के कारण भारत मे रोज-

गार के अवसरो मे भारी वृद्धि हुई है, तदापि यह भी सत्य है कि विकास के साथ-साथ शिक्षितो की वेरोजगारी मे भी वृद्धि हुई है। स्नातको के रोजगार की समस्या को सुलझाने के लिये विश्वविद्यालय-रोज़गार-ब्यूरो की स्थापना करके कुछ पहल की गई है परन्तु, इसके अन्तर्गत सभी विश्वविद्यालय नही आते है और जहा ये हैं भी, इनका कार्य सन्तोपजनक नही है और इनके अन्तर्गत स्नातको की सख्या भी नगण्य है। इसके अतिरिक्त ये कालेजो से आने वाले स्नातकों को वडी सख्या के कारण छोड देते हैं। स्नातक-रोज़गार की समस्या का सामना करने के लिये अधिक व्यापक एव प्रभावकारी उपायो को अपनाना आवश्यक है, यह कार्य कालेज एव विश्वविद्यालय स्तर पर करना आवश्यक है। दीर्घकालीन दृष्टिकोण से शिक्षा को हमारी विकासमान अर्थव्यवस्था की रोज़गार की आवश्यकताओ से अधिक प्रभावकारी रूप मे जोडना है। जैसा कि शिक्षा आयोग ने सुझाव दिया है कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे पाठ्यक्रम, प्रशिक्षण एव सख्या के निर्धारण मे मानवीय शक्ति के उपयोग की योजना को अधिक महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिये।

चौथा कारण, कालेजो मे दी जाने वाली शिक्षा का स्तर है। छात्रो की भारी सख्या, कम योग्यता वाले अध्यापक, उनका भी कम सख्या मे उपलब्ध होना एव ससाधनो जिनमे भवन, पुस्तकालय प्रयोगशालायें एव खेल के मैदान भी सम्मिलित है, जैसी कमियो ने न केवल शिक्षा के स्तर को गिराया है वरन् अध्ययन को अरुचिकर बनाने के साथ-साथ बहुत से कालेजो मे अस्वस्थ वातावरण का निर्माण किया है। एक वडी सीमा तक यह भी कहा जा सकता कि यह सब कुछ नियोजन द्वारा आर्थिक विकास के हमारे प्रयत्नो का परिणाम है। शिक्षा के स्तर मे ह्रास की व्याख्या केवल छात्रों की सख्या मे अभूतपूर्व वृद्धि के आधार पर ही नही की जा सकती। भाषा की समस्या सबसे वडी अकेली समस्या है जो छात्रो को परेशान कर रही है एव अप्रत्यक्ष से रूप से उनके अनुशासनहीनता के कार्यों मे सहायक हो रही है। इस समस्या का उल्लेख मैं हिन्दी की समस्या के सदर्भ मे नही कर रहा हूँ। सही अर्थों मे मेरा आशय सैकेण्डरी एव कालेज स्तरो के वीच शिक्षा के माध्यम के अन्तर से उत्पन्न होने वाली शैक्षणिक समस्या से है एव इसके परिणाम स्वरूप कालेजो में केवल अग्रेजी के माध्यम से शिक्षा देने से हमारे कालेज के विद्यार्थियो को जो कुछ भी पढ़ाया जाता है उसको समझने मे उन्हें भारी कठिनाई का सामना करना पडता है। यदि हमे अपने युवा-वर्ग की सृजनात्मक शक्तियों का उपयोग करना है, तो भारत मे शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर शिक्षा के माध्यम मे विद्यमान

द्विभागीकरण को हटाना होगा। यह प्रसन्नता का विषय है कि शिक्षा आयोग ने इस दिशा मे स्वागत योग्य प्रयत्न किया है, तथा मुझे विश्वास है कि उनकी शिक्षा के माध्यम के बारे मे सिफारिशें देश के सभी भागो के मेरे शैक्षणिक सहयोगियो के लिये स्वीकृति योग्य सिद्ध होगी। शिक्षा के उच्च स्तरों पर शिक्षा के माध्यम मे परिवर्तन करना सरल कार्य नही है। इससे कई समस्यायें सम्बन्धित हैं एव इसके लिये काफी धैर्य अपेक्षित है। तदापि मुझे इसमे किसी प्रकार का सदेह नही है कि एक दिन भारतीय भाषायें विश्वविद्यालयों मे ज्ञान, पठन-पाठन एव सम्प्रेषण का साधन बन जायेंगी। जब ऐसा हो जायेगा तो यह हमारे मानवीय साधनों के विकास एव उपयोग की दिशा मे नवीन युग का सूत्रपात ही नही करेगा वरन् देश मे विद्यार्थी अनुशासनहीनता की समस्या को सुलझाने मे भी सहायक होगा।

विद्यार्थी अनुशासनहीनता को बढाने वाला एक अन्य तत्त्व हमारे कालेजों के विद्यार्थियो की सम आयु वाले गैर-विद्यार्थी युवा-वर्ग की ओर हमारी उदासीनता है। उनमे से बहुत से उन नगरो व कस्बो मे जहा पर कालेज एव विश्वविद्यालय स्थित हैं, रोजगार मे लगे हैं एव काफी बेरोजगार भी हैं। जब कभी भी विद्यार्थी उपद्रव होते हैं, उनमे से कुछ इसमे भाग लेने के लिये आकर्षित हो जाते हैं, ऐसी स्थिति मे विद्यार्थी तथा गैर विद्यार्थी मे भेद करना कठिन हो जाता है। यदि सरकार एव स्वयसेवी सगठनो द्वारा गैर-विद्यार्थी युवावर्ग की (विशेषकर शहरी क्षेत्रो मे) आवश्यकताओ की ओर सक्रिय ध्यान दिया जाता है एव उन्हे कल्याणकारी, सास्कृतिक एव खेलकूद सम्बन्धी सुविधायें दी जाती हैं तो यह उनकी अतिरिक्त शक्तियो का सृजनात्मक कार्य में उपयोग को बढावा देगा और विद्यार्थी उपद्रवों को बढाने अथवा उनमे भाग लेने की सभावनाओ को समाप्त करने मे सहायक भी होगा। मुझे प्रसन्नता है कि योजना आयोग इस विषय पर विचार कर रहा है और चतुर्थ पचवर्षीय योजना के प्रस्तावो मे देश मे गैर-विद्यार्थी युवा-वर्ग की समस्याओं पर विशेष रूप से ध्यान देने के लिये एक केन्द्रीय युवा कल्याण बोर्ड एव ऐसे ही राज्य कल्याण बोर्ड गठित करने का निश्चय किया गया है।

अनुशासनहीनता उत्पन्न करने मे विद्यार्थियों के स्वय के उत्तरदायित्व पर विचार प्रकट करने से पूर्व इस प्रकरण में मैं राजनीतिज्ञो के भाग पर भी कुछ कहना चाहूँगा। यद्यपि मैं यह मानने के लिये तैयार नहीं हूँ कि राजनीतिज्ञ विद्यार्थियो को अनुशासनहीनता के कार्यों के लिये उकसाते हैं, फिर भी यह

सत्य है कि उनमें से कुछ उन्हे अपना समर्थन प्रदान करते हैं। वस्तुत. जब विद्यार्थी उपद्रव कानून व व्यवस्था की समस्या बन जाते हैं, एव लाठी-चार्ज एव गोली चलाई जाती है, तो किसी भी स्थिति मे कोई भी राजनीतिक दलों को उनसे पृथक नही कर सकता है। साथ ही साथ इस तथ्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि उनका हस्तक्षेप सामान्यतः समस्या को उग्र बनाता है एव वास्तविक क्षैक्षणिक स्तर पर समस्या के हल को कठिन बना देता है। एक शिक्षा शास्त्री के रूप मे मैं राजनीतिक दलो से यह अनुरोध करू गा कि वे विद्यार्थी अनुशासनहीनता को दलगत राजनीति से दूर रखें। यदि राजनीतिज्ञ इस प्रकार का समझौता कर लें एव ऐसी परम्परा बनालें कि जब कभी भी विद्यार्थी अनुशासनहीनता की गभीर घटना हो, तो वे सम्मिलित रूप से समस्या के कारणो एव हल ढू ढने का प्रयत्न करेंगे। ऐसा होने पर समस्या को उग्र बनाने वाला एक कारण स्वतः ही समाप्त हो जायेगा। अन्त मे मैं विद्यार्थियो के स्वय के बारे मे कुछ विचार व्यक्त करू गा। क्या यह आवश्यक नही है कि विद्यार्थियो को जो कुछ भी शिकायतें अथवा कठिनाइया हो, उनको उन्हें अपने शैक्षणिक अधिकारियो के समक्ष सवैधानिक एव तर्क सगत विधि से प्रस्तुत करना चाहिये? क्या ऐसी आचार-सहिता नही होनी चाहिये कि उनके प्रदर्शन शातिपूर्ण हो, हिंसा का वाणी एव कार्यों मे परिहरण किया जाय एव सार्वजनिक सपत्ति को न तो नष्ट किया जाय और न ही हानि पहुचाई जायें? क्या विद्यार्थियो के लिये यह उचित है कि वे पाठ्यक्रम, प्रश्नपत्र एव परीक्षा-परिणाम इत्यादि जैसे शैक्षणिक स्तर के मामलो के निर्धारण मे शैक्षणिक अधिकारियों के अधिकार पर विवाद करें? क्या विद्यार्थियो के बहुमत के लिये यह उचित है कि या तो वे निषेधात्मक रुख अपनायें अथवा निष्क्रिय बने रहे और अल्पमत उनकी अपेक्षया औचित्य पूर्ण सम्मति के बिना ही अनुशासन हीनता के कार्यों मे उनका नेतृत्व करे? यह निश्चित ही है कि शिक्षण सस्थायें कारखाने नही हैं, विद्यार्थी औद्योगिक श्रमिक नही है, छात्र-परिषदें ट्रेड-यूनियनें नही है, और छात्र व अध्यापको के मध्य कोई वर्ग-सघर्ष भी नही है। इस बात मे मुझे काफी आत्म सशय है कि मैं ये प्रश्न जो विद्यार्थियो के समक्ष रखने का साहस कर रहा हूँ, कहा तक उचित हैं? यदि मैं ऐसा कर रहा हूँ तो केवल इसलिये कि मैं एक व्यक्ति के नाते जो विद्यार्थी-जगत का केवल जीवन पर्यन्त मित्र ही नही है, वरन् जो उन्हे स्नेह, आदर एव सहानुभूति प्रदान करता है, एव जो उनसे भी प्रत्युत्तर मे इन्हीं की आशा करता है तथा वर्तमान सदर्भ मे वेदना एवं नैराश्य का अनुभव

करता हूँ । मै अपने तरुण विद्यार्थी मित्रो के मनन् के लिये यह सुझाव दूंगा कि अब वह समय आ गया है जब कि वे सम्मिलित रूप स इन प्रश्नो पर शांतिपूर्वक विना किसी आवेश के विचार-विमर्श एव वाद-विवाद करें एव स्वय उनके उत्तर ढूंढे । मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे जब ऐसा करेंगे तो विद्यार्थी अनुशासनहीनता, चाहे वह किसी भी क्षेत्र मे क्यो न हो, की वर्तमान अवस्था को समाप्त करने के लिये स्वतः ही साधन ढूंढ निकालेंगे । मुझे यह भी विश्वास है कि वे ऐसा अपने से बडो के उपदेशो, सहायता एव दबाव के बिना करेंगे । आज के विद्यार्थी भविष्य के नागरिक हैं । मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे इस तथ्य के प्रति जागरूक हैं कि जब हमारा देश बाहरी खतरो एव आतरिक सघर्षो से घिरा हुआ है, ऐसी स्थिति मे अनुशासन के अभाव मे हमारा राष्ट्र, विकास को तो छोडिये, जीवित भी नही रह सकेगा । भारत मे उनका भविष्य हमारी-जिन्हे कि मै सामान्यत "मरणासन्न पीढी" के नाम से पुकारता हूँ-अपेक्षा अधिक बडे दाव पर लगा हुआ है । हमारी विरासत की रक्षा करने का उत्तरदायित्व हमारी पीढी, जिसका कार्य केवल विरासत को हस्तान्तरित करना है, की अपेक्षा उन पर ही अधिक है । मेरा दृढ विश्वास है कि हमारे विद्यार्थी समुदाय का हृदय पूर्णत स्वस्थ है, एव जब कभी भी वे वर्तमान विद्यार्थी उपद्रवो से सम्बन्धित क्या, क्यो एव कैसे इत्यादि प्रश्नो की ओर ध्यान देंगे तो वे स्वय ही इन सब मामलो के लिये उपचारात्मक उपाय ढूंढेंगे एव उन्हे प्रयोग मे लायेंगे ।

जहाजरानी एवं परिवहन मंत्रालय,
भारत सरकार, नई दिल्ली

छात्र-असंतोष

साहस का विकल्प ?

•

वी. वी. जॉन

ऐसा लगता है कि शिक्षा के क्षेत्र मे हम ज्ञान के विकल्प की खोज मे है, और शासन के क्षेत्र मे साहस के विकल्प के लिए प्रयत्नशील हैं। विद्यार्थी-विक्षोभ से सम्बन्धित अभी हाल ही मे हुई चर्चाओ और वार्तालापो से कुछ इसी प्रकार का भ्रामक निष्कर्ष प्राप्त होता है।

एक उपकुलपति महोदय जो अब तक स्वय के अभिमानी एकाकीपन के लिए छात्रो मे ही नही, वरन् सकाय मे भी स्मरणीय थे, आज वे छात्र-परिवेदन के हिमायती तथा पुलिस की ज्यादतियो के आलोचक बन गये हैं। अन्य लोग इस नवीन विक्षोभ का कारण कतिपय राजनीतिक दलो के दुष्प्रभाव को मानते हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जो अध्यापको पर इसके लिए दोषारोपण करते हैं। जो व्यक्ति दिल्ली मे आयोजित गोष्ठी मे भाग लेने गये थे उन्होंने स्वय तथा छात्रो के अतिरिक्त सभी को इस विक्षोभ के लिये दोषी ठहराया। मुझे आभास होता है कि यह आत्मोचित्य–प्रतिपादन भविष्य मे होने वाली अन्य विशद्तर गोष्ठियो मे भी पुनर्जीवित रहेगा।

मुझे शका है कि छात्र-परिवेदन पर यह आकस्मिक एव सर्वव्यापी चिन्ता किसी समुचित बुद्धिपरक ज्ञान पर आधारित है, बल्कि यह हमारी राजनैतिक-कौशलतन्त्र का एक नवीन नारा है। आज किसी पदाधिकारी की स्थिति मे वह कोई दुस्सहासी व्यक्ति ही होगा जो छात्र परिवेदनो के कारणो का वास्तविक अन्वेषण और उनके निवारण करने का आश्वासन देगा क्योकि निष्प्राण व कमजोर शिक्षा-नीतियो के द्वारा अब तक जो देश को हानि पहुँच चुकी है, उसका उपचार करने के लिए हमारे कुशलतम शासकीय व्यक्ति की चतुराई व सामर्थ्य से परे अब किसी अन्य वस्तु की ही जरूरत पडेगी।

निम्नस्तर

जैसा कि प्राय होता है कि छात्र आन्दोलनकर्त्ता शिक्षा के वास्तविक अभावो से पूर्णरूप से अनभिज्ञ हैं या वे उनके प्रति अत्यधिक उदासीन हैं, जबकि आज की शिक्षा एक ऐसी व्यवस्था है, जो उन्हे शिक्षित नही करती और जिसके माध्यम से वृद्ध पीढियाँ पाठ्यक्रम के स्तर को लगातार निम्नकर नवयुवक पीढियो को छल रही हैं। आन्दोलनकर्त्ता कुछ तुच्छ कारणो को पकड, तिल का ताड कर अनावश्यक तूफान खडा कर देते हैं और स्व-प्रेरित उत्पातो के जायके लिया करते हैं। एक तरह से पदाधिकारियो को उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना चाहिए कि धृष्ट युवको का शोर पाठ्यक्रम को सरल बनाने या चलचित्र के सस्ते टिकट करने या किसी जन अधिकारी के विरुद्ध कोई दोषारोपण के आगे नही जाता। यदि इसके विपरीत वे शिक्षा के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण विषयो, जैसे, चुनौतीपूर्ण पाठ्यक्रमो, अच्छे पुस्तकालयो, प्रयोगशालाओ और उपयुक्त निवास की सुविधाओ तथा अन्तर्राष्ट्रीय-मान्य शैक्षणिक मानको के लिए शोर मचाते तो उनको प्रसन्न करने के लिये हमारी समस्त तुष्टीकरण की नीतिया व्यर्थ सिद्ध हो जाती। वाल्टेयर ने उन पदाधिकारियो को चेतावनी दी है "जब जनता विचार करना प्रारम्भ करेगी, तब हमारा अस्तित्व नही रहेगा।" देवयोग से उनमे (विशेषरूप से युवा-पीढी मे) ऐसी उत्सुकता के कोई चिन्ह दिखाई नहीं देते कि वे कभी (इन बातो पर) सोचना भी चाहेगे।

कुछ समय पूर्व, राजनैतिक नेताओ तथा शिक्षा-प्रशासकों की एक गोष्ठी मे छात्र-असतोष पर विचार-विमर्श हुआ। वक्ता के पश्चात् वक्ता (जिनमे कोई भी सक्रिय रूप से अध्यापन या अनुसधान से सम्बन्धित नहीं था) ने राजनीति मे भाग लेने वाले अध्यापकों पर दोषारोपण किया एव सुझाव दिया कि अध्यापको के राजनीति मे भाग लेने पर प्रतिबन्ध होना चाहिए तथा प्रथम चरण के रूप मे विधानमडल निर्वाचन के लिए अध्यापक चुनाव-क्षेत्रो को समाप्त कर देना चाहिए। प्रस्तुत समस्या के इस हास्यास्पद सरलीकृत प्रस्ताव को इससे पूर्व के एक अन्य सुझाव के तुलनीय माना गया है कि यदि प्रत्येक (शिक्षण-सस्था के) परिक्षेत्र मे अध्यापकों का एक समूह सगठित किया जाय जो छात्रो के दिशा-निर्देशन और कल्याण की रक्षा करे, तो यह समस्या हल हो सकती है। विश्वविद्यालय का कोई भी अच्छा छात्र अध्यापक से विद्वता व ज्ञान की अपेक्षा करता है, न कि उसके कल्याण हेतु व्यक्तिगत सलाह की।

यदि आप परामर्श दे सकें या कल्याणकारी कार्य कर सकें तो यह पूर्णरूपेण उचित है, किन्तु यह ज्ञान विकल्प नही हो सकता ।

प्रथक्करण

ज्ञान हमारे शिक्षा के परिक्षेत्र मे नगण्य है । जहाँ कही यथार्थ ज्ञान तथा तत्सम्बन्धी समर्पण है भी, वहा उसका तत्क्षण अग्रवर्ती उच्च अध्ययन-केन्द्रो के हेतु प्रथक्करण कर दिया गया है । उसको उन छात्रो के दूषित सम्पर्क से सुरक्षित रखा गया है, जो स्नातक नही हैं। परिणाम स्वरूप, जो विद्यार्थी स्नातक नही हैं, उन्हे ज्ञात हो जाता है कि अगर वे कक्षा मे उपस्थित नही भी होते हैं तो वे कुछ भी नही खो रहे है ।

शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन का प्रारम्भ इस ओजमयी शब्दावली से होता है . "भारत का भाग्य उसके शिक्षण-कक्षो मे ही रूपायित होगा ।" यह विचार करना भी दु.ख है कि जिस समय यह प्रतिवेदन प्रकाशित हुआ देश के कई क्षेत्रो मे शिक्षण-कक्ष रिक्त हो गये और देश का भाग्य ईट के टुकडो के फेंकने तथा आगजनी की घटनाओ के रूप मे सडको व बाजारो मे बन रहा था। कक्षा छोडने वाले छात्रों को पुन. शिक्षण-कक्षो मे लाने के लिए मैत्री और परामंश की अपेक्षा किसी अन्य वस्तु की अविलम्ब आवश्यकता है । ऐसे अध्यापको की आवश्यकता है जिनका ज्ञान शिक्षण-कक्षों को चेतना प्रदान करता है और उन्हे प्राणवान बनाता है । यदि कक्षाओं मे ज्ञानार्जन नही है तो युवको के खुले स्थानो मे होने पर अधिक हानि नही होगी, क्योकि ये स्थान शिक्षण-कक्षो के घुटे-दूषित वातावरण से अधिक स्वास्थ्यप्रद है ।

इसीलिए, कोई भी यह आशा कर सकता है कि समसामयिक विचार-विमर्श दूषित शैक्षणिक क्षेत्रो के लिए मात्र कल्याणकारी कार्यों वाला कोई अपव्ययी–कार्यक्रम प्रस्तुत नही करेगा । युवा छात्रो को ज्ञानमयी विद्वता से कम किसी भी वस्तु से ठगा नही जाना चाहिए । उनको आवश्यकता, किसी ऐसे व्यक्ति की है, जो उनके मस्तिष्क को उद्दीपन करे, न कि उसकी जो उनके चेहरे को धो सके या उनके दात साफ कर सके ।

छात्र–नेता

इस तथ्य को विस्मृत नही किया जा सकता कि कुछ युवक महाविद्यालयो में ज्ञानार्जन के लिए नही, अपितु शिक्षा का प्रतिरोध करने के लिए प्रवेश लेते हैं। जब उन्हे अध्ययन, क्रीडा या रचनात्मक कलाओ में अपनी

प्रतिभा दिखाने की आशा नही होती तो वे विशेष प्रकार के छात्र-नेतृत्व सम्बन्धी दुर्भाग्यपूर्ण अवसरो की खोज मे होते हैं। विद्यार्थियो के शैक्षणिक तथा अन्य प्रमाणपत्रो का परीक्षण किया जाना अवश्य ही रुचिकर होगा, एव यह अन्वेषित होने की सभावना है कि वे व्यक्ति जो नेतृत्व का चोला पहने हुए हैं और जिन्होंने विश्वविद्यालयो को दिवालिया (बौद्धिक रूप से) घोषित कर रखा है वे साक्षर मात्र ही हैं। क्या वे विश्वविद्यालयों और देश को शब्द-विन्यास सीखने से पूर्व ही चला सकेंगे ? क्या हमे उन्हे यह कहने का साहस हो सकेगा कि वे इस कार्य के लिए पूर्ण सक्षम नही है ?

आजकल मात्र साहस का रूप पुलिस को सहायता के लिए बुलाना ही होगया है। यह करने के पश्चात् हम आश्चर्यचकित हो जाते हैं, जब हमे ज्ञात होता है कि पुलिस के पास ऐसा कोई कार्य-तन्त्र नही है जिसके द्वारा बिना बल-प्रयोग के स्थिति को वश मे किया जा सके। हमे यह ईमानदारी से क्यो नहीं स्वीकार कर लेना चाहिए कि पुलिस को बुलाने का कार्य हमारी निराशाजन्य आवेशमय आतुरता का परिणाम है, तथा इस प्रकार का कार्य करने से हम ज्ञान-अज्ञान के बीच की (विवेक की) सूक्ष्म रेखा से दूर चले जाते हैं। ऐसा क्यो है कि पुलिस के व्यवहार की जन-जाँच के लिए शोर होता है, किन्तु छात्रो के व्यवहार की जाँच के लिए कोई माँग नही होती ? मैं एक मुख्यमत्री से परिचित हूँ जिन पर जाच के लिए दवाव डाला गया तो उन्होंने कहा कि वे ऐसा करेंगे, एव जाच भी विस्तृत होगी तथा सघर्ष से सम्बद्ध प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार पर दृष्टि रखी जायेगी। लेकिन बाद को उपर्युक्त माग के लिए दवाव नही डाला गया।

प्रज्ञान के स्वर

कई विश्वविद्यालयी नगरों मे यह स्थिति है कि वे छात्रो और पुलिस के मध्य झगडों के केन्द्र हैं। आज यह स्थिति हमारी शिक्षा के गुणाभास की माप है। वे अध्यापक कहाँ हैं ? वे माता-पिता कहाँ हैं ? कहाँ हैं वे जन-मानस की भावना से ओतप्रोत नागरिक ? दिल्ली मे धुंआधार भाषणों के मध्य प्रज्ञान के स्वर दूसरे दिन सुनाई पडे जब प्राध्यापक निर्मलकुमार बोस ने छात्रो मे व्याप्त असन्तोष के कारणो का विश्लेषण किया, वे थे विचारविन्दु थे—स्वयसेवी सगठन समाप्त होने को हैं, तथा छात्रो मे आदर्शवाद की कमी है, यह हमारे युवा जनतन्त्र के लिए पुष्टिकर होगा कि वह इस बात को जान ले कि सरकार प्रत्येक कार्य नहीं कर सकती (और करना भी नही चाहिए)। आज की

स्थिति मे विद्यालय परिक्षेत्र मे सरकार किसी तरह एक सीमा तक ही कार्य कर सकती है, भले ही वह पुलिस या उपकुलपतियो, छात्रनेताओ या ज्योतिपियो से परामर्श लेती रहे। किन्तु एक वात जो कि सरकार कर सकती है और उमे करना चाहिए कि वह "आवारावाद" के साथ विचार-विमर्श करना वन्द कर दे, और इस तरह उन्हे उत्तरदायित्व देने का प्रयत्न वन्द कर दे। छात्रो को दृढतापूर्वक वताया जाना चाहिए कि उनकी कठिनाइया अवश्य सुनी जायेगी किन्तु केवल तव जब वे कक्षाओ का मध्य समय मे त्याग नही करेंगे।

घटना सम्वन्धी जाँच की माँग के प्रति ढील या उपेक्षा नही होनी चाहिए, वरन् अपेक्षाकृत इस प्रकार के प्रत्येक अवसर का स्वागत किया जाना चाहिए। पुलिस अधिकारियो, छात्रो, अध्यापको तथा अन्य जो भी इससे सम्वन्वित हो, उनके व्यवहार और अभिवृत्तियो की विस्तृत जाच होनी चाहिए। प्रजातन्त्र उत्तरदायित्व पूर्ण भावना पर आधारित है और किसी भी व्यक्ति को अपने लोक-व्यवहार की जाँच मे आपत्ति नही होनी चाहिए।

इस प्रकार की जाँच स्वन्तत्र समूहो या सगठनो द्वारा होनी चाहिए, जिनकी निष्पक्षता तथा जन-भावना सामान्यत ज्ञापित होनी चाहिए। राज-नैतिक दलो को विलग करने के विपरीत उनको इस प्रकार के जाच-कार्य मे सक्रिय भाग लेने देना चाहिए, जिससे वे देश मे होने वाली घटना के विषय मे अपने स्पष्ट विचार वना सकें। यही नही, अपितु चुनाव के वर्ष मे भी देश-प्रेम की भावना तथा भविष्य निर्माण के प्रति जागरुकता को क्षणिक दलगत लाभो से सर्वोपरि माना जाना चाहिए। आवश्यकता है, एक ऐसे स्वेच्छिक स्वतन्त्र और उत्तरदायित्वपूर्ण सगठनो के जाल की, जो शिक्षा-क्षेत्र के प्रति जागरुकता का कार्य कर सके, तथा जो शिक्षा के नाम पर होने वाली त्रुटियो को प्रकाश मे लाये एव देश मे शिक्षा की प्रगति मे आने वाली वाधाओ के प्रति चेतावनी दे। विवेक और देशभक्ति के स्वर को आज के उपस्थित कोलाहल और सभ्रान्ति के वातावरण मे मुखर होने का अधिकार है।

अन्वेपणो से यह खोज होना समव हो सकेगा कि इस प्रकार के उत्पात कुछ राज्यो की अपेक्षा दूसरे राज्यो मे अधिक क्यो है? और क्यो कुछ सर्वो-त्तम सुसज्जित साधनो वाले विद्यालय परिक्षेत्रो मे निम्नस्तर के साधनो वाले तथा आवश्यक सुविधाओ से रहित परिक्षेत्रो की अपेक्षा, अधिक विक्षोभ है?

हम इसका कुछ भी उपचार अन्वेषित क्यो न करें परन्तु हमे दृढतापूर्वक शिक्षा के इस आधारभूत तथ्य को मान लेना चाहिए कि ज्ञान का कोई विकल्प नहीं है और न ही लोकजीवन मे साहस का कोई स्थानापन्न ।

●

रामबाग रोड,
जयपुर ।

छात्र किधर ?

•

डॉ० एस. एन. मुखर्जी

श्रेष्ठ शिक्षा किसी स्वस्थ समाज का आधार और प्रतिविम्ब दोनो है। और इस तथ्य से कोई विमुख नहीं हो सकता कि हमारे देश की सम्पूर्ण शिक्षा-प्रणाली दोषपूर्ण है। यह न तो राष्ट्र के और न ही व्यक्तिगत नागरिक के विकास मे योगदान करती है। किन्तु इस त्रुटिपूर्ण व्यवस्था के सर्वाधिक शिकार बालक हैं, जो विद्यालयो और महाविद्यालयो मे अध्ययन करते हैं। उनके पास कोई प्रेरणामय लक्ष्य नहीं है, इसीलिए वे व्यग्र हो उठते हैं तथा विनाशकारी एव अनुशासन हीन कहलाते हैं।

नवोदित युवाओ मे जो कल के भावी नागरिक हैं, एक अनुशासनशील मस्तिष्क के विकास की आज सर्वाधिक आवश्यकता है। यह वस्तुत परिताप का विषय है कि देश मे विद्यार्थी अपने अध्ययन से मुख मोडने, सडको पर घूमने, जन-सम्पत्ति की हानि तथा विनाश करने पर उतारू हैं। कतिपय उनमें से पुलिस की गोली के शिकार हो रहे हैं। वास्तविकता यह है कि अनेक देशो के विभिन्न विशाल युवा-समूहो मे विक्षोभ तथा क्राति की भावना आज सामान्यत. व्याप्त है।

१९५९ मे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने विश्वविद्यालयो के छात्रो मे अनुशासन हीनता के कारणो की जाच के लिए एक समिति नियुक्त की थी। इस समिति ने बताया कि विश्वविद्यालयो मे अनुशासनहीनता के कतिपय महत्व-पूर्ण उदाहरणो मे यह 'स्पष्ट साक्ष्य' है कि इसमें उन व्यक्तियो का हाथ है, जो महाविद्यालयो के बाहर ऐजेन्ट के रूप मे कार्य कर रहे हैं।

छात्र-असतोष केवल महाविद्यालय के छात्रो में ही व्याप्त नही है, वरन् दुर्भाग्य से माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों मे भी विस्तार पा रहा है और यही नही, लड़किया भी आज आदोलन तथा प्रदर्शन के चक्रवात मे खीच लाई गई हैं। इस सामान्य व्याधि के प्रमुख कारणो का सुन्दरता से सक्षिप्त निरूपण श्री यू. ऐन ढेबर ने किया है। वह कहते हैं —

"छात्र-असतोष समाज के विभिन्न स्तरीय घटको द्वारा किये गये त्रुटि-पूर्ण कार्यो को करने तथा जो कार्य अत्यावश्यक हैं, उनकी अवहेलना करने का ही परिणाम है। भारतीय माता-पिता परम्परागत ढग से अपने बाल-बच्चों के लालन-पालन को करने के अतिरिक्त उन आवश्यक बातो से अनभिज्ञ हैं, जिनकी आज उनसे अपेक्षा की जाती है। सामान्यत. अध्यापक समुदाय भी भारत के भावी नागरिक निर्माण करने के प्रशिक्षण देने के अपने दायित्वो के प्रति न तो सक्षम है और न सजग ही है। हमारे सामाजिक नेतृत्त्व ने भी प्राय माता-पिताओ को शिक्षित करने, आवश्यक पर्यावरण का निर्माण करने तथा अध्यापक समुदाय को समुचित स्तर-मूल्यों के विकसित करने हेतु प्रोत्साहन करने जैसे कार्यो की पूर्णरूपेण उपेक्षा की है। अततोगत्वा हमारे राजनैतिक नेतृत्व ने भी अपनी बौद्धिक एवं भावात्मक क्षमताओ पर बिना ध्यान दिये शैक्षणिक क्षेत्रों पर आक्रमण करके एक महान त्रुटि की है"[1]

प्रत्येक सामाजिक रोग जो देश के एक छोर से प्रारम्भ होता है, वह अवश्य ही कितने अवरोधो और नियत्रणो के होने पर भी देश के दूसरे कोने तक विस्तारित होता है। भारत की जनता का प्रत्येक अग आदोलन के चक्रव्यूह में हैं। अनुशासनहीनता हमारे राष्ट्रीय जीवन का एक अग बन गई है। माता-पिता न केवल अनुशासन को घर मे स्थापित करने मे असफल हैं, वरन् वे अपनी सतानों की शिक्षा के प्रति भी उदासीन हैं। प्राय. विभिन्न सस्थाओं के अध्यक्ष छात्रो के माता-पिताओ को उनके बच्चो की कमियो की ओर ध्यान आकर्षित कराते हैं, परन्तु वे उनसे कोई उत्तर नही प्राप्त कर पाते। यही नही जब विद्यालय और महाविद्यालय माता-पिताओ को विचार-विमर्श के लिए आमन्त्रित करते हैं, तो कठिनाई से कुछ ही लोग उपस्थित हो पाते हैं। किन्तु छात्रो में पदाधिकारियों के प्रति बढते हुए असम्मान तथा अनुशासनहीनता का प्रमुख उत्तरदायित्व अध्यापकों मे गुणों के अभाव पर है। हमारे पचास प्रतिशत अध्यापक न तो अध्यापन के कार्य के लिए पारगत हैं और न ही प्रशिक्षित। शिक्षा के निम्न स्तरों के कारण अध्यापकों और विद्यार्थियों के मध्य की खाई बढ गई है। इस पारस्परिक घनिष्टता की कमी ने "आत्मविश्वास के संकट" को उत्पन्न कर दिया है और चूँकि अध्यापक छात्रों के चित्त को अपने नियत्रण

---

१. यू. एन ढेबरत्व, स्टूडेन्ट अनरेस्ट. ?
एन एनक्वायरी' दी इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया, जनवरी २६, १६६७, पृष्ठ ४७

मे रखने मे असफल रहे हैं, तो विद्यार्थियों मे भी एक अलगाव का भाव उत्पन्न हो गया है। यह हमे स्वीकार करना पड़ेगा कि अध्यापन सग्रहण की प्रक्रिया है। किन्तु यदि अध्यापक के पास शिक्षा देने की कोई वस्तु न हो, तो विद्यार्थी या तो विद्रोह करेगा या वह शिक्षा के प्रति उदासीन हो जायेगा। एक प्रकार से विद्यालय तथा महाविद्यालय के बाहर विद्यार्थियो का आदोलन वस्तुत. कक्षा की अनुशासनहीनता का ही बाह्य प्रगट रूप है। यही नही आज एक योग्य अध्यापक भी विद्यार्थियों से समुचित सम्पको को बनाये रखने मे कठिनाई अनुभव करता है, क्योकि विद्यार्थियों तथा अध्यापको के मध्य का अनुपात (सख्यात्मक) बराबर बढ रहा है। लेकिन यहा हमे यह भी स्वीकारना होगा कि अध्यापन-स्तर का यह अवमूल्यन हमारी मुद्रा के अवमूल्यन से अधिक महगा बैठेगा।

किन्तु फिर भी हमें अपने विद्यार्थियो पर से आस्था नही उठा लेनी चाहिए। उनमे अभी तक कुछ आदर की भावना शेष है। यहाँ तक कि भारत के सर्वाधिक छात्र विक्षोभमय राज्य बगाल मे हमने देखा कि आज भी विद्यार्थी अध्यापको तथा वृद्धों के चरण छूते हैं, जो भारत मे अन्य कई स्थानो पर भी प्रचलित है। इस आदर-भाव को बनाये रखने के लिए उचित प्रकार के अध्यापको की आवश्यकता है।

उन व्यक्तियों द्वारा, जो छात्रों मे अनुशासनहीनता के लिये खेद व्यक्त करते हैं, इस तथ्य को पूर्णरूपेण समझा नही गया है कि एक सीमा तक यह प्रजातन्त्र की अनिवार्य शर्त है कि प्राधिकारी से उसके कार्यों के लिये जवाब पूछा जाय। गत कुछ शताब्दियो मे जो जन जागरण का प्रसारण हुआ है, उससे प्राधिकार (Authority) के सन्दर्भ में दो प्रमुख प्रभाव उत्पन्न हुए दृष्टिगोचर होते हैं। एक ओर तो इसने नीति-निर्धारण के क्षेत्र मे अधिकारवादी शासन-सत्ता के स्थान पर तार्किकता पर बल दिया है, साथ ही इस अधिकार को भी स्थापित किया है कि प्राधिकार-सत्ता को उसी सीमा तक सहन किया जायेगा जहाँ तक वह युक्तायुक्त बुद्धि-सगत हो। इससे आज प्राधिकार-सत्तावाद की व्यवस्था मे विघटन तथा रूपान्तरण उत्पन्न हो गया है।

दूसरी ओर, तर्क को बढावा देकर, बजाय इसके कि पहले मानव जिन विषयों पर परम्परा या सत्ताधारी निर्णयो को ही मान्यता देता था, अब स्वयं के निर्णय में आनन्द और उत्तरदायित्व का अनुभव करता है। यह हमारी मूर्खता होगी, यदि हम आज के विद्यार्थियों से कल के छात्रों मे पाई जाने वाली सहज स्वीकारोक्ति की अपेक्षा करें।

अतः यह आश्चर्यजनक नही है कि छात्र महाविद्यालय या विश्वविद्यालय के शासकीय सत्तावाद के रुख को चुनौती दे तथा अपने प्रति हो रही उपेक्षा की आलोचना करे। एक उदाहरण के द्वारा सामान्य विद्यार्थी की अभिवृत्ति का निरूपण किया जायेगा। कुछ मास पूर्व दिल्ली विश्वविद्यालय के एक हिन्दू महाविद्यालय की छात्र-संसद ने आचार्य को कटघरे मे प्रस्तुत किया, क्योकि महाविद्यालय प्रशासन की यह त्रुटि थी कि वह गत वर्ष मे स्वीकृति प्राप्त प्रशाल (हाल) को पुन निर्मित करने मे सफल नही रहा था। लगभग दो घण्टे तक आचार्य महोदय से जवाब-सवाल हुए। उनसे यह पूछा गया कि प्रशाल मे पुर्ननिर्माण के आश्वासन को पूर्ण क्यो नही किया गया ? क्यो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रशाल के लिए दी जाने वाली आश्वासित आर्थिक सहायता को वापिस ले लिया गया ? महाविद्यालय के पदाधिकारियों ने छात्रनिधि को क्यो नही लौटाया ?

जो आचार्य पहले इन प्रश्नो को समाप्त करने के प्रयत्न मे थे, उन्होंने शीघ्र इस बात का अनुभव कर लिया कि छात्रो को हल्के भाव से नही देखा जाना चाहिए तथा उन्होंने पूर्ण चुप्पी के साथ अवरोध का सामना किया। अध्यक्ष ने 'प्रधानमन्त्री' तथा उनके 'ससदीय साथियो' का पक्ष लिया कि इस मामले मे अतिरिक्त उपायो को त्याग देना चाहिए।[1] इसने इस प्रत्युत्तर को जन्म दिया कि यही एक मात्र भाषा है, जिसे पदाधिकारी समझते हैं।

तत्पश्चात्, आचार्य जी ने इस स्थिति के विषय मे कॉलेज के अपने अन्य सदस्यो से विचार-विमर्श किया। इस गोष्ठी मे भी आचार्य से प्रशासकीय वर्ग द्वारा दिये गये इस आश्वासन को पूरा करने के लिए कहा गया कि छात्रनिधि को लौटा दिया जायेगा। आचार्य ने उनको आश्वासन दिया कि महाविद्यालय प्रबन्धको का विचार इसे वार्षिक किश्तों पर चुकाने का है।

हमारे शिक्षा जीवन में आन्दोलनकारी वातावरण का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण छात्रो मे सामान्यत. व्याप्त तथा विकसित होता हुआ नैराश्य है। इन युवाजनो के द्वारा जीवन मे पदार्पण होने का क्या बीमा है ? यहा यह स्मरणीय

---

१ लेखक के कथन से कदाचित यह प्रगट होता है कि यह विवाद केन्द्रीय सरकार के महानुभावों तक गया, जहाँ यह निर्णय लिया गया कि इसे अन्य किसी ढग मे सुलझाने के बजाय छात्रों की इच्छानुसार ही सुलझाया जाना चाहिये—सम्पादक.

है कि मई, १९६७ की समाप्ति तक देश मे २ ६३ लाख आवेदक रोजगार कार्यालयो मे पजीकृत थे । यह सख्या १३ लाख आवेदको की वृद्धि को प्रदर्शित करती है, जो गतवर्ष इसी मास से वृद्धि पर है । इस साख्यिकी से यह भी प्रकाश मे आता है कि पूरित स्थानो की सख्या प्रतिवेदित रिक्त स्थानो की सख्या से न्यूनतर थी । अधिसूचित रिक्त स्थानो की सख्या मई, १९६७ के मध्य ६४,९११ थी । यह सख्या फिर भी मई, १९६६ की सख्या ७३,००० से कम थी । इसमे यह प्रमाणित होता है कि एक बडी सख्या मे मेट्रिक्यूलेट तथा प्रथम उपाधि प्राप्त छात्र बेरोजगार हैं अथवा बेरोजगारी के मध्य से गुज़र रहे हैं । व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र मे भी बेरोज़गारी आ गई हैं क्योकि प्रशिक्षित व्यक्तियो की माग तथा पूर्ति के मध्य सामजस्य नही है । सभी प्रकार की इन अस्तव्यस्ताओ का परिणाम छात्र-समुदाय मे विद्यमान विक्षोभ हैं तथा यह विक्षोभ ही अनिवार्यतः आंदोलन के किसी न किसी रूप को धारण करता है ।

छात्र-आन्दोलन के पीछे एक और दुर्भाग्यपूर्ण बात पनप रही है । चाहे कुछ भी सदर्भ हो, छात्र बहिर्गमन (वॉक-आउट) तथा हड्तालो के द्वारा अपनी प्रतिक्रिया को प्रकट करते हैं और फिर यहा राजनीतिक नेतृत्व भी प्राय इन्हे इन अतिवादी प्रतिक्रियाओ मे सम्मिलित करने का प्रयत्न करता है । वस्तुत' ऐसे अवसर भी आ सकते हैं जब छात्र राजनीतिक आदोलनो मे अन्य लोगो के साथ सहगामी हो, किन्तु ऐसे अवसर किसी देश के स्वाभाविक जीवन मे नगण्य हैं । अब तो किन्चित उत्तेजना मात्र से ही छात्रो की हडताल प्रारम हो जाती है तथा काफी समय से ये हमारे शैक्षणिक जगत की एक नियमित जानी पहचानी बात हो गयी है । नि सदेह इसका कारण यह है कि राजनैतिक स्वार्थों के लिए छात्रो का शोषण हो रहा है । यही नही, शैक्षणिक पदाधिकारियो के व्यवहार-कुशलताहीन निर्णयों से भी छात्र हिंसक प्रतिकार के उपस्थित प्रलोभन की ओर आकर्षित हो जाते हैं ।

अन्ततोगत्वा, सामान्य आदर्शवाद का ह्रास है, अर्थात् हमारे राष्ट्रीय जीवन के मूल्यो का अवमूल्यन । कहा हैं वह आज लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, विवेकानन्द तथा नेताजी सुभाष बोस के उत्साह की प्रेरणा देने वाला युग, जो छात्रो और युवाओ मे महान् अनुभवातीत कार्यों मे तीव्र लगन उत्पन्न करे तथा इस प्रकार उनकी शक्ति तथा दृष्टि को शक्तिहीन, अनुपलब्धिपूर्ण उपद्रवो तथा विनाशो से नवीन दिशा प्रदान करे ? युवाजन प्रौढो की कथनी और करनी के अन्तर को देखकर किंकर्त्तव्यविमूढ हैं । विद्यार्थियो से अपेक्षा की जाती है कि वे एकनिष्ठ सत्य के पुजारी और अनुशासनशील रहें किन्तु यदि हम कतिपय

महत्वपूर्ण उदाहरणों के अतिरिक्त भी देखें कि हममे से कितने उपदेशक हैं, जो स्वय के जीवन मे अपने उपदेशों को व्यवहृत करते हैं ?

उपसहार मे, मै यह कहना चाहूंगा कि यदि हम वस्तुत देश के निर्माण तथा उसके यथानाम तथागुण के लिए कृतसकल्प है, तो हमे नवोदित पीढी को इस द्रुतवान दुखान्त विपत्ति से रक्षा करनी होगी। और यह विशेषत. वर्तमान प्रजातन्त्र की व्यवस्था के सदर्भ मे, तब ही सम्भव हो सकता है जब हम गहनता, तार्किकता तथा युक्तायुक्तता के साथ अपने समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, नैतिकता, प्रशासन, शिक्षा, नियोजन इत्यादि पर गम्भीरता से पुनर्विचार करें।

●

विद्या भवन, शिक्षक महाविद्यालय,
उदयपुर,

छात्र-असन्तोष : समस्या तथा समाधान

•

डॉ० सम्पूर्णानन्द

छात्र-असतोष तथा हिंसात्मक उपद्रवों के रूप मे उसका प्रदर्शन किसी एक शहर या राज्य की छुटपुट घटना नही रह गया है। कुछ लोग इसे हमारे किशोर जनतत्र के बालापन का कष्ट मानते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि हमने 'भारत छोडो' आन्दोलन मे छात्रो को सम्मिलित कर जो बीज-वपन किया है, आज उसी का फल हमे भुगतना पड रहा है। पर ये दोनो अनुमान सतहीन और त्रुटिपूर्ण हैं। अन्य प्रजातान्त्रिक देशों के इतिहास को देखने से पता चलता है कि जनतंत्र के विकास तथा नई पीढी व छात्रो की उग्र अनुशासन-हीनता का कोई सम्बन्ध नही है। यहा तक कि जिन देशों ने अपनी स्वतत्रता भूतपूर्व शासको से अनवरत सशस्त्र क्राति द्वारा प्राप्त की है, वहा भी नई सरकार के शातिपूर्ण रचनात्मक कार्यों मे लग जाने के बाद नई पीढी के हिंसात्मक सघर्ष का सामना नही करना पडा है।

प्रायः यह देखा गया है कि हर वर्ष परीक्षा निकट आने के साथ-साथ छात्रो की अवाछनीय गति-विधिया शिथिल पडती जाती हैं और धीरे-धीरे समाप्त हो जाती हैं। पर इन दिनों की शाति को देखकर निश्चिन्त हो जाना गलत होगा।

इस समस्या पर प्रकाश डालने से पूर्व मैं इस स्थिति के मुख्य-मुख्य परिणामो की ओर भी ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। यह कितनी दयनीय स्थिति है कि जब देश पर आन्तरिक व बाह्य खतरो के बादल मडरा रहे हों, उस समय फूट-परस्त तथा एकता-विरोधी शक्तियों को इस प्रकार का प्रबल समर्थन मिले और जनता का ध्यान नवयुवकों के इस निष्फल तथा अरुचिकर आन्दोलन की तरफ जाय, जो उनके स्वाभाविक शुभचिन्तको—माता-पिता, सरक्षक तथा शिक्षकों के ही विरुद्ध है। सस्कृति, कुलीनता तथा शिष्टाचार के बन्धन शिथिल होने की यह स्थिति अत्यन्त शोचनीय है और इसकी पूर्ति मे एक पीढी से भी अधिक समय लगेगा। अध्ययन के घण्टो की अपार क्षति हुई है। उससे

भी अधिक क्षति ध्यान लगाकर कठिन कार्य करने की आदत की हुई है। अविवेकपूर्ण, शरारती व विनाश की भावना का जो विकास छात्रो मे हुआ है, उसके परिणामो की कल्पना नहीं की जा सकती।

छात्र सार्वजनिक सम्पत्तियो को नष्ट कर रहा है। वह तनिक भी यह विचार नहीं करता कि उनका उपयोग वह स्वय भी बराबर करता रहा है और भविष्य मे भी उसे उनकी आवश्यकता होगी। वह भूल जाता है कि निकट भविष्य में मजिस्ट्रेट या पुलिस अफसर के रूप मे सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा करने का दायित्व उस पर भी जायेगा। आवेश के क्षणो मे वह नही समझता कि जिन चीजो को वह नष्ट कर रहा है उसे उसके माता-पिता ने कर देकर निर्मित किया है। इस तरह की क्रूर उपेक्षा एक ऐसे चरित्र का द्योतक है, जो अपने अन्दर खतरनाक मनोवृत्तिया छिपाये हुये है।

समस्या का शोचनीय पहलू

समस्या का एक और शोचनीय पहलू है, जिसकी ओर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। जनता के किसी भी अग के साथ सघर्ष मे पुलिस जितनी दूर रहे, उतना ही समाज के लिये हितकर होगा। नित्य छात्रों व पुलिस के सघर्ष, नित्य-प्रति के लाठी-चार्ज व गोली-काण्ड, इसे और भी क्रूर बना देते हैं। मानव जीवन के प्रति यह उदासीनता तथा असाधारण व अरुचिकर कार्यों को सामान्य कार्य बना लिया गया है। अगर सरकार को सार्वजनिक सम्पत्ति तथा अधिकारियो की रक्षा के लिये हर दूसरे दिन पुलिस बुलानी पडे, तो यह यथार्थ मे एक पुलिस राज की भूमिका होगी।

इस समय छात्र-समस्या एक शाति और व्यवस्था का प्रश्न बन गई है। मेरे विचार से इस पहलू पर अब तक जो विचार किया गया है, वह यत्रवत रहा है। इसकी गम्भीरता को नहीं आका गया है। छात्रों के साथ अनावश्यक ढिलाई की गई है। उन्हे यह समझने का अवसर दिया गया है कि वे कानून के ऊपर हैं, और दूसरी ओर जनता मे असुरक्षा की यह भावना भर जाती है कि सरकार आन्तरिक अशाति से उनकी रक्षा करने में असमर्थ है। इससे जनता तग आकर किसी भी प्रकार के परिवर्तन का स्वागत करेगी ताकि वर्तमान शासक हट सकें। इसका अर्थ है जनतत्र की मृत्यु। ऐसी स्थिति तानाशाही उथल-पुथल के अनुकूल हैं, जिसमे किसी पडोसी देश की मुक्ति-सेना आकर स्थिति को सम्हाले।

इसके सम्बन्ध मे कुछ समय पूर्व की राज्यों के मुख्य मन्त्रियो द्वारा की गई सिफारिशें सराहना की पात्र है। मेरा सुझाव है कि सार्वजनिक सम्पत्ति के विनाश व तोड-फोड के विरुद्ध एक विशेष कानून बनाया जाना चाहिये। सभी विश्वविद्यालयो तथा शिक्षण सस्थाओ में आक्टर-मजिस्ट्रेट नियुक्त करने की पद्धति पुनः लागू की जाय।

परम्पराओ की समाप्ति जरूरी

पिछले वर्षों मे कुछ ऐसी परम्परायें स्थापित हो गयी हैं जिन्हें समाप्त किया जाना चाहिये। जब छात्र हडताल करना चाहते हैं, या ऐसा कार्य करना चाहते हैं, जिससे सामान्य काम-काज ठप्प हो जाय तो एक सघर्ष-समिति बन जाती है और अधिकारी गणो को उनसे समझौते की बात-चीत करनी पडती है। यह परम्परा समाप्त होनी चाहिये। शिक्षण-सस्था के प्रधानाचार्य से समान स्तर पर बात करने वाले किसी भी गुट या व्यक्ति को मान्यता नहीं मिलनी चाहिये। छात्र निवेदन कर सकते हैं परन्तु माग नही कर सकते।

छात्र-सघो के सम्बन्ध मे भी दृढता अपनानी चाहिये, उनकी अनिवार्य सदस्यता समाप्त की जानी चाहिये। इनके द्वारा उन थोडे से छात्रो को जो कभी-कभी अवाछनीय तरीको से पदाधिकारी निर्वाचित हो जाते हैं, समस्त छात्रो की ओर से बोलने का अधिकार मिल जाता है, चाहे अधिकाश छात्र सघ के नाम पर किये जाने वाले कार्य के विरुद्ध ही क्यो न हो।

मुख्य मन्त्रियों ने एक निर्णय यह भी किया था कि विश्वविद्यालयों को राजनीतिक आदोलनो का भर्ती-केन्द्र न बनने दिया जाय। इस पर यथा शीघ्र अमल होना चाहिये। अगर सभी राजनीतिक दल यह समझौता कर लें कि छात्रों को राजनीतिक कार्यों के लिये आकृष्ट नही किया जायेगा, कि छात्र विश्वविद्यालय के किसी भी असतोष मे सक्रिय रुचि नही लेंगे, तो समाज उनका बहुत कृतज्ञ रहेगा। उपकुलपतियो व प्रधानाचार्यों को पर्याप्त अधिकार दिये जाने चाहिये ताकि वे विश्वविद्यालय के क्षेत्र मे अध्ययन के अतिरिक्त अन्य कार्यों को रोक सकें तथा छात्रावासो व छात्र-निवासो मे इतर व्यक्तियो को न घुसने दें।

राजनीति प्रेरित छात्र-आन्दोलन खतरनाक है

पर यह उल्लेखनीय है कि समस्त दूषित प्रभावो के बावजूद छात्र-आन्दोलनों मे राजनीतिक पार्टियो का भाग लेना बहुत खतरनाक नही है।

यह आन्दोलन सगठित नही है, न इसका कुछ उद्देश्य है। वस्तुत छात्रों की वास्तविक या काल्पनिक शिकायत को दूर करने से आन्दोलन समाप्त हो जायगा। यदि कोई राजनीतिक दल छात्र-आन्दोलन को अपनी राजनीतिक रण-नीति का अग बना ले, तो खतरा वास्तविक गहरा तथा दूरगामी बन जाता है। तब वह एक राजनीतिक उद्देश्य के लिये, इसी तरह के अन्य कार्यों से सम्बद्ध एक योजनाबद्ध तथा सगठित कौशल बन जाता है। इस तरह का आन्दोलन समाप्त नही हो सकता, क्योकि उसके लिये ईधन सदा प्राप्य रहेगा। मुझे भय है कि वर्तमान छात्र-आन्दोलन इसी वर्ग में आता है।

जब किसी क्षेत्र मे उपद्रव भयकर रूप धारण कर लेता है, तो गुण्डो तथा समाज-विरोधी तत्त्वों को पकड लिया जाता है। यह सावधानी की दृष्टि से उचित है, क्योकि कुछ लोग सदा ऐसे अवसरो से लाभ उठाने की ताक में रहते हैं। परन्तु मै चेतावनी देना चाहता हूँ कि अन्य व्यक्तियों के अपराधो के लिये, इन्हे बलि का बकरा न बनाया जाय। सरकार तथा पुलिस को यह काम आसान पडता है कि सारा दोप इनके माथे पर मढ दें और वास्तविक अपराधियो को अछूता छोड दें, क्योकि वे सफाई के साथ अपने को बचा सकते हैं। जब तक सरकार उन्हें पूरा सरक्षण न दे, कोई भी मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी किसी राजनीतिक पार्टी पर दोप लगाकर अपने लिये परेशानी मोल लेना नही चाहती। यह सर्व विदित है कि देश मे ऐसे भी राजनीतिक दल हैं, जो जनतन्त्र की रक्षा मे तनिक भी रुचि नही रखते। जब जनतत्र इनके अनुकूल पडता है, तो ये लोग उसकी प्रशसा में गीत गाने से नही अघाते। अगर उनमें से कोई व्यक्ति अपनी राष्ट्र विरोधी गति-विधि के लिये पकडा जाता है, तो इस कार्य को जनतन्त्र पर नग्न आक्रमण की संज्ञा देकर निन्दा की जाती है।

हमारे छात्रो का विशाल बहुमत किसी भी राजनीतिक दल से सबधित नही है, और वे इरादे से किसी राजनीतिक विद्रोह के अग्रिम दस्ते का कार्य भी नही कर रहे हैं। ऐसे किन्ही भी उद्देश्यो से वे सर्वथा अपरिचत हैं, परन्तु बागडोर उन लोगों के हाथ में है, जो जनतत्र तथा भारतीय स्वतत्रता के शत्रु हैं। ये लोग छात्रो को अपने हाथ का खिलौना बनाते हैं, परन्तु उनकी दृष्टि मे छात्रों का तोप के भोजन के अतिरिक्त अन्य कोई महत्व नही है।

बाहरी तत्त्वो का प्रवेश अशुभ

छात्रो की शिकायतो पर समुचित ध्यान देने के लिये एक फौरम की स्थापना के प्रस्ताव पर विचार किया जा रहा है। सिद्धान्तत ऐसे किसी भी फौरम की आवश्यकता नही है। यह कार्य शिक्षण सस्था का प्रधान कर सकता है, अगर ऐसी कोई औपचारिक सस्था की स्थापना फिर भी की जाती है, तो मेरा तीव्र आग्रह है कि उसमें किसी भी बाहरी व्यक्ति को शामिल न किया जाय अनुशासन की दृष्टि से बाहरी व्यक्ति को शामिल करने के परिणाम हानिकर होंगे।

ट्रेड-यूनियन की भावना हानिकारक

विद्या-मन्दिरों मे ट्रेड-यूनियन भावना के विकास तथा प्रोत्साहन से अधिक हानिकर कोई चीज़ नही हो सकती। यह भावना किसी भी तरह नहीं आनी चाहिए कि शिक्षक व छात्र विभिन्न वर्गों के हैं, या उनके हितो मे टकराव है, या उन्हें एक दूसरे के अनुचित हस्तक्षेप से सुरक्षा की आवश्यकता है। बाहरी हस्तक्षेप चाहे कितने ही नेक इरादे से हो, विश्वविद्यालय के क्षेत्र को सघर्ष का मैदान बना देता है।

योग्य शिक्षको का अभाव

स्वतन्त्रता के बाद शिक्षा के प्रसार के कारण बडी सख्या मे अध्यापक भर्ती किये गये हैं। विश्वविद्यालय की डिग्री शिक्षक बनने के लिए पर्याप्त नही है। उसे दृढ सकल्प तथा प्रखर बुद्धि का व्यक्ति होना चाहिए। वह मानव स्वभाव का पारखी हो और अपने शिष्यो तथा उनकी समस्याओं के प्रति सहानुभूति पूर्ण रुख अपनाये। परन्तु हमारे कालेजों तथा विश्वविद्यालयो के बहुत से शिक्षको मे इन गुणों का अभाव है। वे अनुभव की आग मे तपे नही हैं। उनकी अवस्था ऐसी हैं कि कोई भी आदोलन छिडने पर उनकी रगो मे भी जोश भर जाता है और अप्रत्यक्ष रूप से ही सही, परन्तु उनका समर्थन अशाति फैलाने वाले तत्त्वो को मिलता है, ऐसे व्यक्तियो मे शिक्षक का गुण पैदा होना अभी शेष है। हम शिक्षा के प्रसार पर रोक नही लगा सकते परन्तु वरिष्ठ, कनिष्ठ प्रधानाचार्य, उप-कुलपति, प्रोफेसर, रीडर व प्राध्यापको के मध्य अधिक स्वच्छन्द मेल-जोल व सम्पर्क होना चाहिए। विश्वविद्यालय के जीवन तथा शिक्षा सम्बन्धी समस्याओ पर प्राय' वाद-विवाद होना चाहिए। यह सब कुछ सस्था के प्रधान पर निर्भर करता है। सरकार को शिक्षको के साथ घनिष्ट सम्पर्क स्थापित कर सार्वजनिक प्रश्नों को हल करने मे उनका सहयोग लेना चाहिए, ताकि उनमे उत्तरदायित्व की भावना आ मके।

वर्ग-विभाजन मे परिवर्तन

शिक्षा के प्रसार से छात्र की जनसख्या के वर्ग-विभाजन मे भी परिवर्तन आ गया है। आर्थिक समृद्धि, जो विशेषत. खाद्य की ऊची कीमतो के कारण आई है, से वहुत सारे परिवार अपने वच्चो को स्कूल व कॉलिज में भेजने लगे हैं। ये विद्यार्थी ऐसे परिवारो से आते हैं, जिनमें सगठित समाज के लिए आवश्यक भाषा व व्यवहार के सम्वन्ध मे कोई प्रतिवन्ध नही है। इन्हे जव गलत ढग से छेडा जाता है, या उनकी भावनाओ को ठेस पहुचाई जाती है तो वे आवेश मे आकर उचित अनुचित का भेद भूल जाते हैं। अनुशासन उन्हें अखरता है। उनकी विशेष देख भाल की जानी चाहिए और उनमे तथा शिक्षको व पुराने छात्रो मे घनिष्ट सम्पर्क स्थापित करने के अधिक से अधिक अवसर देने चाहिए।

अधिक भीड-भाड के कारण स्नायुओ पर जो जोर पडता है, वह अनुशासनहीनता के रूप मे फूट पडता है। यह वातावरण विचारो को केन्द्रित करने या अध्ययन के लिए अनुकूल नही है। इसमे भावनायें अवश्य भडक सकती है। कॉलिज के घन्टों के बाद का उनका अनुभव भी स्थिति मे सुधार नहीं ला सकता। उनके लिए स्वस्थ मनोरजन तथा खेल की सुविधायें नही के बराबर हैं, ऐसी स्थिति मे वे या तो सडको पर आवारा घूमेगे, अभद्र टिप्पणिया करेंगे या छात्रावासो मे अवाछनीय कार्य करेंगे। मुझे पता चला है कि बहुत से विश्वविद्यालयो मे शराव पीने की आदत वढती जा रही है।

छात्रो की असतोषप्रद परिस्थितियाँ

हमे अपने देश के शिक्षा प्रसार पर गर्व है और प्रति वर्ष वढती हुई छात्र सख्या पर हम सतोष व्यक्त करते हैं, परन्तु हम कभी यह विचार नही करते कि हमारे छात्रों को किन परिस्थितियो मे रहना पडता है। हम उन्हे निजी वस्तुओ की तरह कमरों में ठू स देते हैं और अस्वस्थ वातावरण में खुला छोड देते हैं। हम उन्हें अवाछनीय आदतें डालने की छूट देते हैं। हम यह नहीं समझते कि भोजन व नीद की तरह मनोरजन भी जीवन के लिए आवश्यक है। फिर जव गडवडी होती है तो छात्रों को दोष देते हैं। उनके इस दुर्व्यवहार के लिए वे अकेले दोषी नहीं हैं। इसका अधिकांश दोष समाज पर आता है। आज का छात्र मानव जाति का निकृष्ट नमूना नहीं है। सद्व्यवहार के द्वारा उसे एक गुणवान नवयुवक बनाया जा सकता है। ससार के अन्य छात्रो की तरह वह भी स्वभाव से उदार है। भारतीय होने के नाते

अपने पूर्वजों की सांस्कृतिक देनें उसमे भी विद्यमान है—भले सुषुप्त अवस्था मे हो। परन्तु हम उसे अस्वाभाविक स्थितियो मे रखते हैं और असत्य बोझ उस पर डालते है। शिक्षक व छात्र के मध्य आज अनुपात इतना अवैज्ञानिक हो चुका है कि शिक्षक अपने छात्रो को पहचानते तक नही। इसके कारण छात्रो को मार्ग दर्शन नही मिलता और वे ऐसे व्यक्ति की खोज में हैं, जिसके लिए उनके हृदय में सम्मान हो और जो मार्ग-दर्शक, दार्शनिक व मित्र बन सके।

छात्रो की दयनीय स्थिति

घर की स्थिति और भी शोचनीय है, विशेषकर शहरी मध्यमवर्गी परिवारों के छात्रो की स्थिति बडी दयनीय है। कुछ छात्रों को अपनी महगी शिक्षा के खर्च को पूरा करने के लिए स्वय भी कमाना पडता है, जो इस परेशानी से बचे हैं वे भी समाज मे व्याप्त आर्थिक कठिनाइयो के कारण परेशान रहते हैं। इसके अतिरिक्त वे देखते है कि बेरोजगारी का भयकर दानव उनके सामने मु ह खोले खडा है। इसमे कोई आश्चर्य नही कि इतनी यातनाओ से ग्रस्त मस्तिष्क खुराफातो की ओर झुक जाता है।

विवाह की आयु घटाना आवश्यक

इस स्थिति का एक और पहलू भी है। जैसा कि एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक का कथन है कि विवाह की शारीरिक व आर्थिक अवस्थाओ मे भारी असमानता बढ रही है। यह बहुत हानिकर है। प्रकृति मनुष्यकृत स्थितियो की प्रतीक्षा नहीं करती। प्रकृति अपना बदला स्नायु-दौर्बल्य, कुटिल व्यक्तित्व तथा चरित्र-भ्रष्टता से चुकाती है। सेक्स की भावना कुछ समय तक दबाई जा सकती है, परन्तु वह दूसरे रूप मे फूट पडती है। समाज को इस पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए। हम बालविवाह मे वापस नही जा सकते, परन्तु विवाह की आयु घटना आवश्यक है। कुछ देशो मे नवयुवक व नवयुवतिया पिछली पीढी की अपेक्षा कम आयू मे विवाह करने लगे हैं।

सादगी एव मितव्ययता का अभाव

कॉलेज या विश्वविद्यालयो मे रहने के प्रासगिक व्यय भी छात्रों को बहुत भारी पड रहे हैं। वहा पर सादा जीवन व मितव्ययता का कोई वातावरण नही है। शिक्षक भी इसका उदाहरण नही कायम करते। दिखावा अधिक है और फैशन का प्रवेश निषिद्ध स्थानो मे भी हो चुका है। पहले

सस्कृत के छात्र नगे पाव धोती पहने और एक गज का कपडा कधे मे डाले चलते थे, परन्तु मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब मैंने वाराणसी-सस्कृत विश्वविद्यालय के छात्रों को पतलून धारण किये देखा। एक समाचार पढकर मुझे लगा कि यह आज की स्थिति पर एक रोचक टिप्पणी है। कुछ छात्रावासो मे राजस्थान सरकार छात्रों को कपडे मुफ्त देती है। पर उन्होंने खादी लेने से इन्कार कर दिया क्योकि इससे उनके सहपाठी उन्हे नीची निगाह से देखते हैं।

कुछ ऐसी स्थायी कठिनाइया हैं, जिनसे सभी छात्र पीडित हैं और ये कठिनाइया शिकायतो को जन्म देती हैं। चाहे विशिष्ट असन्तोष नहीं, तो भी एक असतोप की भावना वहां सदा रहती है। जो व्यक्ति निरन्तर इन स्थितियो मे रहता है, उसके चरित्र में कुछ त्रुटिया आ जाती है और वह अस्वाभाविक ढग से सोचने लगता है, वे कार्य करता है जो उसके तथा राष्ट्र दोनों के लिए हानिकर हैं। वह तरुणाई का आशावाद व उत्साह खो देता है। उसमे सभी के प्रति अविश्वास की भावना भर जाती है। मिथ्या धर्म-निरपेक्षता के कारण पुराने धार्मिक विश्वास टूट चुके हैं, परन्तु नये नही पैदा हुए हैं। जो शिक्षा वह प्राप्त करता है, वह यान्त्रिक है और उसे जीवन को मान्यतायें नहीं प्रदान करती। उसके जीवन का न कोई लक्ष्य है न उद्देश्य। वह हवा के झोंके के साथ इधर से उधर बहता जाता है।

प्रतीत होता है कि वरिष्ठ पुलिस अधिकारियो का एक सम्मेलन छात्र-अशान्ति पर विचार करने के लिये बुलाया गया था। पुलिस अधिकारी योग्य व सक्षम हैं, पर वे इस समस्या समस्या के समाधान में समर्थ नही हैं। यदि सरकार वास्तव मे इसका हल चाहती है तो वरिष्ठ शिक्षाशास्त्रियों, मनोविज्ञानियों, अर्थशास्त्रियो व समाजविज्ञानियों, सार्वजनिक व्यक्तियों के साथ धर्म मे विश्वास रखने वाले कुछ व्यक्तियो की सस्था बनायी जाये। वह सस्था इस समस्या पर विस्तार से विचार करे, न कि तीन दिन की बैठक के बाद अच्छे-अच्छे प्रस्ताव पास कर समाप्त हो जाये।

बी ६३/११ भासर गज,
वाराणसी–६, (उत्तर प्रदेश)

आदर्शहीन समाज और छात्र-क्षोभ

डॉ० मथुरालाल शर्मा

कुछ अर्से से हमारे देश मे छात्रो मे बडा क्षोभ है। विद्यालयो का वातावरण ज्ञान या विद्या का वातावरण नही है। वहा इसके अतिरिक्त और ही विषयो की चर्चा हुआ करती है। छात्रो और अध्यापको के पारस्परिक सम्वन्ध मे भी अविश्वास, अनादर और कटुता देख पडती है। छात्रो के प्रति जनता मे जो स्नेह और आदर था, उसका स्थान अव दूसरी भावनाओ ने ले लिया है। बुरे-बुरे अपराधो के समाचारो मे भी छात्रो के नामो का उल्लेख आ जाता है। राजनीतिक क्षेत्र तो मानो विद्यार्थियो का विशेष क्षेत्र बन गया है। विद्यार्थी परिश्रम और लगन को विद्या-प्राप्ति के एकमात्र साधन नहीं समझते। वे प्रपच और दुर्व्यवहार का या अनुचित ढग का भी प्रायः आश्रय लेते हैं। इस समय सभाओ के उत्पातो मे भी विद्यार्थी अग्रसर रहते हैं।

इन उत्पात-प्रवृत्तियो के कारण छात्रो का ज्ञानस्तर पूर्वापेक्षा बहुत गिर गया है। पहले के बी० ए० मे और आजकल के बी० ए० मे बड़ा भेद हो गया है। पाठ्य-विषयो की ओर विद्यार्थियो की रुचि नही है। उनकी बात-चीत से ऐसा प्रगट होता है मानो वे विद्यार्थी हैं ही नही। छात्रों मे शिष्टता की दिन प्रति दिन कमी होती जाती है। अशिष्टता और अविनय उनके अलकार बन गए हैं। ऊचे से ऊचे अध्यापक का यथोचित मान नही किया जाता। इसी का परिणाम है कि ज्ञान का भी आदर नहीं है। उसके प्रति लगन नही है। उसकी प्राप्ति के लिए तृष्णा नही है।

छात्रों मे अविनय का आरम्भ वर्तमान शताब्दी के आरम्भ से होने लगा था। स्वराज्य की माग जव उग्र होने लगी, तो छात्रो मे भी उग्रता आने लगी। राजनैतिक आंदोलन के समाचारो को पढने से उनमे स्वाधीनता की भावनायें जगने लगी। पश्चिमीय देशो की क्रातियो के इतिहास के अध्ययन से उनमे क्रातिकारी विचार उमड़ने लगे। वे अग्रेजो को आक्रामक और देश-

शोषक मानने लगे। अंग्रेजो के विरोधियो का वे अभिनन्दन और उनका पक्ष करने वालों का वे विरोध करने लगे। स्कूलो के अध्यापक सरकारी नौकर थे। वे विद्यार्थियो की भावनाओ से महानुभूति रखते हुए भी, उनकी उद्दडताओं का साथ नही दे,सकते थे। प्राईवेट स्कूलो को सरकार से सहायता मिलती थी, उनके अध्यापक भी लगभग उसी स्थिति मे थे, जिसमे सरकारी स्कूलों के अध्यापक थे। जब किसी नगर मे कोई राजनीतिक नेता आता और भाषण देता, तो विद्यार्थी भारी सख्या मे सभा मे उपस्थित होते थे। अध्यापक लोग चाहते तो भी नही जा सकते थे। केवल शका होने पर उनके साथ कडी कार्यवाही की जाती थी। विद्यार्थी ऐसे अध्यापको को देशद्रोही मानते थे। उनको पुलिस के दारोगों के समान समझा जाता था। ज्यों ज्यों राजनैतिक आन्दोलन अधिकाधिक उग्र होने लगा, त्यों त्यो छात्रो का जोश बढने लगा। नेता लोग भी छात्रों का उपयोग करने लगे। छात्रो के कारण सभायें और जुलूस अच्छे बन ही जाते थे। कई बार आवेश मे आकर छात्रगण नेताओ की गाडियो के घोडे खोल देते थे और स्वय गाडिया खींचते थे। असहयोग आन्दोलन मे महात्मा गाधी ने छात्रों को आह्वान किया कि स्कूल और कालेज छोडकर वे आन्दोलन मे सम्मिलित हो। हजारो विद्यार्थियो ने पढाई छोड दी और आन्दोलन मे शामिल होकर वे जेलो मे गये। इनमें ऐसे छात्रों की सख्या अधिक थी जो बार बार फेल हुआ करते थे। जिन अध्यापको और माता-पिताओं ने छात्रों को आन्दोलन मे जाने से रोका और अध्ययन मे निरत रहने की सलाह दी, उनको नेताओ ने देशद्रोहियों की सज्ञा दी। छात्र भी ऐसा ही मानने लगे। तभी से नवयुवक अध्यापकों और माता-पिताओं के उपदेशो की उपेक्षा करने लगे। कुछ उनका अनादर भी करने लगे। छात्रो का नेतृत्व अध्यापको और पिताओं के हाथ से निकल कर ऐसे लोगो के हाथ मे चला गया जो कानून तोडते थे, सरकार को लुटेरा कहते थे, विनय और शिष्टता को भीरुता मानते थे, और परम्पराओ की खिल्ली उडाया करते थे। कुछ वर्ष बाद कुछ ऐसे विद्यार्थी स्वय नेता बन गये, जो स्कूल छोडकर आन्दोलन मे शामिल हुए थे। कुछ ऐसे अध्यापक भी नेता हो गए जिनकी शिक्षा कम थी, जो कम वेतन पाते थे और जिनकी प्रतिष्ठा आन्दोलन मे जाने से और बढ गई थी। इस परिस्थिति मे विद्यार्थीगण और भी उद्दण्ड और अमर्यादित होने लगे। ऐसे लोगों को नेताओं से प्रोत्साहन मिलने लगा। इतना ही नहीं, १९३०-१९३१ के देशव्यापी राजनैतिक आन्दोलन में प्राथमिक शालाओं के बच्चों की वानर सेनायें बनाई गईं, जो बाजारो में सरकार को गालिया देती हुई निकलती

थीं और जुलूसो की लम्बाई बढाती थी। वानर सेना के नेता प्रौढ या नवयुवक होते थे, जो बच्चो से नारे लगवाते थे।

छात्रो की उच्छृ खलता लगभग ५० वर्ष पुरानी है। स्कूलो और कालेजो मे यह परम्परा बन गई है। विद्यार्थी देखते हैं कि अध्ययन छोडने वालो और प्राईमरी स्कूलो के मिडिल पास अध्यापको के हाथ मे जिन्होने नौकरी छोड दी थी, सत्ता आ गई है और उच्च शिक्षित लोग ऐसे लोगो के अधीन काम कर रहे हैं। इसलिये यह समझा जाने लगा है कि शिक्षा उतनी लाभदायक नही है, जितना प्रपच और उत्पात या उच्छृ खलता।

इस समय भी छात्रो को राजनीति मे घसीटा जाता है। प्रत्येक राजनैतिक दल कहता है कि राजनीति मे छात्रो को शामिल नही होना चाहिए, परन्तु कोई दल ऐसा नही है जो छात्रो का अपने यहा स्वागत नही करता हो। सभी लोग जानते हैं कि एक दल मे तो नब्बे प्रतिशत छात्र हैं। विद्यार्थी को शिक्षा भी यही मिलती है कि अपने दल मे विनय रक्खो और अन्यत्र उच्छृ खलता करो।

वर्तमान आर्थिक स्थिति से भी छात्रो मे बडी निराशा है। बी० ए० या एम० ए० परीक्षा पास कर लेने पर भी जीविका के लिए जब नवयुवक को इधर-उधर भटकना पड़ता है, तो उसकी दृष्टि मे शिक्षा का मूल्य नष्ट हो जाता है। यदि उसको ८० या १०० रूपये मासिक की नौकरी मिल भी गयी तो उससे क्या होता है। सोलह वर्ष के परिश्रम के पश्चात् तीन रुपये रोज की प्राप्ति··!! यदि उसके घर मे तीन प्राणी ही हैं, तो तीन रुपये मे क्या हो सकता है? उसको कम से कम डेढ रूपये का गेहूँ, बारह आने की दाल या सब्जी, दो आनेका मसाला, छ आने का तेल और छ· आने का कोयला नित्य चाहिए, अर्थात् तीन रुपये और तीन आने रोज के बिना स्त्री पुरुष और एक बालक का पेट भी भली-भाति नही भर सकता। फिर कपडे, मकान, चिकित्सा, जूते, डाक-खर्च और बच्चा पढने योग्य होने पर पुस्तक आदि के खर्च की तो बात ही क्या कही जाय। जो लोग कहते हैं कि भारत मे अपूर्व उन्नति हुई है, ससार मे उसका मस्तक ऊचा हो गया है, कल कारखाने खुल गये हैं, बाध बध गये हैं, नहरें चल गयी हैं और कर्मचारियो के वेतन या भत्ते बढ गये हैं, उनसे पूछा जावे कि यह सब तो ठीक है परन्तु एक २४ वर्षीय नवयुवक और उसकी २० वर्षीय पत्नी तथा ४ वर्षीय बालक से पूछिए कि उन पर क्या बीत रही है। पढते समय उसको क्या आशाएं और उमगें होगी और अब उनके गृहस्थ जीवन का आरभ किस प्रकार हो रहा है।

छात्रो के सामने आदर्श क्या है ? ऊँचे आसनो पर उन्हे वंचक, लोलुप और प्रपची लोग दिखाई देते हैं। उन्ही का आदर है और उन्ही का वोलवाला है। देश के सुख और दुख का सूत्र उन्ही के हाथ मे हैं। चारित्र्य नही, दुश्चारित्र्य पुज रहा है। अपने स्कूलों मे उन्हे हीन और क्षीण तथा अर्ध-शिक्षित या कुशिक्षित अध्यापक सिसकते हुए दृष्टि आते हैं। समाज उनका आदर नही करता, राज उनकी चिन्ता नही करता। पुलिस का सिपाही या जगल का पहरेदार उनसे अधिक जानदार और शानदार हैं। ऐसी स्थिति मे अपने अध्यापकों के प्रति विद्यार्थियों मे क्या श्रद्धा हो सकती है ?

विद्यार्थी यह भी देखते हैं कि ऊची से ऊची सरकारी और सामाजिक सभाओ मे हुल्लड होते हैं, अपशब्दों का प्रयोग किया जाता है और कभी-कभी तो मारपीट की भी नौबत आ जाती है। तो फिर जैसा वडों को देखते हैं, वैसा ही वे स्वय करते हैं। जो लोग देश की वडी-वडी समस्याओ को हल करते समय परस्पर लडे और गाली-गुप्तार से काम लें, वे ही विद्यार्थियों को विनयशीलता और शिष्टता का उपदेश दें, तो क्या असर हो सकता है। वास्तविकता यह है कि विद्यार्थियों के सामने इस समय विद्यालयों में, समाज में, सरकारी दफ्तरों में, राजनीतिक सभाओं में, बणज व्यापार मे, कहीं भी आदर्श नहीं है। उनका भविष्य नैराश्यपूर्ण और अन्धकारमय है। उनका गृहस्थ जीवन, जिसका आरम्भ विद्यार्थी जीवन के साथ ही हो जाता है, दुखी है। वे यह भी जानते हैं कि ज्ञान और चरित्र का वर्तमान युग या शायद हमारा ही देश, यथोचित आदर नही करता। हमारे छात्र बडी विषम उलझन मे उलझे हुए हैं और उनमे अपूर्व क्षोभ है। स्वय उनको पता नही है कि इस क्षोभ के विभिन्न कारण क्या हैं ? विभिन्न स्थानों पर क्षोभ के विभिन्न कारण भी वतलाए गए हैं, परन्तु कोई व्यापक कारण दिखाई नही देता। वास्तविक कारण न समाज जानता है न स्वय छात्र जानते हैं और न ही सरकार जानती है। यह कहा जा सकता है कि यह क्षोभ महगाई से, वचकता से, दुश्चरित्र से और पूज्य अपूज्य के व्यतिक्रम से उत्पन्न हुआ है। प्रौढ और वृद्ध भी असतुष्ट हैं, परन्तु वे सिसक-सिसक कर निराश और असतुष्ट हो जाते हैं। नवयुवकों के रक्त मे उष्णता है, इसलिए वे चुप नही वैठते। उनके असतोप और नैराश्य का विभिन्न रूपों मे प्रगटीकरण होता है।

'सी' स्कीम, जयपुर,
(राजस्थान)

विद्यार्थी-असन्तोष : अभिज्ञान की समस्या[1]

•

डॉ॰ वाई. बी. दामले

प्रत्येक समाज को अपना पुनर्योजन करना पडता है। एक विकासोन्मुख समाज के लिये केवल पुनर्योजन ही पर्याप्त नही है, अपितु उसमे युवा-पीढियों के कार्य-निष्पादन को सुधारने और श्रेष्ठ बनाने के प्रयास भी होने चाहिये। इस सदर्भ में, किसी एक या अन्य कारणों से, एक ऐसी पीढी जिसे विकास की प्रक्रिया मे सहयोग के लिये प्रशिक्षित करना होता है, वही यदि उद्धत और व्याकुल हो तो विकास के लक्ष्य को प्राप्त नही किया जा सकता। यह ठीक है कि थोडी बहुत अशाति प्रकार्यात्मक (Functional) होती है, पर एक निश्चित विन्दु से परे यह अशाति देश की समृद्धि के लिये घातक सिद्ध हो सकती है।

देश के समाचार-पत्रों की सूक्ष्म परीक्षा से पता लगता है कि भारत में विद्यार्थियों की अशाति को लेकर दिये गये विश्लेषण और सिद्धान्तो का कोई अभाव नही है। इस समस्या की व्याख्या मे या तो सग्राही सिद्धान्त रखे गये हैं, या एक-हेतुक भाष्य प्रस्तुत किये गये हैं। एक ओर यह सुझाव दिया जाता है कि विद्यार्थियों की अशांति की समस्या और कुछ न होकर केवल युवक-पीढी की बगावत की समस्या है। विद्यार्थियों में जो नैराश्य है, वह उनकी इस अशाति का प्रमुख कारण है। इसी तरह अध्यापक और विद्यार्थियों के वदलते हुए सम्वन्ध भी अशाति के महत्वपूर्ण कारण समझे जाते हैं। यह कहने का प्रयत्न भी किया जाता है कि राजनीतिज्ञ और राजनीतिक दल विद्यार्थियों को प्रभावित करते हैं और इसके परिणाम स्वरूप अशाति उत्पन्न होती है। वदलते हुए सामान्य मूल्यों का उत्तरदायित्व भी विद्यार्थियों की अशाति में है। तब फिर यह प्राक्कथन दिया जाता है कि विद्यार्थियों में

---

१. Student unrest : Problem of Identity.

अशाति की जो समस्या है, वह उस सामान्य अशाति का प्रतिविम्व है, जो देश के कर्णधारों द्वारा राष्ट्रीय समस्याओं के अनुपयुक्त और वेमतलब ढग से चलाई जा रही नीति से, उत्पन्न है। विद्यार्थी-अशाति को समझाने के लिये व्याख्या की जो तालिका है, उससे स्पष्ट है कि प्रमुखतया वहिर्जनित कारको पर ही जोर दिया जा रहा है। अन्तर्जनित कारको पर, ऐसा लगता है कि वहुत थोडा ध्यान दिया गया है और विशेष कर उस वात को लेकर कि विद्यार्थी स्वय अपने वारे मे क्या सोचते हैं ?

इस छोटे से निवन्ध मे इस वात को वताने का प्रयास नही किया जायगा कि विद्यार्थियो की अपनी स्वय की क्या भावना है ? लेकिन फिर भी, इस वात का प्रयत्न किया गया है कि विद्यार्थियो की अशाति की समस्या किस भाति उनकी अभिज्ञान-विरचना (Identity Formation) से जुडी हुई है। अनिवार्य रूप से यह निवन्ध यह जाँचने के लिये है कि इस समस्या के विश्लेपण मे कौन से विचल कारण कार्य कर रहे हैं। विद्यार्थियो की अपने स्वय की अनुभूति, अपने स्वय का प्रतिविम्व और उनका समाज के लिये विरोधी-भाव, वह समाज जो उन्हे पर्याप्त रूप मे अभिव्यक्ति का अवसर नही देता या उन्हें उन वस्तुओ को वनाने का मौका नही देता, जो प्रत्यक्ष रूप से उनके मतलव की हैं तथा जिनसे असम्वद्ध रहने से विद्यार्थियो मे अशाति को वढावा मिलता है, ये ही वे मव वातें है, जिन्हे कोई भी व्यक्ति वडी स्पष्टता से देख सकता है। लेकिन फिर भी, जो और लोगों के लिये सुस्पष्ट नही है, वह अभिज्ञान-विरचना की प्रक्रिया ही है, जो इस सम्पूर्ण समस्या की जड है।

अभिज्ञान-विरचना सक्षिप्त सैद्धान्तिक प्रतिपादन

इस निवन्ध मे जो प्रतिपादन प्रस्तुत किया जा रहा है, वह पूर्णरूपेण ईरिक एच० ईरिक्सन[1] द्वारा दिये गये निरूपण पर आधारित है। ईरिक्सन का यह कहना उचित ही है कि मनो-सामाजिक अभिज्ञान एकदम वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ, व्यक्तिगत और सामाजिक है। जव कभी एक व्यक्ति कहता है—"यह यथार्थ मे मै हूँ" तो इसमे अनिवार्यत सघर्प की एक मात्रा निहित रहती है, जिसमे व्यक्ति अपने स्वय को स्थापित करते हुए यह विश्वास रखता है कि वाहर की वस्तुएँ अपना कार्य इस भाति करेंगी कि उनका उसके स्वय

---

१ ईरिक एच० ईरिक्सन, "आईडेन्टीटी, साइकोलोजिकल" प्रकाशनार्थ, इन्टरनेशनल एनसाइक्लोपिडिया आफ द सोशल साईन्सेज।

के साथ पूरी तरह तालमेल बैठ जायेगा, लेकिन अधिकाशतया यह विश्वास पूरा नही होता । व्यक्ति के अपने स्वय के प्रतिविम्ब को समाज प्रोत्साहित करता है और एक प्रथक अभिज्ञान के रूप मे उसका आदर करता है । मनो-सामाजिक अभिज्ञान के विकास की प्रक्रिया मे ऐसे व्यक्तियो का समुदाय होता है, जिनके मूल्य विकसित होने वाले व्यक्ति और उसकी वृद्धि मे अर्थपूर्ण हो सकते हैं । ईरिक्सन इस बात पर जोर देते है कि अभिज्ञान का मतलब केवल कार्य करने से ही नही है, लेकिन इसमे व्यक्ति अपने कार्यों का सोपानिक एकीकरण भी करता है । "मनो–सामाजिक अभिज्ञान इस भाति व्यक्ति के आन्तरिक स्व और उसके समूह के कार्यों के एकीकरण के सश्लेषण पर निर्भर है ।" जहाँ तक इन दोनो मे दूरी रहती है, अभिज्ञान की विरचना का किशोरावस्था से पहले होना सम्भव नही है । जब शरीर बढ़ता है, शारीरिक और बौद्धिक शक्तियाँ परिपक्व होती हैं तथा मस्तिष्क का पूरा विकास हो जाता है, जब वह "एक ऐतिहासिक सदर्भ" मे सोचता है, नई आस्थाओ की खोज करता है, तब समानता और सजगता की भावनाओ को विकसित किया जा सकता है। अभिज्ञान–विरचना का मतलब होता है—स्व की नई परिभाषा देना और अपरिर्वतनीय कार्यों का वरण किया जाना । व्यक्ति की अभिज्ञान-विरचना बारीकी के साथ ऐतिहासिक प्रक्रियाओ से जुडी हुई होती है । यह जोड सैद्धान्तिक और प्रावैधिक सदर्भ मे होता है । जब विध्यात्मक अभिज्ञान (Positive Identity) को स्वीकार कर लिया जाता है, तो समाज का पुनर्योजन होता है । यदि यह स्वीकारोक्ति बहुसख्यक व्यक्तियो को नही मिल पाती, तो इससे एक ऐतिहासिक–सकट उत्पन्न हो जाता है । उदाहरण के लिये, सभी ओर पाई जाने वाली विद्यार्थी–अशाति को लीजिये, जो विध्यात्मक अभिज्ञान की स्वीकारोक्ति के अभाव स्वरूप है और जो विशाल समाज के लिये एक गभीर समस्या उत्पन्न कर रही है । "मनोवैज्ञानिक अभिज्ञान एक सैद्धान्तिक एकता को प्राप्त करने का प्रयास करता है ।" व्यक्ति मे शक्तिशाली अभावात्मक अभिज्ञान तत्त्वो के साथ भी बराबर संघर्ष चलता रहता है । यह सघर्ष इस सीमा तक बढ जाता है कि इसके परिणाम स्वरूप अभिज्ञान-विरचना की प्रक्रिया भी परास्त हो जाती है । एक ऐसी स्थिति मे जहाँ पुराने मानक और मूल्यों को तिरस्कृत किया गया है और नये मूल्य अभी स्थापित नही हुए हैं, यह होना स्वाभाविक है कि विध्यात्मक अभिज्ञान विरोधात्मक अभिज्ञान के दलदल से फँस जाय और जिसका परिणाम विध्वन्सात्मक व्यवहार हो । ऐसी स्थिति मे ईरिक्सन परायेपन की एक घातक

घृणा के उत्पन्न होने की सम्भावना की ओर सकेत करते हैं। इस प्रकार की घृणा विध्यात्मक अभिज्ञान को पूर्णरूपेण ढक भी सकती है। इससे और आगे, अभिघातक घटनाओं —जैसे युद्ध, अशांति आदि के परिणाम स्वरूप अभिज्ञान को लेकर भ्रान्ति हो सकती है और इसका परिणाम उन्माद जैसी व्याकुलता मे देखा जा सकता है। प्रत्येक विकासमान व्यक्ति अपने "आदर्श आदि–रूप के साथ अभिज्ञान करना सीखता है और बुरे आदि–रूप दूर से रहने की आदत विकसित करता है।" फिर ऐसी स्थिति मे, जबकि आदर्श और आदि-रूप को लेकर कोई स्पष्ट परिभाषाएँ न हों, तो बढते हुए सदस्यों के लिये अपने अभिज्ञान को विकसित करना बडा कठिन हो जाता है। अभिज्ञान विकास की प्रक्रिया मे अस्पष्ट रूप से यह पाया जाता है कि व्यक्ति अपने स्वय के समूह के साथ अत्यधिक रूप से अभिज्ञान कर लेता है, जो कि "विश्व के अन्य समान आभासित होने वाले वर्गों से प्राप्त मानस–छाया–चित्रों के घातक पूर्वाग्रहो" के प्रभाव से और भी अधिक बढ जाता है। यह सब कुछ एक व्यक्ति द्वारा अपने समूह के साथ अत्यधिक अभिज्ञान कर लेने और किन्ही के प्रति एक प्रकार की विशिष्ट आस्था तथा दूसरों के साथ एक उन्माद भरा घृणित भाव उत्पन्न कर लेने के कारण होता है। एक ऐसी स्थिति, जिसमे औद्योगिकी-विकास से परिवर्तन आ रहे हों, राजनीतिक धरातल परिवर्तनशील हो, अभिज्ञान-विरचना की समस्या के और भी अधिक जटिल होने की सम्भावना है। ईरिक्सन का कहना है कि इस स्थिति के परिणाम स्वरूप अविवेकपूर्ण घृणा और भ्राति परिकल्पनायें एक विशाल हिंसा मे परिवर्तित हो सकती हैं।

अभिज्ञान–विरचना का निश्चित तात्पर्य होता है—अभिज्ञान सकट। यद्यपि ईरिक्सन का कहना है कि यहा 'सकट' से तात्पर्य "किसी घातक दौर से न होकर एक अनिवार्य कठिन क्षण के ऐसे मोड़-विन्दु से है, जो भले या बुरे दोनो के हेतु हो सकता है (जैसा कि नाट्य या चिकित्सा मे होता है)। यहाँ भले से तात्पर्य व्यक्ति की निर्माणात्मक शक्तियों और समाज की शक्तियो के सगम से है, जिसे शारीरिक आकर्षण, मानसिक जागरूकता और सवेगात्मक तत्परता तथा सामाजिक वास्तविकता मे देखा जा सकता हैं। बुरे का तात्पर्य है—व्यक्ति और समाज में एक लम्बी अवधि तक अभिज्ञान भ्रांति बनी रहे और जिसमें व्यक्ति की समर्पित शक्तियाँ वरबाद हो जायें।

अभिज्ञान-विरचना मे सैद्धान्तिक एकता और परिवर्तन निहित है। जिस सीमा तक इस समरूपता का अभाव होता है, अभिज्ञान–विरचना अधूरी

रहती है। प्रत्येक समाज-सरचना का वह काल, जिसे ईरिक्सन ने "मनो-सामाजिक अधिस्थगन काल" कहा है, मे युवको को एक निश्चित अवधि के लिये विभिन्न प्रकार के सिद्धान्तो से सम्बद्ध प्रयोग करने का अवसर दिया जाता है। फिर भी जिसे ईरिक्सन "निष्ठा" के रूप परिभाषित करता है, मे आस्था और क्षमता का जोड होना अनिवार्य है। कोई भी स्थिति जिसमे आस्था और क्षमता की सधि का अभाव है, अभिज्ञान-विरचना के लिये गभीर चुनौती है। ईरिक्सन आगे कहते हैं कि इस अवस्था मे समाज "नये और अधिक समाविष्ट किये हुए अभिज्ञान या एक ऐतिहासिक युग मे निहित प्रथकता" को समझने मे असफल होगा। इसके अतिरिक्त एक बढती हुई प्राद्यौगिकी मे नये और निपुण रूप-प्रकारों और कार्य-भूमिकाओ का विकसित होना अनिवार्य है। "युवक जो इस प्रकार के प्रयोग को करने के लिये आता है, पर जब इसकी पकड नही कर पाता तो वह समाज से प्रथक हो जाता है और यह तब तक होता रहता है, जब तक कि एक सीमा तक प्राद्यौगिक और अ-प्राद्यौगिक बुद्धि मे तालमेल नही बैठ जाता।"

इसका हमने पहले उल्लेख किया है कि अभिज्ञान–विरचना मे विध्यात्मक और अभावात्मक दोनों तत्त्वों का पारस्परिक मिलन आवश्यक है। इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि "एक अभावात्मक अभिज्ञान विध्यात्मक अभिज्ञान का अशासित पहलू है।" इसके अतिरिक्त, अभावात्मक प्रतिमा को एक व्यक्ति पर उन लोगो द्वारा थोपा जाता है, जो कि वरिष्ठ और शोषक हैं और इसका परिणाम होता है—अभावात्मक अभिज्ञान की स्वीकारोक्ति। स्पष्ट रूप से, इसका सम्बन्ध विद्यार्थी–अशाति से है। विद्यार्थियों को पुरानी पीढी यह कहकर दाग लगाती है कि ये लोग बेमतलब के हैं, किसी काम के नही, अनुशासनहीन और अशासित हैं। और इस प्रकार इस प्रक्रिया का अगला चरण होता है समस्ततावादी (Totalistic) भावनाओ का जन्म तथा अ–वैयक्तिता का विकास। अभावात्मक अभिज्ञान का विकास समस्ततावादी सिद्धान्तों (Totalist Ideologies) और जीवन–प्रणाली को स्वीकारने का अनुकूल वातावरण तैयार करता है। इरिक्सन लिखते हैं—"इस बुद्धि वैमनस्यपूर्ण आवेग का शोषण कुछ दुराग्रही और स्वच्छन्द के [illegible] लोग सरलता से कर लेते हैं। इसने भीड के समुदाय में [illegible] शिकार को विस्फोटित किया जा सकता है और इसके माध्यम से एक संगठित हिंसा द्वारा संचालित [illegible] को भी कुशलता से [illegible] जा सकता है।"

अभिज्ञान-विरचना की प्रक्रिया इन क्षणों में और अधिक जटिल हो जाती है, जबकि सापेक्षिक रूप से अभिज्ञान की प्रक्रिया में भिन्नता उत्पन्न हो जाती है और जिससे भय और चिन्ता को बढ़ावा मिलता है। उदाहरण के लिये, यदि विद्यार्थी किसी एक या दूसरे कारण से अपने भविष्य को लेकर भय और चिन्ता से ग्रस्त है और दूसरा कारण उनकी जाति या धर्म आदि हैं, तो इसमें अभिज्ञान का विकास होना एकदम असम्भव हो जायेगा। ईरिक्सन ने इस बात का संकेत दिया है कि अभिज्ञान-विरचना की प्रक्रिया तब तक पूर्ण नहीं कही जा सकती, जब तक कि एक व्यक्ति अपने व्यवसायिक जीवन और जीवन-साथी का चुनाव नहीं कर लेता। जिस सीमा तक विद्यार्थी इन दोनों चुनावों को कतिपय कारणों से पूरा नहीं कर लेता, उसका अभिज्ञान विकास अवरुद्ध हो जायेगा और वह अभिज्ञान की अनिश्चित और संकटपूर्ण अवस्था में चलता रहेगा।

ऊपर हमने जिसे सैद्धान्तिक पक्ष का प्रतिपादन किया है, उसका भारत में विद्यार्थियों की अशांति की समस्या के साथ महत्वपूर्ण सम्बन्ध है। यदि हम अन्तिम मान्यता से अपनी बात प्रारम्भ करें, तो यह कहना पर्याप्त होगा कि व्यवसायिक जीवन के चुनाव में, जो सभी विद्यार्थियों के लिये अर्थपूर्ण और संतोषजनक हो, कई गम्भीर बाधाएं और कठिनाइयां हैं। जहाँ तक जीवन-साथी के चुनाव का प्रश्न है, एक ऐसी सामाजिक संरचना, जिसमें जाति और भाषा-सम्बन्धी समूह इत्यादि हो, यह बताने में लिये अधिक प्रयास नहीं करना पड़ेगा कि जीवन-साथी के चुनाव में एक व्यक्ति के स्वयं के निर्णय के लिये कुछ अधिक नहीं छोड़ा गया है। यद्यपि यहाँ पर यह कहना आवश्यक होगा कि अभिज्ञान-विरचना की पूर्वावश्यकता के रूप में पहिले तत्त्व की अपेक्षा जीवन-साथी का चुनाव इतना महत्वपूर्ण नहीं है[1]। प्रस्तुत लेखक ने अपने द्वारा किये गये एक अध्ययन में पाया कि व्यवसायिक जीवन और प्रशिक्षण-क्षेत्र के चुनाव में ऐच्छिकता का अभाव अभिज्ञान-विरचना की प्रक्रिया के सामने गम्भीर खतरा उत्पन्न करता है। यदि विशिष्ट रूप से मेधावी छात्रों के सम्बन्ध में हमारे ये निष्कर्ष हैं, तो सामान्य विद्यार्थियों पर जो अपनी पसन्द का व्यवसाय नहीं ले सकते, ये और भी अधिक लागू होते हैं। विद्यार्थियों में ऐसा होने के कारण हो सकते हैं—(क) क्षमता

१ देखिये—वाई०बी०दामले, कॉलेज यूथ इन पूना. ए स्टडी ऑफ इलिट इन द मेकिंग, पूना डेकन कॉलेज, १९६६.

का अभाव, (ख) सुविधाओं का अभाव और (ग) सस्थागत रूढिवादिता, इत्यादि ।

व्यक्ति मे "वास्तविक मैं" की जो भावना है, उसे भी एक मात्रा मे वाहरी वातावरण से विश्वास की आवश्यकता होती है । यदि किसी कारण से इस विश्वास का अभाव हो जाता है, तो विद्यार्थी "यह यथार्थ मे मैं हूँ" की भावना को विकसित नही कर पाते । यह स्थिति तब और अधिक खराब हो जाती है, जब परम्परागत मूल्यों और बढते हुए व्यक्ति मे आदान-प्रदान की कमी होती है। यह इस बात पर भी निर्भर है कि युवा व्यक्तियो के विकास मे समाज कितनी दिलचस्पी लेता है, यहाँ युवा व्यक्तियो से तात्पर्य युवक विद्यार्थियो से है । यदि समाज की भी विद्यार्थियो के प्रति तिरस्कार की अभिवृत्ति होती है, तो इससे उनके मनोवैज्ञानिक अभिज्ञान का विकास खतरे मे पड जाता है । विद्यार्थी के जीवन मे अनेक बहूद्देशीय कार्यों के होने तथा उनमे सामन्जस्य स्थापित न हो सकने के कारण से भी अभिज्ञान-विरचना की प्रक्रिया स्थगित हो सकती है । इसी तरह हमारे विद्यार्थियो मे किसी न किसी ऐतिहासिक और सस्थागत कारणों से जो परनिर्भरता का प्रतिमान निर्मित हो गया है, वह भी अभिज्ञान के विकास को अवरुद्ध करता है । पर्याप्त मात्रा मे स्व की परिभाषा और कार्यों के करने की अपरिवर्तननीय स्वतन्त्रता (ये बातें आज के अधिकाश विद्यार्थियों के सन्दर्भ मे सटीक भी हैं), के अभाव मे अभिज्ञान-विरचना पूर्ण नही हो सकती ।

सापेक्षित रूप से अभावात्मक अभिज्ञान तत्त्व भी इस प्रक्रिया को पीछे ढकेलते हैं । यह एक तथ्य की बात है कि जब विद्यार्थियो को उनके कार्यों के मॉडेल का उल्लेख करने को कहा जाता है, तब वे अधिकतर इस बात के साथ अपने कथन को समाप्त करते हैं कि वे परम्परागत मॉडल को निरर्थक समझते हैं और विद्यमान कार्य के मॉडल विभिन्न कारणों से उनके लिये अनुकरण करने योग्य नही हैं । इसके अतिरिक्त, जो सस्थागत व्यवस्थाएँ और सैद्धान्तिक तत्त्व आज पाये जाते हैं, वे उनकी आलोचना भी करते हैं । वर्तमान मे जो प्रतिमान और व्यवस्थाएँ पाई जाती हैं, विद्यार्थियो मे उनके बहिष्कार को लेकर विध्वन्सात्मक व्यवहार उत्पन्न होता है; उदाहरण स्वरूप इसे परीक्षा-व्यवस्था के बहिष्कार मे देखा जा सकता है । विभिन्न प्रकार की पीडाजनक घटनाओं—जैसे कि देश का विभाजन, भाषा–राज्यो का निर्माण और उससे उत्पन्न उपद्रव, राज्य और राज्य मे प्रतिद्वन्द्वता, पचवर्षीय योजनाओं

की असफलता और शिक्षा तथा नियोजन की नीति मे सामञ्जस्य के अभाव ने, जैसा कि ईरिक्सन का कहना है "अभिज्ञान भ्राति" को बराबर बनाये रखा है। सस्थागत भेद–भाव, भाषाई और क्षेत्रीय समूहक, जाति और समुदाय तथा धर्म आदि ने विशिष्ट हितों को प्राथमिकता की स्थिति मे रखा है। इसे ईरिक्सन "अतिपरिभाषित अभिज्ञान" के परिणाम स्वरूप मानते हैं। इस सदर्भ मे, विद्यार्थियो द्वारा इस्पात के कारखाने को लेकर आध्र प्रदेश मे किये गये दगे उल्लेखनीय हैं। हिन्दी-विरोधी दगे भी इसी सन्दर्भ मे समझाये जा सकते हैं। प्राद्योगिक और आर्थिक विकास के कारण, जो भेद देश के विभिन्न क्षेत्रों और ग्रामीण तथा शहरी पर्यावरण मे देखने को मिलते हैं, वे भी समस्या को गम्भीर बनाने मे बढावा देते हैं। इसके साथ ही उच्च शिक्षा को लेकर जो आज दवाव है, वह भी इस समस्या का एक कारण है।

ईरिक्सन ने यह कहा है कि युवा-जीवन के मोड-बिन्दु पर, भले अथवा बुरे के लिये, अभिज्ञान का सकट प्रस्तुत होता है और इससे कोई छुटकारा भी नही है। वे कहते हैं, "यहा भले से मतलब व्यक्ति और समाज की रचनात्मक शक्तियो के सगम से है, जिसे शारीरिक आकर्षण, मानसिक जागरूकता, सवेगात्मक प्रत्यक्षता और सामाजिक यथार्थता मे देखा जा सकता है। बुरे से तात्पर्य उस स्थिति से है, जिसमें युवा व्यक्ति और समाज दोनो मे लम्बी अवधि तक अभिज्ञान की भ्राति चलती रहती है और जिसमे युवक की समर्पित शक्तियाँ व्यर्थ हो जाती हैं।" यह सुस्पष्ट है कि अभी तक विद्यार्थी और समाज की रचनात्मक शक्तियों मे सगम नही हुआ है। शारीरिक विकास, मानसिक जागरूकता, सवेगात्मक प्रत्यक्षता और सामाजिक यथार्थता की दृष्टि से ही देखें, तो लगेगा कि अभी विद्यार्थी की वृद्धि और विकास मे बहुत कुछ होना शेष है। बहुत साफ है कि विद्यार्थियों की बडी सख्या मे अभिज्ञान के सकट को टालने के अवसर बहुत थोडे होते हैं। इससे 'भले' के अवसर कम हो जाते हैं। 'बुरा' इसीसे स्पष्ट है कि अभिज्ञान का सकट विद्यार्थियो मे लम्बी अवधि से चल रहा है और इससे समाज और विद्यार्थी स्वयं को हानि है।

ईरिक्सन कहते है "देर-सवेर, युवा व्यक्ति और कार्यरत समाज को आस्था और क्षमता के मिश्रण के लिये अपनी शक्तियों को मिलाना चाहिये, जिसे हम श्रेष्ठ उक्ति मे "निष्ठा" कह सकते हैं।" आज एक ओर तो यह स्पष्ट दृष्टिगोचर है कि व्यक्ति की आस्थायें स्वय के अस्तित्व की समाप्ति की सीमा तक सकुचित होती जा रही हैं, तथा दूसरी ओर क्षमता-सवर्धन के लक्षण भी

शायद ही कहीं दिखाई देते हो। यहा यह कहते की आवश्यकता नही है कि आस्था और क्षमता का एक दूसरे से मिलन नही हो सका है। विद्यार्थियो को लेकर यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है। इसके अतिरिक्त, जहाँ कुछ विद्यार्थियो मे नये अभिज्ञान होते भी है, तो उनकी प्रशसा करने की आवश्यकता समाज नहीं समझता। समाज विद्यार्थियो मे जो निश्चित प्रथकता पाई जाती है, उसकी जानकारी रखने मे असमर्थ रहता है। इसलिये आस्था का विकसित होना अत्यन्त कठिन हो जाता है। क्षमता के सम्बन्ध मे यह कहना होगा कि विद्यार्थियो को जो प्रशिक्षण और व्यवसायिक अवसर प्रदान किये जाते हैं, उनमे अभी वहुत कुछ अभाव हैं। इस स्थिति को, सस्थाओं की रूढिवादिता तथा नीति-निर्माताओं का यथार्थता को स्वीकार नही करना और अविवेक तथा अनुपयुक्त ढग से समस्याओ को हल करना, और अधिक सकटमय बना देते हैं। विद्यार्थियों पर यह आरोप लगाना असगत है कि उनमे राष्ट्रीय विकास की प्रक्रिया मे सहभागी होने की जिज्ञासा नही हैं। इसके साथ ही यह भी सही है कि सामान्यतया विद्यार्थी ऐमे कार्यक्रमो मे भाग भी नही ले सके हैं और इसका परिणाम यह हुआ है कि वे समाज से प्रथक हो गये हैं। हमारे शिक्षा सम्वन्धी कार्यक्रमों तथा शिक्षा और समाज के सम्वन्धों मे यथार्थता का जो अभाव है, वह भी ऐसी स्थिनि के लिये मुख्यतया उत्तरदायी है।

अभावात्मक अभिज्ञान और समस्तता

अभावात्मक अभिज्ञान विध्यात्मक अभिज्ञान का एक अशासित हिस्सा है, जो किसी भी समय प्रत्यक्ष रूप मे दिखाई दे सकता है। इसके अतिरिक्त, जैसा कि ईरिक्सन कहते हैं "व्यक्ति पर उसके वरिष्ठ व्यक्तियों और शोपण-कर्ताओ द्वारा थोपे गये प्रतिविम्व होते है, उन्हे वह अपने स्वय का वना लेता है। इस सदर्भ मे अध्यापको और शैक्षणिक प्रशासको तथा इसी तरह राजनीतिज्ञो द्वारा किये गये कार्यों को याद किया जाना चाहिये। विद्यार्थी-अशांति को लेकर राजनीतिज्ञो और विद्यार्थी—राजनीतिज्ञों के विपय मे वहुत कुछ कहा जा चुका है। सहज रूप मे हम इस यात को भूल जाते हैं कि विद्यार्थियों की प्रतिमा, अध्यापकों और पुरानी पीढी तथा वे लोग जो नियोजन की देखरेख रखते हैं, के मस्तिष्क मे कैसी है। इसलिये विद्यार्थी जव एक-दम सम्पूर्ण सिद्धान्तों और नियम उपनियमों को तिलाजलि दे देते हैं, तो इनके सारे कारण सरलता से हमारी समझ मे आ जाते है। सभी प्रकार की असामाजिक गतिविधियाँ एव उत्पात, जिनका प्रकाशन देश के विभिन्न समाचार-

पत्रो मे होता है, विद्यार्थियो के शामिल होने पर निर्भर हैं। चाहे यह उत्पात क्रिकेट के मैच को लेकर हो या क्षेत्रीय सीमा को लेकर, विद्यार्थियो से सहयोग की अपेक्षा सरलता से की जाती है। विद्यार्थी जब अपने भविष्य के जीवन और आशाओ को देखते है तो स्थिति अनुभवित भय और चिन्ता से अधिक भडक उठती है। भारतीय सदर्भ मे, जाति और वर्ग बहुत महत्वपूर्ण भाग अदा करते हैं। सम्पूर्ण कट्टर मतों और सिद्धान्तो को स्वीकारने के परिणाम स्वरूप अवैयक्तिकता की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है और इससे विद्यार्थियों मे अभिज्ञान का सकट और भी बढ जाता है।

परिस्थितियो के उस सयोजन को जो अभिज्ञान के विकास को रोकता है तथा अभावात्मक अभिज्ञान को बढावा देता है, भारत मे विद्यार्थियों की अशाति का मुख्य कारण समझा जाना चाहिये।

●

समाज शास्त्र विभाग,
पूना विश्वविद्यालय, पूना,
(महाराष्ट्र)

भारत में विद्यार्थी अशांति : एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

डॉ० एस. पी. रुहेला

इन दिनो देश मे विद्यार्थी-आन्दोलन सबसे अधिक ज्वलत विषय बना हुआ है। हाल ही मे देश के विभिन्न भागों के कालेजो एव विश्वविद्यालयो के छात्रों द्वारा दुर्व्यवहार एव हिंसा की घटनाओ ने समस्त नागरिको के मन को झकझोर दिया है। भारत सरकार एव विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इस समस्या पर गंभीरता से विचार कर रहे हैं। इस विषय पर विभिन्न वाक्पीठों एव बैठकों, उपकुलपतियो, मुख्यमन्त्रियो, पुलिस अधिकारियों, राजनीतिज्ञो, विद्यार्थियों इत्यादि के अधिवेशनों मे विचार-विमर्श जारी है। इस समस्या के कई कारण प्रस्तुत किये गये हैं। इनमे से कुछ बहुत ही सामान्य एव दूरस्थ हैं, कुछ काल्पनिक एव भ्रमात्मक है तथा कुछ बहुत ही व्यक्तिनिष्ठ है। केवल कुछ कारण ही यथार्थ हैं। कोई भी व्यक्ति यह जानकर उलझन में पड सकता है, कि कुछ उपकुलपतियों एव राजनीतिज्ञों तक ने किस प्रकार एकांगी, छटे हुये, खडित, असगत एव पूर्वाग्रहपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं, और इस प्रकार वे समस्या के मर्म को समझने मे असमर्थ रहे हैं। वस्तुतः इसके परिणामस्वरूप हमारी सभ्रान्ति मे वृद्धि ही हुई है।

सभवत: इसी प्रसग मे कुछ समय पूर्व हमारे शिक्षाशास्त्री प्रोफेसर वी.के.आर.वी राव ने समस्या के समाज-शास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन करने की आवश्यकता पर भरपूर बल दिया था। यही नही, उन्होंने इससे भी एक कदम और आगे आकर यह सुझाव दिया कि भारत सरकार को इस समस्या के अध्ययन के लिये बनायी गई समिति का अध्यक्ष किसी सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री को नियुक्त करना चाहिये। केन्द्रीय सरकार ने विद्यार्थी-आदोलन के अध्ययन के लिये हाल ही मे गठित समिति मे दिल्ली विश्वविद्यालय मे समाजशास्त्र विभाग के प्रोफेसर एम०एन० श्रीनिवास को सम्मिलित किया है। देश में इस समस्या के उचित अध्ययन की दिशा मे यह बहुत ही महत्व-

पूर्ण एव स्वागत योग्य कदम है, क्योकि यह सामाजिक समस्याओ को समाजशास्त्रीय आधार पर सुलझाने के प्रति हमारी बढती हुई अनुभूति का प्रतीक है।

तब समाजशास्त्रीय उपागम क्या है ? समाजशास्त्र परमाणुवादी नही है, यह मानवीय समस्याओ का अध्ययन विशिष्टवादी ढग से नही करता है। समाजशास्त्रीय उपागम का अर्थ यह है, कि किसी भी सामाजिक समस्या का उद्गमन विविध कारणात्मक कारको से होता है, अत हमे एक कारक वाले उपागम को अस्वीकार कर देना चाहिये, क्योकि यह समस्या के अध्ययन के लिये अपर्याप्त है। अत यह एक पूर्णवादी उपागम ही हो सकता है, जो निष्पक्ष, स्वतन्त्र एव वास्तविक अध्ययन अथवा पर्यवेक्षण द्वारा एकत्रित किये गये विश्वसनीय आकडो पर आधारित हो।

भारत मे विद्यार्थी-आन्दोलन ने प्रो० हुमायू कबिर, चचल सरकार, चन्द्रशेखर, ललिता वैंकटरमन, ऊषा विस्वास, एस० मुखर्जी, पुण्य श्लोका राय, विश्वनाथ बनर्जी, उमा साहनी, राहुलसिह, पी० एस० सुन्दरम, वी० वी० जॉन, आर०आर० सक्सेना, ए०डी० मोगले जैसे विद्वानो एव बडौदा के श्री ए०पी० देसाई, भारत मे फुल ब्राइट छात्रवृत्ति प्राप्तकर्ता एव ब्रूकलिन कॉलेज के प्रोफेसर मार्गरेट कारमेक, टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ शोसल साइन्सेज बम्बई के प्रोफेसर एम० एस० गोरे, एच० एम० अष्थाना एव सुमा चिटनिस, देहली विश्वविद्यालय मे समाजशास्त्र मे रिसर्च-फैलो कुमारी चित्रा नायक, राजस्थान विश्वविद्यालय मे समाजशास्त्र मे रीडर डॉ० योगेन्द्र सिंह जैसे समाजशास्त्रियो का ध्यान आकर्पित किया है।

इनमे से प्रोफेसर मार्गरेट कारमेक एव कुमारी चित्रा नायक ने समस्या से सबधित कुछ आनुभविक अध्ययन किये हैं। प्रोफेसर कारमेक ने १९५९-६१ के दौरान भारत के १२ विश्वविद्यालयो के विद्यार्थियो के विचारो एव अभिवृत्तियो के बारे में आकडे एकत्रित किये एव अपनी पुस्तक 'शी हू राइड्स ए पीकॉक' मे इस समस्या के विभिन्न पहलुओ पर अपने आकडे प्रस्तुत किये। कुमारी चित्रा नायक ने १९६५ के दौरान मैसूर विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो की हडताल का 'जर्नल ऑफ यूनीवर्सिटी एजूकेशन (मार्च-१९६६) मे प्रकाशित अपने लेख मे समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण किया है। उस्मानिया विश्वविद्यालय के गैर समाजशास्त्र अध्यापक ए० डी० मोगले द्वारा १९६५ मे उस्मानिया विश्वविद्यालय में हुई विद्यार्थी हडताल

का अध्ययन समाजशास्त्रीय रूप से महत्वपूर्ण है । गहन विश्लेषण वाले इन दोनो अध्ययनो के निष्कर्ष काफी महत्वपूर्ण हैं । कुमारी नायक के मतानुसार विद्यार्थियो मे हडताल अधिकाशत गैर शैक्षणिक मामलो को लेकर होती है । श्री ए०डी० भोगले की मान्यता है कि विद्यार्थी-हडतालो का उद्‌गमन, समर्थन, एव निर्वाह अर्ध-राजनीतिक स्रोतो से होता है और ये समाप्त भी तभी होती हैं, जब कि उनकी प्रेरणा–स्रोत की शक्ति समाप्त हो जाती है ।

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय एव विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इनसे पूर्व विभिन्न समितियो द्वारा विद्यार्थी-आन्दोलन की ,समस्या का अध्ययन कराया है । १९५८-६४ के दौरान हुई १२३९ विद्यार्थी-हडतालो के केन्द्रीय गृह-मत्रालय द्वारा एकत्रित किये गये आँकडो का गहन अध्ययन समाजशास्त्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण है । इन पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता हं कि आधी से अधिक (१२३७ हडतालो मे से ७४६ हडतालें विश्वविद्यालय अधिकारियों एव अध्यापकों के विरुद्ध हुई, जब कि शेष विभिन्न कारणो से हुई, जिनमे प्रमुख राजनीतिक दलो का हस्तक्षेप (२१२), पुलिस कार्यवाही (५२), सहानुभूति मे हड़ताल (९५), फीस मे कमी की माँग के कारण (८३), अनुशासन सबधी कार्यवाही रद्द करने से सबधित माँग (८०), अध्यापकों के स्थानातरण एव पदच्युत किये जाने के विरुद्ध (६१), कडे स्तर के विरोध मे (४४), प्रबध-समितियों के विरुद्ध आन्दोलन (२८), विद्यार्थी–सघ से सबधित मामले (२४), परीक्षा स्थगन की माग को लेकर इत्यादि (१५) हैं ।

इन प्रतिवेदनो के अतिरिक्त कुछ सस्थाओ एव व्यक्तियो ने भी विद्यार्थी-जगत के कुछ पक्षों का अध्ययन किया है, लेकिन उन्होंने विद्यार्थी-आन्दोलन की समस्या पर प्रत्यक्ष अथवा आशिक रूप से ही ध्यान दिया है । अत स्पष्ट है, कि जिस समस्या ने हमे काफी लम्बी अवधि से उद्विग्न कर रखा है, उस पर बहुत कम शोध-कार्य हुआ है ।

विद्यार्थी-आन्दोलन की समस्या को सही रूप मे समझने के लिये यह आवश्यक है कि भारत मे इसके इतिहास का सक्षिप्त अध्ययन किया जाय । १९०५ मे बगाल के विभाजन के विरोध मे ढाका व कलकत्ता के विद्यार्थियों द्वारा किया गया आन्दोलन वास्तव मे भारत में विद्यार्थियो के राजनीति मे प्रवेश एव विद्यार्थी-आन्दोलन का प्रारम्भ था । तब से निरतर १९१९ मे आगे १९४२ और स्वतन्त्रता-प्राप्ति तक विद्यार्थियो ने राजनीतिक आन्दोलन

मे भाग लिया। १९४७ के उपरान्त विद्यार्थी बहुत हठी हो गये और उन्होंने बहुत से उचित और साथ ही साथ बहुत से संकीर्ण स्थानीय एव छोटे-छोटे मामलो को लेकर आन्दोलन किये हैं। यह बतलाया गया है कि १९५९-६५ के दौरान हुई १२३७ हडतालो में से १९६३ एव १९६४ में क्रमश: ११९ एव २६१ हडतालें हुई। १९६६ एव ६७ मे भी हड़तालों की सख्या काफी बढी है।

देश में विद्यार्थी-आन्दोलनों के साठ वर्ष के इतिहास में तीन प्रवृत्तियाँ स्पष्टत. दृष्टिगोचर होती हैं। प्रथम ४२ वर्षों मे अर्थात् १९४७ तक उनके आन्दोलन राष्ट्रवादियों के दिलों मे देश को राजनीतिक स्वतन्त्रता दिलाने के लिये व्याप्त अशाति एव आन्दोलनों के एक भाग थे। आगामी दस अथवा बारह वर्षों में विद्यार्थी-आन्दोलन प्रमुखत राजनीतिक कारणों से नहीं, वरन् शिक्षण-सस्थाओं मे सामान्यत. व्याप्त अस्त—व्यस्त दशाओं के कारण हुये। इस दौरान यद्यपि वे कई अशोभनीय कार्य करते रहे, परन्तु हिंसा का सहारा बहुत कम लिया। तृतीय प्रवृत्ति, जिसका प्रारम्भ सम्भवत जबलपुर में १९५९-६१ के दौरान एव अन्य स्थानों पर अशोभनीय घटनाओं से होता है। ऐसे मामलों को लेकर, जिनके कारण शैक्षणिक एव गैर-शैक्षणिक हैं, हिंसक व गुण्डागर्दी की घटनाओ में वृद्धि हुई है।

देश मे विद्यार्थी-आन्दोलनों के लिये उत्तरदायी कारण बहुत ही जटिल रूप मे परस्पर ग्रथित हैं, एव उनका सास्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षणिक वर्गों मे स्पष्ट वर्गीकरण करना सभव नहीं है। श्री वैंकटेश्वर विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० वी सी. वामन राव ने ठीक ही कहा है कि विद्यार्थी उपद्रवों का अध्ययन देश के अन्दर होने वाली घटनाओं एव सामाजिक और आर्थिक दशाओं की वृहत् पृष्ठभूमि मे करना चाहिये।

भारतीय समाज मे बहुत से महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये हैं और हो रहे हैं। हमारे समाज पर पश्चिमीकरण एव औद्योगीकरण का गहरा प्रभाव पडा है। देश में एक ऐसे मध्यम-वर्ग का असाधारण विकास हुआ है, जिसमे सीमित साधनों के कारण सभी वस्तुओं की सतुष्ट न होने वाली आवश्यकताएं एव तनाव विद्यमान है। समाज की बहुत सी पुरानी सस्थायें प्रभावहीन हो रही हैं। संयुक्त-परिवार का परम्परागत नियन्त्रण समाप्त हो रहा है। प्राथमिक समूहो के सम्बन्धों की अवनति से समस्याओं का उदय हो रहा है। द्वैतीयक

समूहो के तीव्र विकास ने व्यक्तियो मे अधिकाधिक औपचारिक, असहानुभूति-पूर्ण एव व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को बढावा दिया है। किसी परिवार विशेष में जन्म लेने की महत्ता अब प्रभावशाली नही है। किसी व्यक्ति की स्थिति (प्रतिष्ठा) के निर्धारण मे जन्म की अपेक्षा उपलब्धि अधिक निर्णायक हो रही है। आज सामाजिक सोपान अपरिवर्तनशील अथवा अनुलघनीय है। कोई भी व्यक्ति जीवन के लक्ष्यो के निर्धारण मे तारतम्य नही बैठा पा रहा है। प्रजातन्त्र ने कई क्रातिकारी आदर्शो एव समस्याओ को जन्म दिया है, तदापि स्वतन्त्रता एव समानता के उत्कृष्ट आदर्शों को वास्तविक जीवन मे प्राप्त करना कठिन हो रहा है। वस्तुत प्रजातंत्रीय व्यक्तित्वो को विकसित नही होने दिया जा रहा है, क्योकि वे परम्परागत निहित स्वार्थ वाले अधिकारियो के लिये एक खतरा उत्पन्न कर देते हैं और स्वय भी ऐसे अधि-कारियो से खतरा अनुभव करते हैं और हतोत्साहित अनुभव करते हैं। वास्तव मे अधिकारियो ने समझदारी एव सहानुभूतिपूर्ण रुख को नही अपनाया है। यद्यपि सिद्धान्त मानवीय सम्बन्धो, सहानुभूति एव स्वतन्त्रता के बारे में सर्वत्र बढा-चढा कर बातें की जाती हैं, परन्तु वास्तविक जीवन मे व्यक्ति प्रत्येक क्षेत्र मे नौकरशाही के निकृष्टतम दमन से अपने को घुटता हुआ अनुभव कर रहा है।

यद्यपि गतिशीलता ने प्रगति के सूचक शब्द का रूप तो ले लिया है, परन्तु दिन प्रतिदिन के जीवन मे यह कई कठिनाइया उत्पन्न कर रही है। ऊर्ध्वाकार गतिशीलता प्रत्येक व्यक्ति का आदर्श है, परन्तु आर्थिक कठिनाइयो, जातिवाद, भाई-भतीजावाद, एव भ्रष्टाचार के कारण इनकी प्राप्ति मे कठि-नाइया निरन्तर बढ रही हैं। समाज के अन्दर समानता का भाव बनाने के लिये क्षैतिज गतिशीलता पर एक सामाजिक आदर्श के रूप मे बल दिया जा रहा है। साथ ही जैसा प्रो० कॉरमेक ने कहा है कि ऊर्ध्वाकार गतिशीलता की निष्ठा के रूप मे क्रियात्मक अभिवृत्तियों का क्षैतिज गतिशीलता के 'उत्तरदायित्व' एव 'आस्था' के रूप मे क्रियात्मक अभिवृत्तियों का सुगमता पूर्वक हस्तान्तरण नही होता है। राजनीतिक एव सामाजिक नेतृत्व जन-व्यवहार के उच्च आदर्श एव स्तर देने मे असमर्थ रहा है। हमारे बदलते हुये समाज में सामाजिक व सास्कृतिक पिछडेपन के परिवर्तित क्षेत्रों मे निरन्तर वृद्धि हो रही है। कई रूपो में हमारे सोचने का तरीका और व्यवहार भौतिक प्रगति से बहुत पीछे रह गया है। हम सामाजिक परिवर्तन की माँग के अनुरूप अपने को समायोजित करने मे असफल रहे हैं। हमारे माता-पिता, नेता, एव

विशेषत: अध्यापक सामाजिक परिवर्तन के प्रभावशील प्रतिनिधि का उत्तरदायित्व निवाहने के स्थान पर स्थैतिक स्थितिओ का पालन करने की प्रवृत्ति दिखाते हैं। नौकरशाही ने प्रशासन मे, उद्योग मे, राजनीति मे, शिक्षा में एव सर्वत्र ठोस नियन्त्रण स्थापित कर लिया है। यह आधुनिकीकरण एव सामाजिक परिवर्तनों के मार्ग में, जिसे हमारे प्रवुद्ध व्यक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे है, वहुत वाधाओ को जन्म दे रहा है।

यह ध्यान देने योग्य है कि हमारे यहा अधिकाश व्यक्ति एव विशेषत विद्यार्थी भूतकाल के कुछ महान् आदर्शों एव आधुनिकता से वहुत प्रेरित होते हैं। लेकिन हुआ यह है, जैसी कि सुप्रसिद्ध गाधीवादी मानवशास्त्री प्रो० एन के वोस ने टिप्पणी की है, कि सामाजिक परिवर्तन स्वय अगीकार करने के स्थान पर हमारे अन्दर यह प्रवृत्ति घर कर गई है कि कोई भी परिवर्तन लाना सरकार का कार्य है। इसका परिणाम यह हुआ है कि सामाजिक परिवर्तन भी प्रशासन का विषय हो गया है। धर्म एव नैतिकता का अवमूल्यन हो गया है, एव धर्म-निरपेक्षता के आदर्श को अधिकाश व्यक्तिओ ने स्वीकार नही किया है।

परम्परागत व्यवसायो एव अन्य आर्थिक सस्थाओ के पतन, वढते हुये मूल्यो, रोजगार के अवसरो की अपर्याप्तता, देश मे मानव-शक्ति की आवश्यकताओ के अपर्याप्त अनुमान, फैशन, विलासिता एव अन्य कई अनुपयोगी वस्तुओ पर रुपया व्यय करने की आदत, जनसख्या मे तीव्र वृद्धि, खाद्यान्नो की आपूर्ति में कमी, पडौसी राष्ट्रो की हानि पहुँचाने की प्रवृत्ति, कई मामलो में अकुशल प्रवन्धन के कारण लोगो की आर्थिक कठिनाइयो मे वृद्धि हुई है। अस्तित्ववाद, अवसरवादिता एव व्यक्तिवादिता हमारे जीवन-दर्शन के वास्तविक सिद्धान्त बन गये हैं। राजनीतिक पदलोलुपता मे तीव्र विकास हुआ है। पाखड, भ्रष्टाचार, वेईमानी, गैर जिम्मेदारी, सकीर्णता एव स्वार्थपरता का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे विस्तार हुआ है। प्रशासन मे उम्र, वरिष्ठता, खुशामद, जातिवाद, रिश्तेदारी अथवा मित्रता के आधार पर अयोग्य व्यक्तियों तक को भी ऐसे महत्वपूर्ण पद प्राप्त हो जाते हैं, जिन पर शक्ति, उत्साह, निष्ठा, एव नवीन जगत् के विवेकपूर्ण आदर्शों से ओतप्रोत एव अधिक योग्य युवा-वर्ग को पदासीन होना चाहिये। परिणामस्वरूप ऑफिस के विभिन्न स्तरों पर, किसी भी व्यक्ति की उचित दिक्कतें तक भी तत्परता से नही सुलझाई जा सकती हैं। जन-सम्पर्क के आधुनिक साधन हमे नवीन ज्ञान एव आशायें प्रदान कर रहे हैं, परन्तु साथ ही साथ वह अपनी शिक्षा, प्रचार एव सवेदनवाद से हमे पगु भी वना रहे हैं।

इन सवके परिणामस्वरूप देश के जन साधारण के मस्तिष्क मे कुछ महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक विचार पनपे हैं। उदाहरणार्थ दूसरे के कष्ट से स्वय आनन्द उठाना बुरा नही है, क्योकि अन्य व्यक्ति भी ऐसा करते हैं। किसी एक व्यक्ति अथवा कुछ व्यक्तियो द्वारा रखी गई मागो की ओर ध्यान नहीं दिया जायेगा, परन्तु बहुत से व्यक्तियो अथवा भीड की मांगो पर तुरन्त ध्यान दिया जायेगा। सव कुछ—चाहे वह उचित हो अथवा अनुचित—आदोलनात्मक रवैया अपना कर प्राप्त किया जा सकता है। सभी पुलिस कार्यवाहियो की निन्दा की जानी चाहिये। आन्दोलन से पीडित सभी व्यक्तियो के प्रति सहानुभूति प्रकट करनी चाहिये, चाहे वह उचित कारण के लिये आन्दोलन कर रहे हों अथवा अनुचित कारण के लिये। जन साधारण के मस्तिष्क से इन विचारों को दूर करने के स्थान पर, नागरिक जीवन के सभी क्षेत्रो मे अधिकारियो द्वारा समय-समय पर की गई कार्यवाहियो ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इन धारणाओ को सुदृढ किया है।

यह सम्पूर्ण सामाजिक रुग्णता, जो किसी एक व्यक्ति, सस्था अथवा एक-कारक कारण से नही जन्मी है, बल्कि सभी के कारण पैदा हुई है, ने जन-साधारण मे नैराश्य का भाव भर दिया है। हमारे उच्छृखल विद्यार्थियो को जिस प्रकार जन्म के साथ ही प्रजातीय अथवा जीवशास्त्रीय विशेषतायें विरासत मे मिलती हैं, उसी प्रकार उनके किसी दोष के विना ही, यह सामाजिक रुग्णता भी जन्म के साथ ही विरासत मे प्राप्त हो जाती है।

अपने वाल्यकाल के प्रारम्भिक वर्षों मे वे इससे अनभिज्ञ रहते है। जैसे-जैसे उनकी आयु वढती है, धीरे-धीरे उन्हे अपनी शारीरिक एव सामाजिक विरासत का ज्ञान होने लगता है। अत· जब वे किशोरावस्था मे आते हैं, तो उन्हे अपने भाग्य का चित्र दिखाई देने लगता है। किशोरावस्था की नई प्रेरणायें अथवा सामाजिक-मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तिया इसके बोध को उनके लिये कुछ चुभनशील वना देती हैं। अपनी शैक्षणिक सस्थाओ मे व्याप्त वातावरण का उन्हे जैसे ही अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त होता है, यह चुभन सक्षोभ-प्रतिक्रियाओ की शृ खला के रूप मे प्रकट होती है। उनको ज्ञात होता है कि उनकी आशाओं के विपरीत, उनकी शिक्षण-सस्थाओ में, उनकी नई उमगो, नये आदर्शों, नई धारणाओ एव उनके युवावस्था के नये मनोभावो की अभिव्यक्ति करने वाला अथवा प्रोत्साहन देने वाला वातावरण विद्यमान नहीं है। उन्हें यह दुखदायी तथ्य भी ज्ञात हो जाता है कि उनकी शिक्षण-सस्थाओं मे, जहा वे वास्तविक ज्ञान प्राप्त करनेऔर भविष्य की व्यवसायिक-

शिक्षा लेने आये हैं, न केवल आदर्शवादी स्थान ही रिक्त है, वरन् कठोर सामाजिक रुग्णता भी विद्यमान है। उन्हे यह जानकर सदमा पहुचता है कि स्तरीकरण, परपरागत सत्ता, नौकरशाही, सबधों का अव्यक्तिकरण, कर्त्तव्य-सघर्ष, व्यक्तियों का उत्पीडन, भ्रष्टाचार, असगत विचार, अन्याय, सचारण के स्वतन्त्र साधनों का अभाव, अहवाद, व्यक्तित्ववाद, स्वार्थपरता, कठोर श्रम से दूर भागने की प्रवृत्ति, सहानुभूतिपूर्ण विवेक का अभाव, इत्यादि उनके शैक्षणिक जगत मे विद्यमान है। ऐसी स्थिति में युवा-वर्ग के स्वतन्त्र, सुखप्रद और आदर्श अथवा काल्पनिक स्वप्न छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। जन-साधारण के मस्तिष्क मे व्याप्त उपर्युक्त धारणायें एव हतोत्साहित व्यक्तियों की चिन्तनीय प्रवृत्तियाँ उनके मस्तिष्क को प्रभावित करती हैं एव किसी भी समय किसी भी मामले पर बडा हो अथवा छोटा, उचित हो अथवा अनुचित, इसे कोई नही जानता, उन्हे अनुशासनहीनता एव हिंसा की कार्यवाहियो के लिये प्रेरित करती हैं। और इस प्रकार से ये सारी की सारी घटनायें बहुदा घटित होती हैं।

प्रो० हुमायु कबिर जैसे विद्वान्, जिन्होंने कि विद्यार्थियों को उनकी "विद्रोहात्मकता" की अपेक्षा उनके 'नकारात्मक' एव 'सिनिकवाद' के रुख के लिये दोष दिया है, सम्भवत. समस्या पर इस दृष्टिकोण से विचार नही किया है। यह कहना बडा सरल है कि 'नकारात्मकता' एव 'सिनिकवाद' के इन दृष्टिकोणो के कारण युवा-वर्ग वर्तमान मान्यताओ को ठुकरा देता है एव वह नये आदर्शो की स्थापना एव विकास की ओर भी प्रेरित नही होता है, परन्तु यदि कोई व्यक्ति इस समस्या पर दूसरे दृष्टिकोण से विचार करता है तो निश्चित ही उसे मस्तिष्क मे कई युक्ति सगत प्रश्न उठेंगे—यथा, शिक्षण काल मे युवा-वर्ग को किस प्रकार सहायता दी जाती है अथवा उनका मार्ग-दर्शन किया जाता है ? शिक्षण-सस्थाओ मे सामाजिक रुग्णता किस प्रकार प्रवेश प्रविष्ट हुई है ? यदि वह विद्यमान भी है तो क्यों आदर्शवाद एव मान्यतायें, जिन्हे कि युवा-वर्ग को प्रेरित करना चाहिये, प्रेरित करने में असफल रही है। क्या विद्वान् शिक्षकों से युक्त शिक्षण–सस्थाओं पर समाज को निदेशित करने, परिवर्तन लाने, एव सुधार करने के उत्तरदायित्व का भार नहीं है ? यदि यह ऐसा है, और यह वास्तव मे है भी, तो इन उत्तरदायित्वों को वहन करने के स्थान पर, ये शिक्षण–सस्थायें स्वय ही क्यों रोगग्रस्त हो गई हैं ? फिर क्या कारण है कि शिक्षा, जिसकी कि विश्व के अन्य भागो की भाँति यहा पर भी मानव-निर्देशन के नायक के रूप मे, आधुनिकीकरण की कुजी के रूप मे, सम्पन्नता, प्रगति एव सुख-शाति के अग्रदूत के रूप मे अपेक्षा है,

इस बुरी तरह से प्रभावहीन हो गई है ? इस प्रकार सभी प्रश्नो के उत्तरो को तुरन्त प्राप्त करना आवश्यक है क्योकि अभी तक इस ओर ध्यान नही दिया गया है। हमारे राजनीतिक एव सामाजिक नेताओं ने शिक्षा-जगत् की बुराइयो को ज्ञात करने एव उनका उपचार करने की महती आवश्यकता पर बल दिया है, क्योकि वर्तमान समस्या का केन्द्र इसमे ही विद्यमान है । अतः निश्चित रूप से शिक्षा सुधारो को अन्य सभी से अधिक प्राथमिकता की आवश्यकता है।

सहयोगी समाजशास्त्री डॉ० योगेन्द्रसिंह, जो शिक्षण-सस्थाओ को विद्यार्थी-आन्दोलन के उत्तरदायित्व से यह कह कर बचाने का प्रयत्न करते हैं कि "अत. मेरी राय मे समस्या का निदान केवल कक्षाओं अथवा कॉलेजों मे नही है । हमारे समाज के सामान्य नैतिक व्यवहार मे और अधिक आमूलचूल अनुकूलन आवश्यक है । जितनी शीघ्रता से हम इसे प्राप्त कर सकें उतना ही श्रेष्ठ है। कितना भी शैक्षणिक सुधार इस समस्या को सुलझाने मे सहायक नही होगा", से पूर्णतः सहमत होना कठिन है । वास्तव मे इस तथ्य से कोई भी इन्कार नही करेगा कि समाज के कार्य एव व्यवहार के प्रत्येक स्तर पर निरन्तर प्रयत्न करने चाहिये, परन्तु शैक्षणिक सुधार की प्रभावकारिता मे अविश्वास करने का अर्थ इस मूलभूत सिद्धान्त मे अविश्वास व्यक्त करना होगा कि हमारे समाज के मार्ग-निर्देशन, रूप-परिवर्तन, पुनर्जीवित करने का उत्तरदायित्व शिक्षा का है, यदि ऐसा नही है तो फिर इन शिक्षण-सस्थाओं को बनाये रखने की उपादेयता क्या है ?

यह निश्चित है कि हमारे समाज मे व्याप्त सामाजिक रुग्णता को समाप्त किया जाना चाहिये और हमारी आकाक्षाओ के समाज—ऐसा समाज जिसमें सघर्ष एव तनाव कम से कम हो, सुख और समृद्धि से भरपूर समाज, हमारी कल्पनाओ के सुनहरे समाज अथवा आदर्शों के कल्पित समाज का उद्‌भव होना चाहिये । इसे प्राप्त करने के लिये समाज के प्रत्येक व्यक्ति को, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे, सभी सम्भव उपाय प्रयोग मे लेने के प्रयत्न करने चाहिये । परन्तु यह कहना पलायनवाद का परिचायक होगा कि जब तक कि इन सबको प्राप्त नही कर लिया जाता है, तब तक कोई भी शैक्षणिक सुधार नहीं किया जाना चाहिये एव शिक्षण-संस्थाओ से सम्बन्धित व्यक्तियों को शिक्षण-सस्थाओ को व्यवस्थित करने के लिये न तो कहा जाना चाहिये और न ही प्रेरित किया जाना चाहिये । किसी भी एक व्यक्ति अथवा सस्था के लिये सामाजिक रुग्णता के गहरे आचरण पर अकेले ही प्रहार करना सरल

कार्य नही है। अत स्वय शिक्षण-सस्थाओ द्वारा ही पहल किया जाना आवश्यक है।

हमारे कुछ शिक्षाशास्त्री एव उपकुलपति विद्यार्थी-आन्दोलन को केवल कानून व व्यवस्था की समस्या के रूप मे देखते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि वे भी एक साधारण पुलिस कर्मचारी अथवा जन-साधारण की भाँति ही इस दुखदायी समस्या का मूल्याकन करते हैं। यह उनकी अस्पष्ट दृष्टि, पलायनवाद की प्रवृत्ति, अपने स्वय के चित्र पर दृष्टिपात करने मे भय एव अपनी शिक्षण-सस्थाओं की कमियों और असफलताओं रूपी कठोर वास्तविकताओं का सामना करने मे साहस की कमी अथवा अरुचि पर केवल एक करारा तमाचा है। भारत मे २५ शताब्दियो पुराने शैक्षणिक इतिहास मे १९६६ का वर्ष अत्यन्त दुखदायी गिना जायेगा, क्योकि इन वर्ष मे हमारे शिक्षाशास्त्रियों ने नितान्त असहाय होकर, अपने उन विद्यार्थी सम्बन्धी मामलो को सुलझाने के लिये, जो न्यायसगत रूप से उनके क्षेत्र के हैं, पुलिस और राजनीतिज्ञो से निर्देश एव सहायता प्राप्त की।

यह एक उचित समय है, जबकि हमारे शिक्षाशास्त्रियो एव शैक्षणिक प्रशासको को अपनी हाथीदांत की मीनारों अथवा लौह-आवरणों, जो भी हों, से बाहर आना चाहिये एव आत्म-सन्तुष्टि, निष्प्रभता, भ्रमो, पलायनवादी प्रवृत्ति, एव बुराइयो, जो कि मुख्यत उन्ही के द्वारा उत्पन्न की गई हैं, के लिये दूसरों की बलि चढाने की प्रवृत्ति से दूर हटकर निष्पक्ष वैज्ञानिक जांच द्वारा अपने क्षेत्र के सुधार के लिये मार्ग एव साधन ढूढने का प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिये यहा उन्हे शोध-कार्य से सहायता प्राप्त करनी होगी। समाजशास्त्र के विभिन्न क्षेत्र हैं। भारत मे शिक्षा के क्षेत्र मे ठोस तथ्यों, जिन पर कि इस समस्या के प्रभावकारी समाधान की आधारशिला रखी जा सके, को प्राप्त करने के लिये शोध-कार्य की अत्यधिक आवश्यकता है। इस प्रकार की कार्यवाही किये बगैर जो कुछ भी कार्यवाही की जाती है, वह केवल हवा मे बातें करने के समान होगी, जिसमे दुर्भाग्य मे हम भारत-वासियो ने विशेषज्ञता प्राप्त कर ली है।

अत यह एक सुझाव है कि विश्वविद्यालयों, शैक्षणिक शोध-सस्थानो एव भारत सरकार द्वारा विद्यार्थी समस्या पर विचार करने के लिए गठित उच्च स्तरीय समिति द्वारा इन पक्षों अथवा विषयों, जिनका विद्यार्थी-आदोलन की समस्या से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सम्बन्ध है, जैसे—अभिभावकों द्वारा वहन

किये जाने वाला उच्च-शिक्षा पर प्रति विद्यार्थी व्यय, छात्रवृत्तियो, फीस-मुक्ति इत्यादि जैसी शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओ अथवा अवसरों का प्रावधान अथवा वितरण, कॉलिज एव विश्वविद्यालयो मे स्टाफ की नियुक्तियो मे गतिशीलता, विश्वविद्यालय एव कॉलिजो मे शिक्षा सम्बन्धी कार्य का वितरण, उपकुलपति, विभागाध्यक्ष एव प्रधानाचार्यों के कार्यों का विश्लेषण, उच्च-शिक्षा मे परीक्षा-व्यवस्था, विद्यार्थी-सगठनो की प्रभावशीलता, कॉलेज मे नये विद्यार्थियों की कठिनाइयों, अध्यापको की शिकायतो, राजनीतिक दलो द्वारा छात्रो के मामलो मे हस्तक्षेप, शिक्षा मे सामाजिक पिछड़ेपन के बहुमुखी क्षेत्र, सामाजिक परिवर्तन के प्रतिनिधि के रूप मे कॉलेज एव विश्वविद्यालय के अध्यापक के कार्यों की जाँच, पिछले पाँच वर्षों मे हठी विद्यार्थियो द्वारा की गई विशिष्ट माँगो, विद्यार्थी-आन्दोलनों के दमन के तरीके रूप मे पुलिस कार्य-वाहियो के प्रति विद्यार्थियों, अध्यापको, जन-साधारण एव पुलिस अधिकारियों के दृष्टिकोण, व्यावसायिक पाठ्यक्रमो यथा, कानून, इन्जीनियरिंग, अध्यापक प्रशिक्षण इत्यादि की अवधि मे वृद्धि का औचित्य, शैक्षणिक अधिकारियो द्वारा अभिनव परिवर्तनों अथवा नीति सम्बन्धी नवीन निर्णयो के प्रति विद्यार्थियो, अध्यापकों एव अभिभावको की प्रतिक्रिया, स्कूलो एव कॉलिजों मे विद्यार्थी-कल्याण की गतिविधियो का मूल्याकन, बचत अभियान के शैक्षणिक अधिकारियों एव विद्यार्थियों के मनोबल एव शिक्षा के स्तर पर प्रभावो, शिक्षण सस्थाओं मे विद्यमान सचारण के साधनो, शैक्षणिक स्तर मे गिरावट, स्कूल एव कॉलिजों के पाठ्यक्रमो के मध्य खाई, कॉलिजो मे शिक्षा के माध्यम एव विद्यार्थी-आन्दोलन पर इसके प्रभाव, समुदाय-कार्यों मे शिक्षण-सस्थाओ द्वारा भाग लेना एवं पहल करना, शैक्षणिक सस्थाओ विशेष कर, उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयो जहाँ पर विद्यार्थी अनुशासनहीनता एक नियमित विशेषता हो गई है, महत्वपूर्ण विद्यार्थी हडतालो का व्यक्ति-अध्ययन, स्कूल, कॉलिज एव विश्वविद्यालयो मे अध्यापको की मान्यताओ मे अन्तर, विद्यार्थी एव आधुनिकीकरण एव विद्यार्थियो को भविष्य के विभिन्न व्यवसायो के योग्य बनाने मे हमारे शैक्षणिक–पाठ्यक्रमों की प्रभावशीलता की जाँच इत्यादि, पर्याप्त समाजशास्त्रीय शोध-कार्य अथवा जाँच-अध्ययन किये जाने चाहिये। इस प्रकार शिक्षण–सस्थाओ के अन्दर अथवा वाहर व्याप्त इस सामाजिक रोग का सम्पूर्ण सप्तक इन अध्ययनो के क्षेत्र मे आ जायेगा। हमारे देश के विश्वविद्यालयो के शिक्षा एव, समाजशास्त्र विभागो को इस प्रकार के अध्ययन करने के लिये आगे आना चाहिये।

अन्त मे, इस पर जोर दिया जा सकता है कि इस प्रकार के अध्ययनों को प्रारम्भ करने एव पूर्ण करने के प्रयत्न शीघ्रातिशीघ्र प्रारम्भ किये जाने चाहिये, ताकि उनके निष्कर्षों से शैक्षणिक जगत एव सरकार को विद्यार्थी-आन्दोलन की इस कष्टप्रद समस्या को प्रभावपूर्ण रूप से सुलझाने में मदद मिल सके। शिक्षा सबधी सुधारों की आवश्यकता को प्राथमिकता देना आवश्यक है, क्योकि वर्तमान मूल्यहीनता की स्थिति पर शिक्षा रूपी शस्त्र द्वारा ही बडे प्रभावपूर्ण ढग से प्रहार किया जा सकता है, एव उसे नष्ट किया जा सकता है।

व्यवस्थित शोध-अध्ययन करने के सुझाव का यह आशय कदापि नहीं है कि जब तक ये अध्ययन पूर्ण न हों, तब तक और कुछ किया ही नहीं जाना चाहिये। वरन् अच्छा तो यह होगा कि राज्य एव शैक्षणिक अधिकारियों द्वारा प्राथमिक उपचार के रूप मे जितनी भी सुविधायें प्रदान की जा सकती है, प्रदान करने के प्रत्येक सम्भव प्रयत्न करने चाहिये, परन्तु प्रभावशील उपचार शोध-कार्य के माध्यम से रोग का सावधानी पूर्वक अध्ययन करके, केवल शिक्षा-शास्त्रियो द्वारा ही किया जा सकता है, एव किया जाना चाहिए।

शिक्षा समाज शास्त्र यूनिट,
राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्,
नई दिल्ली-१६

छात्र अस्वस्थता : राष्ट्रव्यापी असन्तोष की एक प्रतिध्वनि

•

काका कालेलकर

इन विद्यार्थियों को हुआ क्या है ? देखते-देखते सारा देश इनकी अस्वस्थता के कारण अस्वस्थ हुआ है।

अस्वस्थता स्वय एक रोग है, जो बुद्धिशक्ति को क्षीण करता है। अनुभवी लोगो ने कहा ही है : 'स्वस्थे चित्ते बुद्धय सभवन्ति'। जब चित्त का स्वास्थ्य स्थापित होता है तभी बुद्धि अपना काम करती है, दोषों के कारण ढू ढे जाते हैं और कठिनाई दूर करने के इलाज भी सूझते हैं।

अपनी कठिनाइया और अपना असन्तोष विद्यार्थी लोग चिल्ला-चिल्लाकर प्रकट करते हैं, व्यक्तिश. और इकट्ठा होकर प्रस्ताव करके भी। तो भी विद्यार्थियो की अस्वस्थता का गहरा कारण समझ मे नही आता। देश के शिक्षाशास्त्री, आचार्य, कुलपति, कुलनायक आदि अधिकारी-वर्ग और देश के नेता भी अपना पृथक्करण पेश करते जाते हैं। विद्यार्थियों के साथ जिनका घनिष्ठ सम्बन्ध है, ऐसे विद्यार्थियों के मां-बाप अभी तक चुप ही हैं। उन्होने व्यक्तिश अथवा सगठित रूप मे कुछ कहा हो, तो हमारे पढने सुनने में नही आया।

फ्रास की इतिहास प्रसिद्ध क्राति शुरू हुई, उसके पहले फ्रास की पूरी हालत की मीमासा करने वाले असंख्य लेख वहा के मनीषियो ने लिखे थे। वह साहित्य इतना वडा था और सूचनाओं मे इतनी विविधता थी कि पढने वाले घवडा जाते थे और कुछ भी निर्णय कर नहीं पाते थे। लिखने वाले बहुत से लोग विद्वान थे, चिन्तनशील थे। हर एक चर्चा, मीमासा और तात्त्विक भूमिका सही लगती थी, हर एक की सूचनायें बड़ी मार्के की और उत्कृष्ट थी। अगर किसी एक की वात मानी जाती तो शायद फ्रास का वेडा पार हो जाता।

लेकिन ऐसे स्वदेश हित–चिन्तक मनीषियों की सख्या इतनी वडी थी और हर एक की सूचना एक दूसरे से भिन्न थी कि फ्रास की जनता निर्णय कर न सकी कि किसके पीछे चले । जहा देखें चर्चा ही चर्चा चलती थी। सुन सुनकर ऊवी हुई जनता ने अन्त मे निर्णय किया कि सव बुद्धिमानो की बातें बाजू पर रखकर अवुद्धिको की शरण जाय और उसने ऐसा ही किया। ज़ोरों से अन्धे वनकर उन्होंने भले-बुरे का भेद किये विना, रक्तपात करना शुरू किया । कहते हैं कि उस समय का राजा बुरा नही था, अच्छा था। उसका एक ही दोष था कि वह क्राति का नेता नही बन सका ।

जो हो, फ्रास की जनता ने अन्धी क्राति-देवी की ही उपासना पसन्द की और जितना हो सके स्वदेश का नाश किया। जो भी लोग दूसरो को नापसन्द थे उनका सिर उडाया गया । शिरच्छेद का यह काम इतना वढा कि जल्लाद थक गये, किन्तु ऐसी थकान से अन्धी क्राति की बुद्धि हार मानने वाली नही थी । एक आदमी ने अनेक लोगों के सिर शरीर से अलग करने के लिये एक यन्त्र का आविष्कार किया, जिसे 'गिलोटिन' कहते थे ।

जव ऐसे अर्थविहीन वलिदान से क्राँति-देवी का पेट भर गया, तब नेपोलियन जैसे एक फौजी जवान से सेना का सगठन किया, लोगो को कावू मे लाने का प्रयत्न शुरू करके सफलता पाई ।

कहते हैं कि किसी समय क्रातिकारी नेताओं की एक सभा इकट्ठी हुई, रात को देरी हो चुकी थी, सभा के अध्यक्ष का स्थान किसे दिया जाय, वडा पेचीदा सवाल था। क्रातिकारियों के अनेक पक्ष थे, उनमे समझौता होने वाला नही था। किसी का नाम सूचित करने की हिम्मत कौन करें ? वात सचमुच पेचीदा थी। सब नेता लोग एक दूसरे का मुह देख रहे थे। इतने मे जवान नेपोलियन खडा हुआ, सीधा जाकर अध्यक्ष की कुर्सी पर वैठा गया। उसने इतना ही कहा, भाई लोगो ! मैं अध्यक्ष हूँ, बहुत देरी हो चुकी है, काम शुरू करेंगे। नेपोलियन के आत्म-विश्वास की विजय हुई, और फ्राँस के इतिहास मे नवयुग का प्रारम्भ हुआ।

फ्रास का वह इतिहास पढने वाले कहते हैं कि सचमुच इतने रक्तपात की कोई आवश्यकता नही थी । सामाजिक दोषों के कारण नहीं, किन्तु केवल अबुद्धि के कारण इतना रक्तपात हुआ ।

और ऐसी अबुद्धि फ्रास पर क्योकर सवार हुई ? इसका जवाब एक ही है कि बुद्धिमान लोगो ने सगठित न होते हुए भी अपनी-अपनी बुद्धि

चलाई। नतीजा यह हुआ कि वुद्धियो की भीड मे अबुद्धि फैल गई और उसीका प्रभाव सबसे ज्यादा साबित हुआ।

क्या फ्रांस के उस इतिहास-प्रसिद्ध क्रान्ति से हम कुछ मवक सीख सकते हैं ?

हमारे विद्यार्थी अपने-अपने हाई स्कूलों में और कॉलेजो मे पढते हैं। ये शिक्षा-सस्थायें अनेक राज्यो मे काम करती हैं। हर एक स्थान पर स्थानिक सवाल अलग-अलग होते हैं। इसलिये हमे आश्चर्य इस बात का है कि देखते-देखते विद्यार्थियो का असन्तोष छूत के रोग के जैसा सर्वत्र क्यों फैल गया है ? देश के मजदूर दलों का संगठन हम समझ सकते हैं। उनको तनख्वाह कम मिलती है। काम करते उन्हे पूरा आराम नही मिलता है, उनके जीवन की अनिश्चितता उनको अखरती है। उनका सगठित होना स्वाभाविक है। अगर देश के किसान भी सगठित हो जाय तो उसमे आश्चर्य नही है। अब तो सरकारी कर्मचारी और पुलिस वाले भी सगठित होने लगे हैं। 'सघे शक्ति कलौ युगे', लेकिन विद्यार्थियो का अखिल राष्ट्रीय सगठन किम उद्देश्य से हो सकता है ? उन्हें उनका खर्चा तो मा-बापों से मिलता है, वजीफो की मदद भी मिलती है। थोडे विद्यार्थी नौकरी करके कमाते हैं और पढते भी हैं, 'Earn while you learn' यह है उनका सूत्र। लेकिन विद्यार्थियो का ऐसा व्यापक सगठन हमारे ध्यान मे नही आता है। हमारे जमाने मे देश की आजादी के लिये हम सगठित होते थे, प्रगट रूप से या गुप्त रूप से। लेकिन उसका वायुमण्डल अलग था। आज का वायुमण्डल ही अलग है।

आज तो जैसा दिख पडता है कि विद्यार्थी असतुष्ट होकर प्रथम सगठित होते है और बाद मे अपने असतोष को कोई मजबूत बुनियाद देने के लिये कोई कारण या हेतु ढूढने लगते हैं।

जब गाधीजी ने देश के असतोष को वाणी दे दी और असतुष्ट लोगों को सगठित किया और सत्याग्रह का तरीका बताया, तब उन्होंने नागरिकता का प्रथम लक्षण लोगों के सामने रखा कि हम तनिक भी हिंसा न करें, कानून अपने हाथ मे न लें और विजय पाने पर नम्र होकर कम से कम मागें पेश करें और झगडे के अन्त मे मैत्री की स्थापना के लिये अनुकूल वायुमण्डल तैयार करें।

गांधी जी ने कानून की नाफरमानी सिखाई सही, आज्ञा का भग सिखाया सही, किन्तु उसके साथ सर्वोच्च सस्कारिता और सज्जनता जोड़ दी।

Disobedience सही, लेकिन वह civil होना चाहिये। तभी वह वैध गिना जायेगा। आजकल इस अहिंसा का व्याकरण लोग भूल गये हैं। उसके प्रति लोगो के मन मे विश्वास और आदर नही। इससे सब कुछ बिगड गया है। श्रीमती एनी बिसेन्ट ने कहा ही था कि "Brick bats will only invite bullets," पुलिस पर अगर हम रोडों की बौछार करेंगे तो जवाब मे गोलियों की बौछार मिलेगी ही। गाधी जी भी यही कहते थे कि अगर हमने थोडी भी हिंसा की तो विरोधियो की सवाई हिंसा का, शतगुणी हिंसा का समर्थन होता है। इसलिये Provocation कुछ भी हो, हमे पूर्णतया अहिंसक ही रहना है। इसी मे हमारी नैतिकता सिद्ध होगी और विजय भी निश्चित रूपसे मिलेगी।

गाधी जी का यह अहिंसात्मक व्याकरण लोग भूल गये हैं। सरकार को और सरकार की पुलिस को हिंसात्मक इलाज आजमाने के लिये बाध्य करने से सरकार की लोकप्रियता टूट जायगी और चुनाव मे हम जीत जायेंगे, ऐसी अन्धी नीति लोकप्रिय हो रही है। इसका फल कुछ भी हो, कई लोग नाहक मारे जाते हैं और देश का वायुमण्डल विपाक्त होता है। इससे देश के लिये बडा खतरा है।

हम देखते है कि विद्यार्थियों को क्या चाहिये, वे स्वय नही जानते। देश के सार्वत्रिक असन्तोप की प्रतिध्वनि ही उनकी अस्वस्थता के पीछे दिख पडती है। स्वराज्य पाने के बाद समाजसत्तावाद की—सोश्यालिजम की जो बात श्री जवाहरलाल जी ने चलाई, उसके पीछे विश्वप्रवाह का अध्ययन था, देश-मानस का परिचय कम था। लोग इतना ही समझ गये कि अब सब कुछ जिम्मेवारी सरकार की है। जनता के लिये दो या तीन ही बातें रह जाती हैं—चुनाव के दिनों मे वाट देना, सरकार मागे वैसे टैक्स देना और सरकार की नुक्ताचीनी करने वाले वचन सुनते रहना। जो कुछ भी करना हो, सरकार करे। हमे जो भी चाहिये, देने के लिये सरकार बाध्य है। प्रजा का काम करने की कुशलता और योग्यता सरकारी तन्त्र मे हो या न हो, सरकार के अधिकार बढते ही जाते हैं। Socialism की दीक्षा न जनता को मिल रही है, न सरकारी कर्मचारियो को। सबकी सब कठिनाइया इसी एक कमी के कारण खडी हुई है। और नये जमाने के प्रतिनिधि विद्यार्थियों के जीवन मे एक भयानक पोलापन तैयार हुआ है। सामान्य जनता के जीवन मे भी वह पोलापन है ही। किन्तु सामान्य मानस को आजीविका की चिन्ता काफी होती है। विद्यार्थियों मे नया लहू होता है। महत्वाकांक्षा को पोषण देने की

उग्र होती है। ऐसे समय उनके सामने कोई महान् जीवनोद्देश्य हो, तो राष्ट्र देखते-देखते उन्नति कर सकता है। विद्यार्थियो के सामने आज कोई ऐसा जीवनोद्देश्य, मिशन अथवा पुरुषार्थ है नही। इसलिये वह शून्यता और पोलापन तरह-तरह के विकृत रूप धारण करता है।

आज भारत मे राजतन्त्र ऊपर से नीचे तक, नये आदर्श से प्रेरित हुआ नही दिख पडता है। आप हुक्म करते जाइये, हम निष्काम भाव से सफलता निष्फलता का खयाल किये बिना अमल करते जायेंगे, यही वृत्ति दिख पडती है। राज्यतन्त्र की नये ज़माने की नई प्रेरणा राष्ट्र जीवन के अन्तरग तक पहुची नही है। नवजीवन की प्राणवान प्रेरणा से ही राष्ट्र सजीवन होगा।

सन्निधि,
राजघाट, नई दिल्ली-१.

शिक्षा—मंगलमय नियति की एक विधायक प्रक्रिया

•

बृजनन्दन

छात्रों मे अनुशासनहीनता आज एक प्रश्न बनकर भारत मे ही नही, लगभग समस्त जगत् के सामने खडी है। इस आंदोलन का रूप सर्वत्र एक जैसा ही है, अर्थात् राष्ट्रीय और साथ ही सरकारी-गैरसरकारी सम्पत्ति की भी विवेकहीन क्षति करना, सामान्य दैनन्दिन जीवन के प्रवाह मे नाना प्रकार के व्यवधान उत्पन्न करना और फलत छात्रो का अपने अनागत जीवन के सुयोगों को भी कम से कम अंशत नष्ट कर डालना, इत्यादि। भिन्न-भिन्न देशों के लोग इसे भिन्न-भिन्न दिशाओं में मोड़ने की चेष्टा कर रहे हैं, किन्तु अंतिम विश्लेषण मे सर्वत्र उद्देश्य प्राय एक ही हो जाता है, और यह है अपने राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वियों से प्रतिशोध लेना। इनमे से कुछ है जो छात्रो को जानबूझ कर इसलिये उकसाते हैं कि सस्ते में उनका काम निकल जाय, और कुछ हैं जो उच्छृंखलता की इस धारा से स्वयं बचने के लिये उसे अपने प्रतिपक्षी पर फेर देने की चेष्टा करते है। परिणाम भी सर्वत्र एक ही होता है—परिस्थिति का हाथ से बाहर निकल जाना और अंत मे बरबादी।

फिर भी अभी तक इस समस्या के कारण और समाधान खोजने की कोई सच्ची चेष्टा नही की जा रही है, और न उसका कोई सही हल ही मिल रहा है। स्यात् इसलिये कि इसके खोजी इसके वास्तविक कारण-बिन्दुओं को स्पर्श नही कर पाते अथवा धर्म-निरपेक्षता या धर्म-विरोधिकता के नाम पर वास्तविक मनोवैज्ञानिक कारणो और समाधान की ओर से जान बूझकर आंखें मूंदे रहते हैं।

छात्रों की उच्छृंखलता का मनोवैज्ञानिक कारण ढूंढने के लिये हमे सबसे पहले उनके वय की ओर दृष्टिपात करना होगा, जिसके विषय में कवि-वर बिहारी ने कहा है-"कितै न औगुन जग करै, बै-नै चढ़ती बार"। श्रीमा हमें बतलाती है, कि बच्चो का नटखटपन उनके अन्दर अत्यधिक प्राणिक ऊर्जा

का द्योतक है, जो नियन्त्रित नही रहने के कारण गलत दिशा ले लेती है। इसे बाढ मे बर्बादी लाने वाली नदी की तरह नियन्त्रित किया जा सकता है और तब यह वैसा ही चमत्कार दिखलायेगी, जो नदी को नियन्त्रित कर खडे किये गये आज के विशाल बाध दिखलाते है। यहा एक आपत्ति उठाई जा सकती है कि छात्रों का वय तो सदा से वैसा ही चला आ रहा है, पर ऐसा तो कभी नहीं हुआ, आज यह अप्रामाण्य उच्छृखला क्यो? इसका कारण है आज शिक्षा की अधिक व्यापकता। पहले महाविद्यालयो मे पढने वाले छात्र कम हुआ करते थे और वे सभी प्राय. कोई विशेष उद्देश्य लेकर ही महाविद्यालय मे कदम रखते थे, पर आज शिक्षा के सामान्यीकरण हो जाने के कारण छात्रों के एक बडे भाग के सामने कोई लक्ष्य नही होता, बल्कि यह कहा जा सकता है कि देश की वर्तमान आर्थिक अवस्था मे वे अपनी शिक्षा से कौनसा व्यवहारिक लाभ उठा पायेंगे, इस विषय के प्रति वे अधकार मे रहते हैं तथा निराशा से भरे होते हैं और तिस पर है—उनकी अपार सख्या की सम्मिलित शक्ति। भीड की चेतना व्यक्ति की चेतना से सदैव घटिया होती हैं और यही भीड की चेतना उनसे सभी प्रकार के अवाछित कृत्य करवा लेती है, जिन पर स्यात् एकात मे विचारने पर वे स्वय दु खित एव लज्जित होते। विगत दो महायुद्धों द्वारा उत्पन्न स्नायविक तनाव तथा वर्तमान आणविक अस्त्रों की विभीषिका के साये मे रहने एंव पाश्चात्य देशो में फैली कुंठा और रुग्ण मनोवृत्ति का कला एव साहित्य के माध्यम से निर्बाध आयात आदि वे प्रमुख तत्त्व हैं, जो युवा-मानस पर गहरी क्षोभ भरी हीनता की छाप लगाते हैं।

एक और भी कारण है—बडा ही आग्रही, पर गुह्य क्षेत्र का। किन्तु इसी कारण यदि हम इसे बचा जांय तो सत्य की खोज मे हम विषय के प्रतिन्याय न कर पावेंगे। वह है कि आज हम जगत् के इतिहास की ऐसी वेला मे खडे हैं, जबकि उच्चतर प्रकाश की शक्तियो के चाप के परिणामस्वरुप मानव-चेतना मे एक विशेष क्राति आने वाली है, और जगत मे विद्यमान अब तक की अधकार की शक्तियां उसका विरोध कर रही हैं। हमारा बाह्य सतही जीवन, अपने पीछे छिपे अगणित अतिभौतिक शक्तियो का एक विराट क्रीडागण है। सामान्य अवस्था मे हम इससे अवगत नही होते, केवल कठपुतलियों की तरह उनके द्वारा चालित धागों के छोर पर नाचते रहते हैं। इस विवशता को हम तीव्रता से अनुभव तो करते हैं, पर कारण समझ नही पाते, क्योंकि हम पीछे के छिपे हाथो को देखने की कोशिश नहीं करते अथवा उन पर विश्वास करना चाहते नहीं। हम क्रूर नियति पर तो विश्वास करते है पर एक मगलमय,

करुणामय नियति के अस्तित्व पर अविश्वास करते हैं। कैसी विडम्बना है यह ! क्रूर नियति पर हमारा प्रगाढ़ विश्वास ही हमें उसके मध्य में रखता है, क्योंकि हम सदा उन्हीं वस्तुओं से घिरे रहते हैं, जिन पर हमारा विश्वास होता है। यदि हम इसके प्रतिकूल एक मंगलमय, करुणामय नियति के अस्तित्व पर विश्वास करें, तो उसे हम अपने वातावरण में खींच लायेंगे और पासा पलट जायगा। हां, तो स्पष्ट है कि वातावरण की शक्तियां उभरती हुई शक्ति का मुकाबला करने के लिये, जितना सम्भव हो, विक्षोभ पैदा करने की चेष्टा करती हैं। विक्षोभ का शिकार हो जाना, शांति के पथ पर आरोहण की अपेक्षा बहुत अधिक सरल होता है। ढलान पर सुगम जाना पहाड़ पर चढ़ने की अपेक्षा अधिक आसान होता है। पर फिर भी यदि हम चाहें तो नीचे की ओर अनायास लुढ़कते रहने से अपने को रोक कर, ऊपर आरोहण का सफर भी कर ही सकते हैं।

लक्ष्य का अभाव, भीड़ की चेतना, आयातित शील-प्रभाव और प्रगति के लिये ऊपर के चाप के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ नीचे का प्रतिरोध, ये ही हैं हमारी समस्या के कारण और समाधान पाने का स्रोत भी इन्हीं में निहित है। श्रीमा कहती हैं—"लक्ष्यहीन जीवन सदैव एक दुःखद जीवन हुआ करता है। तुममें से प्रत्येक को एक लक्ष्य रखना चाहिये। किन्तु यह मत भूलना कि तुम्हारे लक्ष्य के स्वरूप पर ही तुम्हारे जीवन का स्वरूप निर्भर रहेगा। तुम्हारा लक्ष्य उच्च और विशाल होना चाहिये। उसे क्षुद्रता, मलीनता-विहीन और निःस्वार्थ होना चाहिये। (ऐसा होने पर) यह तुम्हारा जीवन तुम्हारे लिये और सबों के लिये एक बहुमूल्य वस्तु बन जायेगा।" वस्तुतः बच्चे में होश आने के साथ ही उसके भीतर एक उच्चतर जीवन जीने की भावना भरनी चाहिये। उसे यह तथ्य भी बतला देना चाहिये कि प्रत्येक मनुष्य के भीतर अनन्त क्षमताएं सुप्त पड़ी हैं और सकल्प द्वारा उन्हें जगा कर जीवन में चामत्कारिक परिवर्तन लाना सभी के लिये सभव है। आवश्यकता है केवल सतत् अध्यवसायपूर्ण अभ्यास की। बच्चे के मन को विशाल और सुनम्य बनाना होगा। "अपनी प्राकृत अवस्था मे मानव मन अपनी दृष्टि मे सदा ही सीमित, समझ मे सकीर्ण, धारणाओ मे सकुचित होता है और इसे विशालतर, सुनम्य एव गभीर बनाने के लिये प्रयास की आवश्यकता है। अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक वस्तु पर मनुष्य जितने बिंदुओं से हो सके, विचार करे। ....जब भी किसी बात पर मतभेद उपस्थित हो कि कौनसा निर्णय लिया जाय अथवा कौनसा काम किया जाय, व्यक्ति को कभी भी अपनी धारणा या दृष्टि-बिन्दु

से चिपककर नही रहना चाहिये। इसके विपरीत, व्यक्ति को चाहिये कि वह दूसरे के दृष्टि-बिंदु को समझे, अपने को उसके स्थान मे रखे और झगडने या यहा तक कि लड पडने के बजाय एक ऐसा समाधान खोज निकाले, जो दोनो पक्षो को विवेक युक्त तुष्टि दे। सद्भावना वाले मनुष्यो के लिये यह राह निकल ही आती है।"—(श्रीमा)। इस प्रकार, यदि बालक को दूसरो की धारणा करना सिखाया जाय, दूसरो के प्रति उचित सम्मान देकर एक समुचित विश्लेषण पर पहुँचने का अभ्यास अल्पवयस् से कराया जाय तो अनुशासन हीनता को बीजावस्था मे ही हम नष्ट कर सकते हैं। जो भी हो, शिक्षा ग्रहण करने के लिये कोई भी समय अनुपयुक्त नही है। वह कठिन भले ही हो, किन्तु असभव नही। पर कहने की आवश्यकता नही कि अनुशासन आतरिक है। मनुष्य के ऊपर बाहर से लादा हुआ कोई भी अनुशासन सफल नही हो सकता, अपितु दमित उच्छृखलता कुछ काल बाद और भी अधिक प्रचडता से फूट सकती है। हमे इस तथ्य के प्रति जागना पडेगा और शिक्षा मे इस तत्त्व पर पर्याप्त बल देना होगा। अल्पावस्था मे उच्चतर लक्ष्यो के प्रति खुले रहने की शिक्षा आगे चलकर बालक के भीतर एक उदात्त व्यक्तित्व विकसित करेगी, जो भीड मे भी अपनी उच्चता बनाये रखने और आयातित हीन-प्रभाव से बचने मे उसकी सहायता करेगी तथा अवश्य ही भविष्य मे वह योग्य नागरिक और राष्ट्र की निधि बन सकेगा।

किन्तु, यहा हमे एक और भी बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है। दूसरो को दी गयी शिक्षा तब ही प्रभावशाली हो सकती है, जबकि उन आदर्शो को हम स्वय जियें। बच्चे बडे तीक्ष्ण अन्वेक्षक होते हैं और बडो की बुराइयो को बडी आसानी से और शीघ्रता से परिलक्षित कर लेते हैं। यदि वे देश के चुनिन्दा प्रतिनिधियो को राष्ट्र की व्यवस्थापिका सभाओ मे भद्रता की सभी मर्यादाए लाघकर लडते पायेंगे, तो हम उनसे कैसे आशा कर सकते हैं कि वे अपनी बारी मे मासूम शालीनता प्रदर्शन करेंगे ? नकल करने की प्रवृत्ति भी शायद बच्चो मे वानरो से अधिक होती है, विशेषत बुरे दृष्टातो की। और इसमे वे वयस्को से अधिक कुशल निकल सकते हैं। अत छात्रो मे अनुशासन लाने से पहले देश के 'चुने हुए श्रीमतो' को भी अनुशासन का जुम्मा अपने कंधो पर स्वीकारना होगा। और यहा पुन पूर्वकथित आग्रही गुह्य-तत्त्व की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहना होगा कि इस व्याधि का उपचार किसी बाहरी गुटिका से नही किया जा सकता। यदि अपेक्षया अधिक वयस्कताजनित अनम्यता के कारण अपने मे सद्यः परिवर्तन लाने मे अक्षमता का बोधकर

बड़ों से और कुछ पार न लगे तो कम से कम प्रभु नियति के प्रति असहाय एवं विवशता पूर्ण हार मानने के बजाय, भगवन्मय नियति में आस्था लाकर उसके प्रति भावना द्वारा अपने को पूर्ण समर्पण कर दें तथा फल की बाग उसी पर छोड़ दें, तो सुपरिणाम अवश्यम्भावी है। वस्तुतः नियति भगवन्मय है और उसे किसी अतिनीतिवादी की वृथा मनोकल्पना समझकर, यदि हम उसकी उपेक्षा न करें तथा हम उसमें दृढ़ आस्था उत्पन्न करें, तो वह अपने को अवश्य अभिव्यक्त करेगी। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु !

श्री अरविन्द आश्रम,
पांडिचेरी–२

अशान्त युवा : नवीन का पुरातन से विद्रोह

●

प्रो० वालकृष्ण नेमा

पिछले कुछेक वर्षों में हमारे युवा-वर्ग ने जो 'कर्तृत्व' प्रदर्शित किया है वह अभूतपूर्व था। समाचार-पत्रो की सुर्खियो मे उसे स्थान मिला। विधान सभाओ तथा ससद की कार्यवाइयों मे खेद तथा क्षोभ भरे वातावरण मे उस पर विचार किया गया। उससे सम्बन्धित गोली-काण्डों और उनकी जाच के लिए नियुक्त आयोगो की रिपोर्टों के रूप मे वह देश के इतिहास की सामग्री वन गया है। स्वतन्त्रता-सग्राम के काल मे होने वाले छात्र-आन्दोलन और युवको की गतिविधियो से इसका रचमात्र भी साम्य नही है। ऐसे प्रबल आवेग के साथ यह कर्तृत्व प्रकट हुआ कि सारे देश को इसने आन्दोलित कर दिया और शासक, नेता, अभिभावक, शिक्षक सभी किंकर्तव्य-विमूढ से हो गये।

यह सब तो हुआ, पर इस बात को सभी, यहा तक कि स्वय छात्र-नेता कहते और मानते हैं कि ये गतिविधियाँ असामाजिक हैं, समाज एव राष्ट्र के लिए हर दृष्टिकोण से अहितकर हैं। किन्तु, विचित्र बात तो यह है कि इतना होने पर भी इनके निराकरण का कोई सफल उपाय नही खोजा जा सका। परिणामत: देश के तरुण-वर्ग की ये प्रवृत्तिया सामाजिक रोग का रूप लेती जा रही है और भय इस बात का है कि यदि इन्हें समूल नष्ट करने मे शीघ्रता न की गई तो कही यह घातक न सिद्ध हो।

वस्तुत: जो अव्यवस्था, अनुशासनहीनता अथवा उच्छृंखलता समाज में दिखाई दे रही है, उसके सही रूप को समझने का प्रयत्न नही किया गया है। प्राय. ही ऐसी घटनाओ के लिए शिक्षण-सस्थाओं तथा शिक्षार्थियो को दोषी ठहराया जाता है। किन्तु, यह आशिक सत्य है। ऐसी घटनाओं का प्रारभ शिक्षण-सस्थाओ से होता है अथवा विद्यार्थी उनमे सक्रिय रूप से भाग लेते हैं, यह आधार इस निष्कर्ष के लिए पर्याप्त नही है कि छात्र और केवल छात्र ही उसके लिए दोषी हैं।

तथ्य यह जान पडता है कि शिक्षण-संस्थाएँ और छात्र तो केवल माध्यम हैं। जिसे हम छात्र-उच्छृंखलता, विद्यार्थी-असन्तोष, अथवा शिक्षालयो की अनुशासनहीनता कहते हैं, उसका क्षेत्र शिक्षण-संस्थाओ से कहीं व्यापक है। उसके कारण भी शिक्षा-क्षेत्र के दोषो के अतिरिक्त और भी हैं। अनुशासनहीनता प्राथमिक अथवा माध्यमिक विद्यालयो के छात्रो मे अपेक्षाकृत कम है, लेकिन उच्चतर विद्यालयो, कॉलेजो और विश्वविद्यालयो के छात्रो मे क्रमश अधिकाधिक पाई जाती है। इन छात्रो का आयुवर्ग प्राय १५ से २५ वर्ष का होता है। साथ ही इससे भी इन्कार नही किया जा सकता कि इन छात्रो की सम आयु के व्यक्तियो मे उनके शिक्षण-संस्थाओ से सम्बन्धित न होते हुए भी एक असन्तोष और क्षोभ लक्षित होता है। उनके जीवन मे भटकाव, अनास्था यहा तक कि एक प्रकार की निरर्थकता व्याप्त है। इस कारण उनमे भी वही असयम और आक्रोश है। अत' जब इन आन्दोलनात्मक प्रवृत्तियों का छात्रेतर व्यक्तियो मे भी पूर्ण अभाव नही हैं, तो फिर छात्रो और शिक्षण-संस्थाओ मात्र से ही उनका सम्बन्ध जोडना तर्क सगत नही। लेकिन एक विशेष आयुवर्ग मे अवश्य उसका सम्बन्ध जान पडता है। इस बात को ध्यान मे रखने पर, उसे छात्र–असन्तोष के स्थान पर युवक-असतोष मानना अधिक उपयुक्त है।

असन्तोष की व्यापकता इस बात से भी प्रगट होती है, कि अनुशासनहीनता तथा उच्छृंखलता की अभिव्यक्ति केवल शैक्षणिक परिवेश तथा व्यवस्था से सम्बन्धित नही होती। वह केवल शिक्षको को उछालना और शाला के अधिकारियो एव नियमो की अवज्ञा तक ही सीमित नही है। अनुशासनहीनता का विद्यालयी रूप के अतिरिक्त एक पारिवारिक और सामाजिक रूप भी है। माता-पिता तथा अन्य गुरुजनो की अवज्ञा, कौटुम्बिक परम्पराओ की उपेक्षा, धार्मिक एव नैतिक मान्यताओ मे अनास्था आदि युवको के व्यवहार मे दिन प्रतिदिन बढती जा रही हैं।

वह सामान्य तत्व जिसने युवको में असन्तोष की भावना को जन्म दिया है, पुरातन और नवीन का सघर्ष है। यह सघर्ष ही प्रगति का आधार है और प्रत्येक समाज मे सदैव चलता रहता है। भारतीय समाज मे प्राय पुरातन का ही पलडा भारी रहा है, यही कारण था कि सघर्ष अपने स्पष्ट रूप में उभर नही पाता था। भारतीय समाज एव संस्कृति के विकास की की धारा इसीलिये अविच्छिन्न एव रोधरहित रही है। पुरातन के प्रति श्रद्धा तथा सम्मान का भाव प्रत्येक भारतीय को जन्म के साथ ही घूँटी

के समान पिलाया जाता है। पर, बीसवी सदी में परिस्थितिया बहुत बदल चुकी हैं। काल एव परिस्थितियो के नवीन बोध ने इस घूँटी को भी प्रभा-वहीन कर दिया है।

प्राचीन और नवीन का यह सघर्ष सभी समाजो मे और जीवन के सभी क्षेत्रो मे चल रहा है। किन्तु, भारतीय समाज की विशिष्ट परिस्थितियो मे वह विशेष कटुता भी लेता जा रहा है। यही कारण है कि जब तब वह एक अशोभन रूप मे प्रगट हो उठता है। इसी मानसिक विचार-भूमि मे देश के तरुण-वर्ग को अपने समाज एव सस्कृति की ओर से न तो कोई समाधान मिलता है और न दिशा-निर्देश ही। इसके कारण कई हो सकते है, पर वे जो कुछ भी हो, उनका एक परिणाम यह अवश्य हुआ है कि तरुण-वर्ग पाश्चात्य समाज एव सस्कृति की ओर झुक गया है। वहा की वैचारिक और आचारिक स्वतत्रता हमारे युवको को न केवल प्रभावित करती है, वरन् उन्हे आदर्श जान पडती है। भारतीय युवक उनके आचार-विचारो, व्यवहार और परम्पराओ का अनुकरण कर अपने को धन्य मानते हैं। वस्तुत स्वतन्त्र भारत की यह सबसे दु खद विडम्बना है कि भारतीय युवक के व्यक्तित्व और चरित्र का निर्माण अभी भी पाश्चात्य सस्कारो मे ही होता है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश मे भौतिक हितो को बढाने की दिशा मे तो तेजी से काम चल निकला, किन्तु वैचारिक क्षेत्र मे प्रगति अत्यन्त मन्द रही। पुरानी मान्यताओ, धार्मिक रूढियो तथा सामाजिक व्यवस्थाओ को समय की माग के सदर्भ मे देखा-परखा गया और जो अनुपयुक्त जान पडे उन्हे निकाल फेंका गया। जीवन के आधारभूत मूल्यो और नैतिक धारणाओ मे भी फेर बदल करना आवश्यक मालूम पडा और यहा भी अव्यवहारिक तत्त्वो को दूर करने मे देर नही की गई। पर जितनी सरलता से अव्यवहारिक और अनुपयुक्त तत्त्वो की छानबीन कर उन्हें दूर करने का कार्य हो सका, उससे कई गुना अधिक कठिन उसका स्थान लेने योग्य तत्त्वो की खोज का काम सिद्ध हुआ। हम इस कार्य मे अभी तक सन्तोषजनक प्रगति नही कर पाए हैं।

इन परिस्थितियो के फलस्वरूप, हमारे व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन मे असन्तुलन आ गया है। भौतिक हितो की वृद्धि तो हुई है, लेकिन वैचारिक क्षेत्र मे रिक्तता आ गई है, आस्थाओ के अभाव मे अस्थिरता है। भटकाव, दिशाहीनता, निराशा और असन्तोष जीवन में भर गए हैं। यान्त्रिकता बढ चली है और जीवन का अर्थ और लक्ष्य हम समझ ही नही पा रहे हैं।

इस त्रासपूर्ण अवस्था से उबरने का एक मात्र मार्ग है—वैचारिक रिक्तता को दूर कर सन्तुलन लाया जाय। यह तभी सभव है जबकि हम युग की आवश्यकताओ के अनुरूप नई अस्थाओ और मूल्यो को खोज सकें। सामाजिक व्यवस्था उन्हें अगीकार कर ले, वे जीवन-प्रणाली को पुष्ट करें, तभी यह असन्तुलन दूर हो सकता है।

युवको में व्याप्त असन्तोष को युवको को ही दूर भी करना पडेगा। पुरानी पीढी इसके लिए असमर्थ है। यदि वह इस कार्य को करने मे समर्थ होती तो समय रहते ही कर डालती और यह त्रासदायक स्थिति उत्पन्न ही न हो पाती। अत उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। यह कार्य देश के युवको को ही करना है। नए समाज के निर्माण का दायित्व भावी पीढी को ही लेना पडेगा।

सामाजिक दायित्व निभाने के सन्दर्भ मे युवकों की योग्यता व सामर्थ्य का प्रश्न हमे शिक्षा एव उससे सम्वन्वित समस्याओ पर ले आता है। शिक्षा ही आज और कल के बीच की कडी है। इस दृष्टिकोण से हमारी शैक्षणिक व्यवस्था में अनेक दोष हैं। यह किसी से छिपा नहीं है।

हमारी शिक्षण-सस्थाओं की कितनी दयनीय अवस्था है, यह एक पत्रकार की उक्ति से प्रकट है, जिसमे वह इन्हें ऐसी सस्थाएँ कहता है—"जहा आचार—स्खलित व्यक्ति कुण्ठाग्रस्त युवको को पढाते हैं।" (Where the demoraliged teach the disgruntted ("स्टेट्समैन" में प्रकाशित विद्यार्थी अनुशासन पर चचल सरकार की लेखमाला के एक लेख का शीर्षक)। इस उक्ति मे एक अत्यन्त अप्रिय सत्य का उद्घाटन है, किन्तु उसमें सकेत है शैक्षणिक सस्थाओं मे व्याप्त अनुशासनहीनता और अव्यवस्था के मूल कारण की ओर। शिक्षा के क्षेत्र की वास्तविक बुराई तो शिक्षक एवं शिक्षार्थियों की असतुलित मानसिक अवस्था है। शिक्षक अनास्थाहीन हैं अपने कर्म मे, अध्यापन-कार्य तो केवल जीविकोपार्जन के लिए साधन है, अत दैनिक कार्यवत् अनिवार्यतया किया जाता है। ज्ञान के अर्जन तथा प्रसार मे उसकी रुचि नही के बरावर है। आचरण का स्तर भी शिक्षको में बहुत ऊँचा नही है। दूसरी ओर विद्यार्थी-वर्ग अपनी भावनाओ की अभिव्यक्ति और आकाक्षाओ की पूर्त्ति कर पाने का वातावरण शिक्षालयो मे नही देखता, लेकिन पढना है इसलिए विद्यालयों मे जाने के लिए और भी विवश हैं। एक विफलता, निराशा और विरक्ति की भावना उसमे घर कर गई है। ऐसी मन स्थितियों मे दी और ली गई शिक्षा की उपयोगिता अवश्य ही सदिग्ध है।

शिक्षा मे सुधार के लिए-प्रयत्न किये गये हैं । इन प्रयत्नो मे आशा के अनुरूप सफलता नही मिली है । इसका कारण यह रहा है कि हम केवल बाह्य परिस्थितियो के सुधार की ओर ही ध्यान देते रहे हैं । जैसे कि शिक्षण-सस्थाओ मे प्रशासनिक सुधार, शिक्षको के वेतनमानो मे वृद्धि, परीक्षा-प्रणाली मे परिवर्तन, विद्यार्थियो के लिए अतिरिक्त सुविधाएँ आदि । ये सब आवश्यक तो हैं, किन्तु पर्याप्त नही । वास्तविक सुधार तो शिक्षक और शिक्षार्थियो की मनोवृत्ति मे अपेक्षित है । जब तक एक वैचारिक क्रान्ति नही होती, मनोवृत्तियो में परिवर्तन नही आ जाता, तब तक अनुशासनहीनता और सामाजिक अव्यवस्था को दूर करने की आशा मरीचिकावत् ही सिद्ध होगी ।

शिक्षा के क्षेत्र की केन्द्रीय समस्या अनुशासनहीनता की है । जहा इस सम्बन्ध मे दो मत नही है, वहा इस अनुशासनहीनता के कारण के सम्बन्ध में कोई एक मत नही है । इन कारणो की जब खोज की जाती है तो एक विचित्र परिस्थिति बन जाती है । शिक्षण-सस्थाएँ कहती हैं कि विद्यार्थी अपरिपक्व हैं, इसलिए नादानी करते हैं । शासकीय व्यवस्था उनकी कार्य-प्रणाली मे बाधा डालती है और उन्हे स्वत: कोई स्वतन्त्र कार्य-पद्धति नहीं अपनाने देती है । विद्यार्थी समझता है कि शिक्षक अयोग्य है, पढाते नही । परीक्षा-प्रणाली सर्वथा दूषित है । शासन की ओर से कहा जाता है कि विद्यार्थी उसकी नरमी का नाजायज़ लाभ उठाने लगे हैं । शिक्षक अपने दायित्व को ठीक तरह से नही निभाते । पिछले एकाध वर्ष के दौरान होने वाली घटनाओं के लिए शासन ने मुख्य रूप से विरोधी राजनीतिक दलो को जिम्मेदार ठहराया है । राजनीतिक दल विद्यार्थियो को गुमराह करते हैं (इन आरोपों की प्रेरणा आम चुनाव सम्बन्धी प्रचार की आवश्यकता से थी या नही, यह विचार का विषय है) राजनीतिक दलो ने प्राय हमेशा ही शासकीय कमज़ोरी, भ्रष्टाचार, अनुपयुक्त नीतियो को इनका कारण माना है । इन सब के बीच बेचारा अभिभावक सभवतः अपनी सतान के भाग्य को दोष देता है । यह परस्पर दोषारोपण मूल समस्या का हल खोजने के प्रयासो मे बाधक हो रहा है ।

अनुशासनहीनता की समस्या के हल की दिशा मे तब तक कोई समाधान प्रस्तुत नही किया जा सकता, जब तक कि हम "अनुशासन" शब्द के अर्थ को भली भाति न समझ लें । प्राय अनुशासन से हमारा तात्पर्य नियम पालन की प्रवृत्ति तथा व्यवस्था के प्रति सम्मान से होता है । आज्ञा अथवा आदेशों का बगैर ननुनच किए पालन अनुशासन का आदर्श माना जाता है । सैनिक अनुशासन का यही मूल तत्त्व होता है ।

पर, हमारी ये आशाएँ वास्तविक तथ्यों से सामजस्य नही रखती। हम भूल जाते हैं बीसवी सदी की परिस्थितियो और आवश्यकताओ को। विज्ञान और राजनीति ने आज के मनुष्य को एक नए धरातल पर ला खडा किया है, उसे एक नवीन जीवन-दृष्टि प्रदान की है। सामाजिक व्यवस्था के क्षेत्र मे इसके फलस्वरुप 'कानून कानून है' अथवा 'नियम के लिये नियम' यह मान्यता पुरानी और अनुपयुक्त मानी जाने लगी है। उसका स्थान 'नियम अथवा कानून मनुष्य के लिए' इस धारणा ने ले लिया है। नियम की सर्वोच्चता स्वीकार करना मनुष्य की गरिमा और स्वतन्त्रता का अपहरण है।

आज के युवको में अनुशासन के अप्रिय होने का एक कारण 'अनुशासन शब्द से आने वाली शासित अथवा ताडित किये जाने की ध्वनि भी है। अनुशासन से पावन्दियो का बोध होता है, बन्धन का भाव झलकता है। इसीलिए नई पीढी जो एक स्वतन्त्र देश की सन्तान है, बन्धनो की परछाई भी अपने पास नही फटकने देना चाहती।,

अत शक्ति का प्रयोग और दण्ड की व्यवस्था जिस अनुशासन के अनिवार्य तत्त्व थे, वह अब पुराना पड़ चुका है। आज के समाज की आवश्यकताओ के सन्दर्भ मे वह अनुपयुक्त है। लेकिन, इसका विकल्प अनुशासन का सर्वथा अभाव अथवा स्वच्छन्दता नहीं है। शक्तिमूलक अनुशासन का विकल्प ज्ञानमूलक अनुशासन है। यह ज्ञानमूलक अनुशासन ही सदाचार का प्रेरक है एव चरित्र-निर्माण मे सहायक है। सुकरात ने इसी अर्थ मे ज्ञान को सदाचार कहा है। (Knowledge is Virtue)—सदाचार का अतरग तत्त्व इस दृष्टिकोण से आचरण की मर्यादाओ का सम्यक् बोध है। शक्तिमूलक अनुशासन भय की भावना को जन्म देता है और उससे प्रेरित व्यवहार व्यवस्थानुकूल होने पर भी, नैतिक आचरण की श्रेणी में रखने योग्य नहीं होता। अनुशासन तत्त्वत आत्म-सयमन है।

एक भ्रामक धारणा, जो विशेष रूप से युवको में फैली हुई है कि प्रचलित शक्तिमूलक अनुशासन भारतीय संस्कृति से उद्‌भूत है, किन्तु यह धारणा सर्वथा निर्मूल है। वस्तुत अनुशासन का यह रूप जिसके प्रति युवकों के मन मे आक्रोश है, विदेशी शासन की देन है। इसकी भारतीय सास्कृतिक परम्परा से कोई सगति नही है। भारतीय चिन्तक आत्मा को देखने और जानने के लिये आत्मा और केवल आत्मा के नियत्रण और निर्देश मानने के लिए कहते हैं।

स्वावलम्वन अथवा आत्म-सयमन के अर्थ मे अनुशासन को स्वीकार करने पर, व्यक्तिगत जीवन एव सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकताओ के अनुकूल युवको का चरित्र-निर्माण सभव है। सदाचार का सम्बन्ध आत्म-ज्ञान से है। आत्म-ज्ञान शब्द का प्रयोग यहा उसके गूढ दार्शनिक अर्थ मे नही किया गया है। लेकिन, उससे तात्पर्य अपनी प्रतिमा एव शक्ति को पहचानने से है। इन्हे पहचान कर ही व्यक्तित्व के समुचित विकास की दिशा मे प्रयत्न किया जा सकता है। आज की शिक्षा-व्यवस्था की सबसे बडी कमजोरी यही है कि वह युवको को स्वावलम्वी नही बनाती और जब उनमे स्वावलम्वन नहीं है, तो फिर अनुशासन तथा सयम उनमे कहा से आ सकता है? अत. समाज के भावी कल्याण के दृष्टिकोण से शिक्षा के क्षेत्र मे ऐसे प्रयत्न होने चाहिए, जो कि शिक्षार्थियो को अनुशासन-प्रिय बनाएँ।

दार्शनिक प्लेटो ने कहा था कि विवेक का तिरस्कार करने की प्रवृत्ति मनुष्य का सबसे दुर्भाग्यपूर्ण अभिशाप है। आज का भारतीय समाज इसी अभिशाप से ग्रस्त है। अविवेकपूर्ण प्रवृत्तिया निरन्तर बढ रही हैं। इसीलिए पाश्चात्य विचारक, अहिंसक भारतीय समाज मे हिंसात्मक घटनाओ की वृद्धि, शान्ति और समन्वय की नीति का अनुसरण करने वालो मे अशान्ति को देख-कर आश्चर्यचकित हैं इन्हे वे एक अव्यावहारिक सस्कृति में पडने वाली दरारें मानते हैं। जो कि बढकर समाज को ध्वस्त कर सकती है। मेरा विचार है कि भावी पीढी का स्वावलम्वन और अनुशासन ही समाज को उसके अभि-शाप एव आशकित दुष्परिणाम से मुक्त कर नव-निर्माण की ओर लेजा सकता है।

●

दर्शन विभाग, बी आई. टी. एस ,
पिलानी, (राजस्थान)

क्या छात्र–आन्दोलन के लिए हम जिम्मेदार नहीं हैं ?

•

प्रभाकर माचवे

देश व्यापी बीमारी

आज अखबार में पढने को मिलता है कि आज छात्रो ने उपवास किया, कल बसें जला दी, परसो प्रिंसीपल को हटाने की माग की, नरसो रजिस्ट्रार और नये उपकुलपति के बीच के सम्पर्क टेलीफोन काट दिये। कही ट्रेन रोक ली, कहीं पथराव किया, कही पुलिस और छात्र के बीच बाकायदा खानाजगी शुरु हो गयी। यह सब हमारे महान् देश मे सहसा क्यो घटित हो रहा है ? क्या यह हमारे सामाजिक जीवन का कुछ विष है, जो विविध रूपों में फूट पड रहा है ? इसके लिए क्या छात्र ही जिम्मेदार व दोषी हैं, या उनके पीछे कोई बाहरी शक्तिया हैं ?

कारण-मीमासा

(अ) मानवीय या मनोवैज्ञानिक शिक्षा की आज हमारे देश में जो पिरामिड जैसी व्यवस्था है, उसमे सबसे ऊपर है सरकार। शिक्षा प्रादेशिक विषय है, केन्द्रीय नियत्रण बहुत थोडा है। फिर आते हैं विश्वविद्यालय—यानी उपकुलपति और उनके अन्तर्गत कई कालेजो के मुख्याध्यापक, प्रिंसिपल, रजिस्ट्रार आदि। फिर हैं गुरुजन, प्राध्यापक, शिक्षक आदि। सबसे अन्त मे आते हैं विद्यार्थी या छात्र, जिनके आधार फिर हैं पालक या माता-पिता। इस प्रकार से मन्त्री या शिक्षा–विभाग के अधिकारी से लगाकर सामान्य नागरिक तक इस सारी गैर जिम्मेदारी या अराजकता का उत्तरदायित्व प्राय. सभी प्रकार के व्यक्तियो को उठाना होगा। छात्र उस सारे सरजाम मे अष्टकोण के केवल एक कोण हैं। इतने सब मानवो का मन पहले देखना होगा।

(आ) अमूर्त या समाज–वैधानिक मन को बनाने वाली जो विचार-धारायें, जो मत विश्वास, जो आस्थाए, आकाक्षाए आदि होती हैं, उनका समजशास्त्रीय विश्लेषण आवश्यक है। हमारे राष्ट्र-शरीर मे बिंधी हुई जाति-

वाद, प्रदेशवाद, भाषावाद जैसी बीमारिया शिक्षा-क्षेत्र मे पहुँच गयी है। भ्रष्टाचार के अनेक रूप—भाई-भतीजावाद, रिश्वतखोरी, नौकरशाही अमानवीयता शिक्षालय मे पहुच गये हैं। और ऐसी चरम सीमा तक पहुचे हैं कि शायद छात्र और उनके नेताजन यह अनुभव करते हैं कि उनकी बातें बिना हिंसक और व्यापक आंदोलन के कोई सुनेगा नही। यह विश्वव्यापी असतोष है, जो नवीनतम पीढी पुरानी पीढी के प्रति अनुभव करती है।

जब हम छात्र थे

क्या यह समस्या एकदम नयी है ? कुछ लोग कहते हैं कि आन्दोलन करने की सीख तो गांधीजी के जमाने से, राष्ट्रीय सग्राम के युग से ही हमारे नेताओ ने दी थी। पर मेरी अपनी याद है, बारह वर्ष स्कूल और कॉलेज मे एम० ए० तक छात्र रहा—रतलाम, इन्दौर, आगरा मे १६२६ से १६३७ तक, और ग्यारह वर्ष अध्यापक रहा उज्जैन मे, १६३७ से १६४८ तक एक कॉलेज मे—आन्दोलन का रूप इस तरह से नहीं था। सन् ३० और ४० और ४२ के आन्दोलन मुझे याद हैं। सन् ३४ की काग्रेस मे मै छात्र-कार्यकर्त्ता के नाते बम्बई गया था—काग्रेस समाजवादी दल की प्रथम सभा मे सम्मिलित हुआ था। पर तब परिस्थिति दूसरी थी। सत्ता विदेशी थी और छात्र-सघ इस प्रकार से विभाजित नही थे।

तब गुरू भी कैसे थे ?

और हमारे जमाने मे उपकुलपति कैसे होते थे : आचार्य नरेन्द्रदेव लखनऊ मे, डाक्टर राधाकृष्णन् बनारस मे, आचार्य अमरनाथ झा इलाहाबाद मे। विश्वविद्यालयो की सख्या सीमित थी। आज की तरह ७० नहीं। विज्ञान मे जे० सी० बोस, मेघनाथ साहा, बीरबल साहनी थे। और एक एक अध्यापक भी ऐसा था कि उसके लिए छात्रों के मन मे अपार श्रद्धा थी। तब काशी विद्यापीठ मे सम्पूर्णानन्द और डॉ० केसकर अध्यापक थे। पूना मे धोंधों केशव कर्वे थे। जामियामिलिया मे डॉ० जाकिर हुसैन थे। आज कितने उपकुलपति, अन्तरराष्ट्रीय छोड दें, अखिल भारतीय ख्याति के भी हैं ? और कितने प्राध्यापक ऐसे हैं, जिनकी सलाह विशेषज्ञ के नाते सरकार लेना चाहेगी ?

तब के छात्र-आन्दोलनो की प्रेरणा

तब भी—यानी आज से तीस वर्ष पूर्व स्वराज्य से पहले छात्र-आदोलन होते थे। पर वे आज की तरह अधे गुस्से से भरे हुए नहीं होते थे। तब आदोलन होते थे गाधीजी की पुकार पर असहयोग के, अहिंसक आन्दोलन। जिनमें

नुकसान उठाना पडता था छात्रों को। प्रेरणा थी त्याग, वलिदान की। परतंत्र राष्ट्र को स्वतत्र वनाने के लिए लाठी खाना, जेल जाना, झडा चढाते हुए बिहार के छात्रों पर गोली चली। हेमू कालानी विदेशी कपडे की मोटर के आगे अपनी प्राणाहुति दे वैठा। तब जवाहरलाल, सुभाष, सावरकर या सहजानद जैसे नेता छात्रों के सामने थे। सरोजिनी नायडू जैसी वक्तृताकुशल विदुषिया थी, श्यामाप्रसाद मुखर्जी जैसे ससद मे दहाड़ने वाले थे। परन्तु वह सव स्वप्नवत है। यह नयी पीढी तो ऐसी आई है, जिसमे से कइयों ने गांधी तक का नाम नही सुना है।

अवके छात्र-आन्दोलनो के हेतु

अव छात्र-आन्दोलनो के कारण इतने हलके और कही कही हास्यास्पद होते हैं कि उनकी क्या चर्चा कीजिए। मसलन पर्चा मुश्किल है, हडताल करो। परीक्षा मे 'इन्विजिलेटर' (निरीक्षक) सख्त है, उन पर स्याही फेंको। सुना कि कलकत्ते मे परीक्षा-मडपो मे कोई अध्यापक निरीक्षण-कार्य करने को तैयार नहीं। सिनेमा के टिकट क्यो नहीं मिले—जलाओ सिनेमा घरो को। ट्रेन मे विना टिकट सफर क्यो नही करने देते-खीचो चेन। अमुक—अमुक प्रिंसीपल पसन्द नही—करो आन्दोलन। यह सिलसिला इतनी दूर तक चला कि दक्षिण मे हिन्दी-विरोधी आन्दोलनो मे उग्र रूप से छात्रों ने गत वर्ष भाग लिया। और अव भी एक राज्य मे इस्पात कारखाना क्यों नही वनता है, इस वात को लेकर यातायात ठप्प करने पर छात्र तुले हैं। स्पष्ट है कि छात्रो को पता नहीं है कि उनका उपयोग किस वेदर्दी के साथ किया जा रहा है।

राजनैतिक पक्षो की अधी उत्तेजना

इन छात्र-आन्दोलनो के पीछे असतुष्ट जनता, आर्थिक कष्ट से पीड़ित पालक कुंठित सरकारी अमला और कतिपय हिंसा मे विश्वास रखने वाली और कुछ न कुछ वडे पैमाने पर उलट-फेर या उठा-पटक करने को ही अपना कार्यक्रम माननेवाली राजनीतिक सगठन-संचालित सस्याएँ, दल या गुट हैं। वे सव छात्रों का उपयोग आज 'तोप के चारे' की तरह कर रही हैं। वे भूलती हैं कि यह भस्मासुर किसी न किसी दिन प्रेरणास्रोतो के लिए ही प्राण-संहारक वन जायगा। यह सव हिंसा-प्रेरणा एक तरह की 'वुमरेंग' है—एक ऐसा अस्त्र जो उलटकर छोडने वाले को ही मारने के लिए लौट आता है।

ज्यों-ज्यो चुनाव करीव आते हैं, राजनीतिक पक्ष समझते हैं कि वे छात्रो को इस प्रकार से आगे करके अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेंगे। परन्तु यह हिंसा की आग एकदम अविचार और अविवेक पर आश्रित है। वह अन्धी है।

वह फैलेगी तो सबको ही लील जायेगी। छात्र तो समाज का सर्वोत्तम अग है। जो कुमार और किशोर आगे चलकर हमारे विचार-नेता बनेंगे, प्रशासक, सैनिक, सुरक्षा के प्रहरी, वैज्ञानिक, आविष्कारक, व्यापारी आदि बनेंगे, उनके ही कोमल मन मे अबसे यह ज़हर बो दिया गया—गैर-जिम्मेदारी आचरण, कानून को बेजवह तोडने का बीज बो दिया गया तो आगे क्या होगा ?

छात्र क्या करें ?

ऐसी स्थिति मे केवल यह उपदेश देना कि छात्र राजनीति से बचें या दूर रहे काफ़ी नही है। बल्कि मैं तो यह कहूँगा कि छात्र हमारे साधारण नागरिको की भाति सभी राजनीतिक दलो से प्राय ऊब गये हैं। उन्हें आगे कोई राह नही दिखाई दे रही है। उसीका परिणाम है कि वे इस प्रकार से सगठित रूप से हिंसा पर उतारू हैं। 'बदनाम भी होंगे तो क्या नाम नही होगा' वाली उनकी वृत्ति है। एक प्रकार की दमित, प्रदर्शन-प्रियता—'येनकेन प्रकारेण' प्रसिद्ध होने की चाह है उनमे। छात्रो को चाहिये कि वे अपनी अतिरिक्त शक्ति को रचनात्मक कार्यों मे लगायें। राष्ट्र-निर्माण के समाज-सुधार के कामो मे —जब इतनी दूर के विदेशी छात्र 'शाति सेना' (पीस कोअर) के रूप मे यहा आकर सेवा कर सकते हैं, तो हमारे छात्र क्या इतने निकम्मे हैं या पिछड़े हैं कि उनकी शक्ति का कोई सही उपयोग न हो ?

अध्यापक क्या करे ?

इस सन्दर्भ मे भूतपूर्व सास्कृतिक मत्री हुमायुँ कबिर ने एक पुस्तिका, जो 'छात्रों की अनुशासनहीनता' पर लिखी थी, उसमे अध्यापको पर दोष लगाया गया था, वह बात याद आती है। शिक्षको के वेतन बहुत कम हैं। उनमे से कई टेक्स्ट-बुकें लिखकर, ट्यूशनें करके गुजारा कर रहे हैं। कई राजनीति मे पड जाते हैं। वे अपना असन्तोष तरुण और कुमार पीढी पर थोपते जाते हैं, और कई स्थानो पर यह भी पता चला कि छात्रों के गुप्त सगठनो के पीछे अध्यापको का खुला प्रोत्साहन, पैसा और उनकी मागों के पत्रको की भाषा तक मे योग पाया गया। यानी छात्र और उनके गुरु दोनो ही असामाजिक तत्त्वो के हाथो की कठपुतली बनते जाते हैं। यह दुखद स्थिति है। उनमे नैतिकता और प्रामाणिकता शेष है, तो वे इस प्रकार से शोषित होने से अपने-आपको बचायें। उन्हे नयी पीढी को नैतिक दिशा-निर्देशन करना है।

शिक्षा-सस्थाओ के सचालक क्या करें ?

शिक्षा-सस्थाओं के मुख्याधिपति, प्रशासक आदि को अधिक धैर्य, सहिष्णुता, सहारे और उदारता से काम लेना चाहिए। उन्हें छात्रो को या अध्यापकों को अपना शत्रु नहीं मानना चाहिए। शिक्षालयो के आहतों में पुलिस को बुलाकर अपने निजी ईर्ष्या-द्वेष नहीं भुना लेने चाहिए। कई बार अध्यापको मे दो दल निर्माण करके, उन्हें सदा लडाते रखने मे शिक्षा-संस्था सचालक अपनी वडी विजय और टुच्ची या क्षुद्र नौकरशाही सफलता मानते हैं। इस वृत्ति मे से ही वहुत सी वातें वढती हैं—छात्रो की मांगो का सहज निराकरण हो सकता है, उन्हें मानने के लिए पहले कई दिनों का उपवास या लाखो की सपत्ति की तोड़-फोड़ क्यो जरूरी है ?

सामान्य नागरिक क्या करें ?

आज देश जिस नाजुक दौर मे से गुजर रहा है, खास तौर से वह आर्थिक और राजनीतिक (वाह्य शत्रुओ के आक्रमण और देश के भीतर अन्तरिक कलह पैदा करके देश को कमजोर वनाने की चाल) खतरों से गुजर रहा है, ऐसी स्थिति मे अभिभावको को चाहिए कि वे अपने वच्चो को इन खतरो से अवगत करें। वह उन्हें समझायेंगे कि हर वच्चे का गलत कदम कितनी दूर तक देश के लिए व्यापक अर्थ में सकटकारक हो सकता है। आज सीमावर्ती प्रदेशों मे गडवडी फैलती है, तो उसका नुकसान सारे राष्ट्र को भुगतना पडता है। अत. छात्रों को ऐसे सब हिंसाश्रित दलो और पक्षो से दूर रखने मे पालक, माता-पिता, प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य हो जाता है। आज रेल का स्टेशन लूटा, कल डाकखाना, परसों सरकारी कोश और कुछ दिन बाद पता चले कि लूटनेवाले विदेशी जासूस थे, तो ? लेकिन तव तक शायद वहुत देर हो चुकी होगी और चाहने पर भी कदम वापस न लौट सकेंगे।

कुछ विधायक उपाय

इसलिए कुछ रचनात्मक उपाय इस प्रकार हैं—जैसे मजदूर-मालिक-सरकार ने मिलकर समझौता किया कि देश में सुरक्षा के लिए उत्पादन आवश्यक है, और उस कारण से कोई भी हडताल नहीं करेगा। वैसे ही छात्र-अध्यापक, अभिभावक-प्रशासकों का एक समझौता होना चाहिए। साथ ही उचित शिकायतें (छात्रों की या अध्यापकों की) दूर करने के लिए शीघ्रातिशीघ्र लोकायुक्त की तरह शिक्षायुक्त नियुक्त होने चाहिए। दूसरी वात, छात्रों की छुट्टियां कम करनी चाहिए—उनके लिए वाहन की उचित

व्यवस्था होनी चाहिए—ग्रन्थालय रात तक खुले रहने चाहिए—बोर्डिंग और छात्रावासो मे खेल और मनोरंजन के बेहतर साधन देने चाहिए, 'मेसों' मे खाना बेहतर मिलना चाहिए, छात्रो के लिए अन्य कई प्रकार के कला-दस्कारी, बागवानी आदि सिखाने के उपाय होने चाहिए, जो समाजोपयोगी और अर्थोत्पादक भी हो। छात्रो की सहकारी दुकानें होनी चाहिए। छात्रो द्वारा चलाये जाने वाले छोटे-छोटे रेडियो-स्टेशन, रगमच, टेलीविजन-केन्द्र होने चाहिए।

विदेशी विश्व-विद्यालयो के अनुभव

यह सब, और अन्य अनेक प्रकार के साधन मैने विदेशी विश्वविद्यालयो मे देखे हैं। अमरीका मे भी दो वर्ष तक पढाता रहा, १९५९ से१९६१ तक, दो विश्वविद्यालयो मे, एक दिन भी कोई हडताल नही हुई। नीग्रो विद्यार्थियो का समर्थन वाला जलूस और सभा बिना शोर-गुल के शान्तिपूर्वक होती थी। कोई हिंसा नही, कोई कटुता नही। वहा विद्यार्थियो के लिए सैकडों मार्ग हैं, अपनी शक्ति और फुरसत को अच्छे काम मे लगाने के—तैरने को तालाब है, नाव चलाने को घाट हैं, सगीत शालाएँ है, शिल्पशालाएँ है, मिट्टी के बर्तन बनाने हो तो सारा सरजाम तैयार है, सब तरह के यन्त्रो का चालन सिखाने के साधन है, वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ है, उनके अपने अखबार है, मच है, रेडियो हैं, यहा तक कि छात्र-सचालित दुकानें हैं, सैलुन हैं, भोजनागृह है। ऐसा ही कुछ हमारे यहा भी करना होगा। विद्यार्थी को शिक्षा-सचालन मे उसका उचित स्थान और हिस्सा देना होगा।

अनुशासन का मूल

शासन शब्द का मूल ही अन्तर्गत नियन्त्रण से सम्बद्ध है। जब छात्रो मे या छात्रो से अनुशासन की माग हम प्रौढ या बडे लोग करते हैं, तो पहले अपने आपसे हम पूछें कि हम कितने अनुशासित हैं? यदि हम स्वय आलसी हैं, तो दूसरो से फुर्ती और चुस्ती की आशा करने का हमे क्या अधिकार है? आखिर आज के छात्र, हमारी पीढी के लोगो की ही उपज है। स्वराज्य के बाद यदि अवसरवादिता, आपा-धापी, स्वार्थ-पोषण हममे बढ गया है तो तरुण पीढी का उसके प्रति विद्रोह कुछ मात्रा तक समझ मे आता है। वह वैध और जायज है। परन्तु जिन साधनो का वे उपयोग कर हैं, वे उनके सदुद्देश्य के लिए घातक हैं। अत निंद्य हैं। हर अनुशासन भीतर से उपजेगा, बाहर से नही लादा जा सकेगा। छात्र से कुछ भी मांगने से पहले,

हमे स्वय अनुशासनपूर्ण होना होगा। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' वाली कहावत यहा नही चलेगी। वह पाडित्य अब पुराना पड गया। अब तो तुकाराम ने कहा वैसे 'पहले किया ! फिर कहा !!' (आधी केले, मग सागितले !!) चाहिए। आचार-उच्चार समवाय।

●

सहायक सचिव,
साहित्य अकादमी, नई दिल्ली—१.

एक उद्वेलित पीढ़ी

कृष्णवीर द्रोण

विद्यार्थी–ग्रान्दोलन स्वतन्त्र भारत की एक और पीडा जनक दुर्घटना है। पुलिस-विद्यार्थी मोर्चा, पथराव, लाठी-चार्ज और अग्नि-वर्षा—भारत का अधिकाश भाग इस दुर्घटना से घायल हो गया। छात्र-ग्रान्दोलन हमारे देश मे ही नही, सारे विश्व मे व्याप्त है। अत यहाँ सारे विश्व–व्यापी छात्र-ग्रान्दोलन पर एक दृष्टि डालना असमीचीन न होगा। विश्व के लगभग सभी देश इस बढते हुये छात्र–असन्तोष से आक्रात हैं। फ्राँस, अमरीका, कनाडा, ग्रास्ट्रेलिया, ब्रिटेन, जर्मनी, इटली के अतिरिक्त ब्राजील, मिश्र, चीन, इन्दोनेशिया, जापान इत्यादि देशो मे यह ग्रान्दोलन अपना विकराल रूप धारण कर रहा है। छात्र इन ग्रान्दोलनो की प्रेरणा देश-विदेश के क्रातिकारियो और विचारको से लेते हैं। लेंटिन अमरीका के मृत क्रातिकारी नेता चे गुवेरा, केलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्राध्यापक हर्बर्ट मार्क्यूज जैसे अन्य व्यक्ति विद्यार्थियो मे क्रान्ति-देवता के रूप मे पूजित हो रहे हैं। समस्त योरोप अपने छात्र-ग्रादोलनों मे यही नारा बुलन्द करता है—"मार्क्स मसीहा, मार्क्यूज व्याख्याकार और माग्रो तलवार।"

अभी कुछ समय पूर्व ही पश्चिम बर्लिन की "फ्री यूनीवर्सिटी" के छात्र रूडी डूतशके ने अपने गुरु मार्क्यूज़ के क्रान्ति-दर्शन से अनुप्राणित होकर पश्चिम जर्मनी मे एक ज़बरदस्त जलज़ला उठा दिया। गत मई मास मे फ्राँस मे भी इसी प्रकार उग्रपथी छात्र-नेता डेनियल कोहन बैंदी (जिसे छात्र प्यार से 'लाल डेनी' पुकारते हैं) ने फ्राँस मे नेपोलियन के युग से चली आयी रूढिवादी एव असामयिक शिक्षा-व्यवस्था को समाप्त करने तथा देश मे समाजवादी शक्तियो की स्थापना के लिये इतना भयकर तूफान खडा कर दिया कि राष्ट्रपति जनरल दगाल का हठी सिंहासन भी एक बार तो डगमगाने लगा और उन्हे विवश होकर फ्राँस मे नये चुनाव कराने पडे। इस विशाल छात्र-शक्ति के समक्ष चेकोस्लोवाकिया के तानाशाह नोवोत्नी एव इन्दोनेशिया के राष्ट्रपति डॉ० सुकार्नो को भी अपदस्त होना पडा। अलग-अलग देशों मे इस

छात्र-आन्दोलन के अलग-अलग तत्कालीन कारण हो सकते हैं, जैसे साम्यवादी देश पोलैण्ड तथा चेकोस्लोवाकिया मे विचार-स्वातन्त्र्य एव सामाजिक-बन्धन से मुक्ति, फासिस्ट देश स्पेन मे समस्त व्यवस्था को बदलने तथा अमरीका मे वियतनाम युद्ध तथा रग-भेद जैसे कारणो को लेकर उग्र आन्दोलन होते रहे हैं। छात्रो को अपनी बढती हुई सख्या-शक्ति का अनुमान हो गया है।

आज के युवक की यह धारणा पुष्ट हो चुकी है कि राज्य-व्यवस्था कैसी भी क्यो न हो—पूँजीवादी, प्रजातन्त्रवादी, साम्यवादी अथवा फासिस्टवादी—इससे कोई मौलिक अन्तर नही पडता। मूल प्रश्न तो यह है कि सिद्धान्तो, पद्धतियो और आदेशो के नाम पर समस्त शक्ति एव सुविधायें कुछ चतुर राजनीतिज्ञो के हाथ मे सिमट कर रह गयी हैं और शेष लोग मजबूरी एव नगण्यता की पराजय भोग रहे हैं। इस स्थिति मे स्वाभाविक है कि युवक-मन विक्षुब्ध हो उठे।

युवक मन की वर्तमान क्षुब्धता तथा सत्य, न्याय और स्वतन्त्रता की उसकी माँग आज की नवीन वस्तु नही है। सुकरात ने भी कहा है कि नौजवान जन्मजात ही असत्य, अन्याय और सत्ता का विरोध करता है। रूसो के "बन्धन-हीन प्राकृतिक राज्य" की कल्पना में भी स्वातन्त्र्य-भावना की इस परम्परा को खोजा जा सकता है। परन्तु वर्तमान युग के नवीन सन्दर्भो मे हमें इसे एक प्रथक दृष्टि से देखना होगा। विज्ञान तथा प्रावधिकी की प्रगति ने परम्परागत मूल्यो को ध्वस्त कर दिया है, परन्तु इस रिक्तता के स्थान पर नवीन मूल्य नये समाज की आवश्यकतानुसार स्थापित नही हो पाये हैं। मूल्यहीनता की इस भयावह परिस्थिति मे व्यक्ति दिशाहीन तथा आस्थाहीन हो गया है। गत दो महायुद्धो ने भी विश्व के चेतम मस्तिष्क मे हमारी इस समस्त सभ्यता और सस्कृति के आगे गम्भीर प्रश्न-चिन्ह लगा दिया है। मशीन के खु खार दाँतो के बीच व्यक्ति अनवरत उधेडा जा रहा है। सगठित-व्यवस्था और भीड की सीमाओ, वर्जनाओ तथा निषेधो के मध्य अकेला, अपमानित सा व्यक्ति घायल और पराजित हो एक मर्मान्तिक पीडा को भोग रहा है। भीडवाद के आधुनिक कौशल ने चमत्कारिक औषधियो (ड्रग्स) एव बुद्धि-रूपान्तरण (ब्रेन-वाशिग) की प्रक्रियाओं के द्वारा एक बौना सस्कृति की प्रसव-पीडा को जाग्रत किया है। इस पीडा के मूल में मशीन युग का विषाणु (वायरस) चुपके से घुस गया है। आज विज्ञान की राजनीति अपने प्रयोजन-सिद्धि हेतु, प्रयोगशालाओ मे अपने ढ ग का मानव-उत्पादन करने में लगी है। इस मानव की सहजानुभूतियो, प्रजात्मक-सकल्पों, कलात्मक

एव सास्कृतिक अभिव्यजनाओं का बलात् निर्वासन कर दिया गया है और इस प्रकार व्यक्ति का जीवन एक प्रकार की वेहूदगी (Absurdity) का पर्याय बन गया है ।

मनुष्य की इस अजनवी स्थिति के परिणाम स्वरूप पश्चिम मे "अस्तित्ववादी" दर्शन का उद्‌भव हुआ है । यों तो कीर्केगार्द के "अनास्थावाद" तथा नीत्शे द्वारा "ईश्वर की मौत" से भी पूर्व अस्तित्ववादी दर्शन के सूत्र खोजे जा सकते है, परन्तु आधुनिक समय मे इस दर्शन के प्रमुख प्रवक्ता पॉल सार्त्रे, कामू तथा काफ्का इत्यादि साहित्यकार हैं, जिन्होने आज के युवक के मनो मे अनास्थावादी विद्रोह उत्पन्न करने मे योग दिया है । मार्क्स के भौतिकवादी–द्वन्द्वात्मक दर्शन, फ्रायड, एडलर और युग के मनोविज्ञान तथा डार्विन के विकासवाद ने समस्त प्राचीन मान्यताओ को अपदस्त कर दिया है । इस सबका यह परिणाम हुआ है कि आज के समस्त भुलावो, आत्म–प्रवचनाओ और दम्भो के विरोध मे अमरीका मे नाराज पीढी "बीटनिक" तथा "हिप्पी" जैसे युवक सगठनो का निर्माण कर रही है, जो सामाजिक व्यवस्था, नियम तथा नैतिकता के प्रति निषेधात्मक वृत्ति अपनाए हुए हैं । हिप्पी लोग सत्ता और राजनीति की प्रवचनाओं से अलग हो गये है, व "ड्राप आउट" कर गये हैं तथा शान्ति एव एकान्त के लिये भारत और नेपाल मे बूटी–सेवन (भाँग, गाँजा इत्यादि) करते, तथाकथित योग–साधना मे लीन होकर "सार्वभौमिक चेतना" से अपना सम्बन्ध जोडने तथा प्रेम और निजीपन की खोज करने मे व्याकुल हैं ।

यहाँ हमे इस विवाद के विस्तृत विश्लेषण मे पडने की आवश्यकता नही है, कि हमारे देश मे उत्पन्न यह "त्रासद स्थिति" क्या वास्तविक है अथवा शौकिया या सतही ? इस तथ्य के बावजूद कि भारत ने योरोप के समान दो महायुद्धो की ट्रेजेडी को नही भोगा है, यहाँ योरोपीय समाज के समान औद्योगीकरण तथा मशीनीकरण से उत्पन्न सामाजिक विषमतायें भी वैसी नही हैं और न अभी हमारा देश उन देशो जैसी वैभव-सम्पन्नता मे डूब ही पाया है । तथापि विषमतायें हमारे यहाँ भी तीव्र गति से जन्म ले रही हैं तथा कुछ को हम पाश्चात्य नकल के तौर पर बलात् हमारी सवेदनाओं मे भी प्रवेश (Infilteration) करा रहे है ।

कुछ भी हो, भारत का युवा छात्र आज अशांत, व्याकुल, बेचैन एव विपत्तिग्रस्त है । क्या यह विपत्ति अप्रत्याशित रूप से घटित हुई है ? शायद

नही। इस विपत्ति के बीज हमारी समाज-व्यवस्था मे सहज ही खोजे जा सकते हैं। एक और प्रश्न उठता है, कि क्या कारण है कि समाज-व्यवस्था का इतना द्रुतगामी तथा तीव्र प्रभाव विद्यार्थी-वर्ग पर हुआ ?

विद्यार्थी सामान्यत: एक स्वच्छ, शक्तिमान एव सवेदनशील प्राणी होता है। वह एक विकसित होती हुई ऊर्ध्वगामी प्राण-सत्ता है। बौद्धिक चेतनता को यथासम्भव समेटता हुआ, विद्यार्थी एक अभिनव क्रान्ति-वेला से गुजरता है, जो उसके जीवन मे जाज्जवल्यमान पुनर्जागरण का उप काल होती है। वह कोमल एव मृदुल कुसुम है, परन्तु फिर भी है शक्ति-पुंज। आज उसका "श्रद्धेय गुरु" खो गया है। विश्व भर का विद्यार्थी आज गुरुहीन हो गया है।

आज विद्यार्थी को अन्तर्दृष्टि कौन दे ? वस्तुत. सामाजिक पर्यावरण ही उस का 'श्रद्धेय-गुरु' है, चिर मार्ग-निर्देशक है, और सामाजिक पर्यावरण का निर्माण कौन करता है ? उत्तर है—मुख्यत. तत्कालीन शिक्षा-व्यवस्था। फिर शिक्षा की व्यवस्था कैसी हो, जो इच्छित प्रभाव उत्पन्न कर सके ? सर रिचार्ड लिविंग स्टोन के अनुसार आज हमे आधुनिक विश्व के लिए आधुनिक शिक्षा की आवश्यकता है। आधुनिकता का अर्थ है—विशेष काल-परिप्रेक्ष्य मे उत्तरोत्तर विकासमान समग्र मानवीय वैचारिक सम्पदा। आधुनिक शिक्षा समय विशेष मे जीवन की व्याख्या, मूल्य-निर्धारण तथा व्यक्ति का शेष जगत् से सामजस्य स्थापित करने की अन्तर्दृष्टि प्रदान करती है।

भारतीय सदर्भ मे, हमे आज ऐसी शिक्षा-पद्धति की अपेक्षा है, जो विद्यार्थी मे ज्ञान-सवर्द्धन, वृहत्तर सत्यो के अन्वेषण तथा सत्यासत्य मे अन्तर-भेद के उद्घाटन करने की शक्ति का सचार करे। उसमे ऐसे विवेक का उदय हो, कि वह स्वतन्त्रता तथा प्रजातान्त्रिक मूल्यो के दार्शनिक पहलुओ को आत्मसात करता हुआ, उन्हें जीवन-प्रणाली के रूप मे अगीकार कर ले। वर्तमान स्थिति को देखने के पश्चात् यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है, कि आधुनिक शिक्षा अपने निर्धारित तथ्यों की पूर्त्ति मे असफल रही है। ऐसा लगता है, कि शिक्षा और जीवन के मध्य का सूत्र ही टूट-सा गया है। एक तरफ न तो यह छात्र की वैयक्तिक माँगों की पूर्त्ति ही कर सकी है और न दूसरी तरफ स्वातन्त्र्योत्तर सक्रान्तिकालीन मूल्यो में ही सामजस्य ला सकी है। हमारी शिक्षा-नीति गुणात्मक न होकर सख्यात्मक ही रही, जिसके कारण देश-भर मे अधकचरे एव अर्द्ध-शिक्षित बेरोजगारो की लम्बी कतारें खडी हो गई हैं।

लिविंग स्टोन लिखते है, कि यद्यपि यह सही है कि अशिक्षित व्यक्ति ससार के लिए एक खतरा हैं, तथापि अर्द्ध-शिक्षित व्यक्ति, जिनके खतरे से हम अपरिचित हैं, वे उनसे कही अधिक विपत्तियो के कारण हो सकते हैं। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि यहाँ गत वर्षों मे ऐसे लोगो की सख्या मे बडी तेजी से वृद्धि हुई है।

विद्यालय के पठन-पाठन के दायरे मे हम अपनी शिक्षा-प्रणाली के दोषो को क्रमश· विद्यालय, अध्यापक, अभिभावक तथा छात्र—इन चार दृष्टियो से परख सकते है। हमारे विद्यालयो का वातावरण बडा अरुचिकर तथा प्रेरणा रहित बना हुआ है। विद्यालयो मे शैक्षणिक, सास्कृतिक, शारीरिक तथा मनोरजन से सम्बन्धित साधनो का नितान्त अभाव है। शिक्षक–छात्र के व्यक्तिगत सम्बन्ध टूट चले हैं, दोषपूर्ण ट्यूशन–प्रणाली का प्रचलन जोरो पर है और छात्रो की वैयक्तिक रुचियो की अवहेलना की जाती है। भारत शिक्षक को विश्व–मनीषी के रूप में समाहृत करता आया है। दुर्भाग्य है कि आज हमारा सामाजिक प्रेरणास्रोत सूख गया है। समाज के उपेक्षित अल्प वेतन-भोगी, पेशे से अनभिज्ञ, अरुचि वाले तथा अयोग्य अध्यापको मे ज्ञान की गरिमा तथा अपने कार्य के प्रति निष्ठा कैसे मिल सकेगी? आज का अभिभावक भी समान रूप से भ्रमित एव दुखी है। वह स्वय आर्थिक समस्या के कारण अपने बालको तथा विद्यालयो से सम्बन्ध नहीं रख पाता। विद्यालय से ऊबा हुआ बालक जब घर पहुँचता है, तब वहाँ भी उसे नैराश्य-पूर्ण, अरुचिकर, मनोरजन–रहित, उत्साहहीन तथा शिकायतों से भरा वातावरण मिलता है।

भारतीय परम्परा का विनीत, श्रद्धालु, चरित्रवान तथा जिज्ञासु विद्यार्थी वर्तमान मे फैशनपरस्त, वेखबर, श्रद्धाहीन तथा उद्दण्ड बनता गया है, परन्तु उसका मानस अभी इन अवगुणो से तालमेल नही बैठा सका है। भारतीय विद्यार्थी की आदर्शवादी मानसिक परम्परा उसका पीछा कर रही है। ऐसी स्थिति मे वह एक अजीव भय, वेवसी तथा असुरक्षा का शिकार हो रहा है। इसे हम सास्कृतिक–मनोवैज्ञानिक परम्परा–सम्बन्धो की उलझन की सज्ञा दे सकते हैं। मानसिक रूप से यह विद्यार्थी के लिए सक्रान्तिकाल है। उसका जीवन कॉलेज–प्रवेश से लेकर परीक्षा तक आशका तथा अनिर्णय और बाद मे बेरोजगारी एव असुरक्षा से भरा हुआ है। ऐसी स्थिति मे वह असहाय, बेचैन, घुटा हुआ, मायूस, वेबस, निराश तथा कुण्ठित हो चला है। इस दीर्घकालीन पुंजीभूत निराशा की परिणति ही आज का विद्यार्थी–आन्दोलन

है। उनमे एक प्रकार की विचार- शून्यता उत्पन्न हो गई है। और तो और वे आन्दोलन के कारण जाने विना ही उसे प्रारम्भ कर सकते हैं। अपने चतुर्दिक व्याप्त वातावरण के कारण उन्होने स्वतन्त्रता का अर्थ अराजकता तथा अधिकार का अर्थ विद्रोह लगा लिगा है। किन्तु फिर भी विद्यार्थी कुछ भी हो सकता है, देशद्रोही नहीं, कदापि नहीं। आज हमें चाहिये कि समय रहते हुए अपने 'परम मित्र' को पहचानें।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश मे स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व का नारा तो लगाया गया, परन्तु 'पर उपदेम कुसल वहुतेरे' के अनुसार देश मे तप पून राजनायको के स्थान पर स्वार्थी एव अवमरवादी नेताओ की वाढ सी आ गई है।

युवको तथा राजनीतिज्ञो के दृष्टिकोण मे मतभेद उत्पन्न हो गया है। शक्तिमद मे लोगो ने राजनीतिक अधिकारो का दुरुपयोग किया। एक भयकर भूल यह हुई कि गत दिनो के युद्धकालीन युवा-उत्साह का देश सदुपयोग न कर सका और उल्टे वाद मे अश जैसे मामलो को लेकर राष्ट्रीय गौरव को हानि ही उठानी पडी।

अनुशासन वल पूर्वक लादा नही जा सकता। वह सस्कारों के द्वारा, जो सामाजिक परिवेश से निर्मित होते हैं, दृढ होता है। विद्यार्थी इसको प्यार, सहानुभूति तथा सच्चे आदर्शों द्वारा आत्मसात करता है। आज राजनीतिक सिफारिशो के कारण अपराधी का अदडित वच निकलना, नेताओं का भ्रष्टाचार-रत रहना, योग्यता तथा परिश्रम के स्थान पर सिफारिशों का वोलवाला होना तथा प्रशासनिक शिथिलताओं के कारण विद्यार्थी भी दुस्साहसी, आवेग भरा, उच्छृ खल तथा ढीठ हो चला है।

समस्त समाज-व्यवस्था तथा आदर्शो के लुप्त होने के कारण समाज के सगठनात्मक तत्त्व द्रुतगति से छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। सामाजिक मानदण्ड आत्मवादी तत्त्वज्ञानियो के हाथो से छूट कर अर्थतन्त्र तथा राजतन्त्र की रस्साकशी के वीच उलझ गए हैं। भौतिक उपलब्धियो की चकाचौंध के वीच आज आत्मा, वुद्धि तथा मन की सर्वत्र अवहेलना हो रही है। न्याय, विवेक तथा सत्य की अनुपस्थिति में लोगो का शान्ति तथा अहिंसा के मार्ग पर से क्रमश विश्वास ही उठता जा रहा है।

जव तक कोई राष्ट्र कालान्तर में नवीन जीवन मूल्यों को पूर्णत आत्ममात न कर ले, तव तक परम्परागत सास्कृतिक नैतिकता तथा धर्म

के विना सामाजिक-सूत्र टूट-टूट कर विखरने लगते है। वर्तमान मे हमारे यहाँ भारतीय एव पाश्चात्य सस्कृतियो के वीच असामजस्य उत्पन्न हो जाने के कारण भारतीय मानस नैतिक मानदण्डो की उलझन भरी कुहेलिका के मध्य पथभ्रान्त हो भटक रहा है।

यदि समस्या को समष्टि दृष्टि से विचारा जाय तो इसके मूल मे एक व्यापक कारण को लक्षित किया जा सकता है। जीवन मे संतुलन लाने के लिये कथनी और करनी तथा सिद्धान्त और कर्म मे एकता स्थापित करनी होती है। यदि हमने प्रजातान्त्रिक दर्शन, स्वतन्त्रता, समता एव न्याय के सिद्धान्तो को अपनी जीवन--प्रणाली के रूप मे अपनाने की वात कही है, तो हमें अनिवार्यत उन्हे अपने आचरण मे व्यवहृत करना होगा। एक महत्वपूर्ण तथ्य को हम अभी तक पहचान नही पाये हैं कि हमने अपने युग की वदलती हुई अनिवार्यताओ के दवाव से जिन उच्च मानवीय सिद्धान्तो की उद्घोषणायें स्वतन्त्रता-प्राप्ति की अरुणिम बेला मे की थी, वे अव वैचारिक-स्तर[1] से बढकर भारतीय महत्वाकांक्षी युवक के मन, भावना व आत्मा की पर्तें वनती जा रही हैं। परन्तु इसके विपरीत आज हमारी वास्तविकता यह है कि हमारे समूचे जीवन मे एक दोहरापन आ गया है, हमारे वचन और कर्म मे एक-रूपता नही है। यह वात सवेदनशील युवक के मानस को व्याघात पहुँचाती है।

वैज्ञानिक युग की वैचारिक-क्रान्ति ने हमारे जीवन की समस्त नैतिकता की पुनर्व्याख्या प्रस्तुत की है। इन समसामयिक परिभाषाओ के एक बहुत वडे अश को हमने स्वीकारा भी है, परन्तु इस स्वीकारोक्ति मे एक ओर तो उन्मुक्तता, स्वच्छन्दता, अभय एव ग्रहणशीलता के स्थान पर झिझक, शका एव सशय है, तो दूसरी ओर वरण किये हुये को परित्याग करने अथवा उसी को दृढता, निष्ठा, और साहस के साथ अपना वनाने का जोखम उठाने की असामर्थ्य है। मानवीय प्रगति के इतिहास ने विचार से अधिक उसकी कार्यान्विति के जोखम के कष्ट को भोगा है। हम लोग, ऐसा लगता है अभी इस कष्ट के लिये प्रस्तुत नही है। वह दिन शुभ होगा कि जव हम अपने

---

१. यहाँ वैचारिक स्तर से मेरा यह तात्पर्य नहीं है, कि इन सिद्धान्तों के साथ हमारी भावनाओ का लगाव न था, वल्कि इन उच्चादर्शों से हमारी भावना स्फूर्तित तो थी, प्रेरित भी थी, परन्तु ये हमारी भावना के स्थायी अंग नहीं वन पाये थे।

युवक की नवनवोन्मेषशालिनी चेतना व सवेदना की पर्तों को यथार्थ एव अपने देश की प्रकृति के अनुरूप स्वीकार कर उसे तदनुकूल आचरण करने की स्वतन्त्रता प्रदान कर देंगे । भारतीय युवक का मन सकटापन्न है। यह बात उसकी आत्मा को सालती है कि आज हम बहुरूपिये क्यों हो गये हैं ? आज हम जिसे नैतिक कहते हैं, उसे कर क्यो नही पा रहे ?

आज हमारे युवक का मन विभ्रम से आक्रात है, उसे अपनी सही दिशा ज्ञात नही। अत उसकी शक्ति, सामर्थ्य एव ऊर्जा तुच्छ बातो मे उलझ कर बुझ जाती है। वह भूला हुआ है कि उसे इन छोटी-मोटी बातों से ऊँचा उठकर समाज-रचना एव जीवन के अनेक अस्पर्शित क्षेत्रों में सृजन का का कार्य करना है । उसकी महत् शक्ति महत् कार्यों के लिये सुरक्षित रहनी चाहिये। शक्ति ने यदि सृजन नही किया, तो उससे विनाश होना अवश्यभावी है ।

मात्र भौतिक समृद्धि भी मानव को स्थायी शांति प्रदान नहीं कर सकती। अब अणु-विज्ञान भी एक ऐसे बिन्दु पर आगया है, जब पदार्थ की सरचना उपनिषद् के ब्रह्म के समान अनिर्वचनीय हो गयी है । अत ऐसी स्थिति मे भौतिक-दर्शन मानव मन की व्याख्या करने मे और भी अधिक असमर्थ हो गया है। युग के विरोधाभास की इस घडी मे, जबकि पश्चिम का युवक अपनी वैभव-सम्पन्नता से क्लान्त हो उठा है तथा इतिहासकार टायनबी इतिहास के दोहरने की बात कहता हुआ चेतावनी देता है, कि विश्व में पुन "बर्बर" आयेगा तथा दूसरी ओर पूर्व का युवक अपनी आर्थिक विपन्नता से अधीर हो उठा है, तो यह सहज ही हमारी समझ मे आने लगता है, कि हमे भौतिक एव आध्यात्म की अतिवादिताओ (Extremes) से बचकर, एक सामजस्यपूर्ण भाव-भूमि की स्थापना करनी होगी। आज के इस सकट मे भी हमे मानवीय विवेक, उसके प्रयत्न तथा जीवट मे आस्था रखते हुये, एक एक ऐसी "समग्र-दृष्टि" अपनानी होगी, जो वैचारिक धरातल से ऊँचा उठकर मानव आत्मा मे समरसता उत्पन्न कर सके।

●

सी, १३८ दयानन्द मार्ग,
तिलक नगर, जयपुर

शिक्षा क्षेत्र में अवांछनीय हस्तक्षेप क्यों?

गुरुदत्त

भारत मे जब अग्रेज शासको ने शिक्षा अपने हाथ मे ली, तो उन्होंने शिक्षा का उद्देश्य ही बदल दिया। उससे पूर्व शिक्षा मानव अभ्युदय का साधन मानी जाती थी और अग्रेजों ने इसे राज्य के सेवक निर्माण का यत्र बना दिया।

उस समय मैकॉले का दृष्टिकोण क्या था? इस विषय पर न लिखते हुए यह तो बताया ही जा सकता है, कि सरकार के शिक्षा मे हस्तक्षेप का परिणाम इसके उद्देश्य को बदलने मे कारण हो गया।

भारत मे राज्य तो पहिले भी थे और उनके कार्य भी चलते ही थे। उनमे सहस्रो कर्मचारी भी होते ही थे, परन्तु तब राज्य अपने कर्मचारी, पढे-लिखो मे से चुन लेते थे। ये कर्मचारी अपने विद्यालयो और मकतबो मे मानव बनने की शिक्षा ग्रहण कर आते थे। राज्य और राजा-रईस उन पढे लिखों मे से अपने काम के योग्य शिक्षित चुन लेते थे।

अग्रेजी सरकार ने अपने लिये कर्मचारी निर्माण करने के निमित्त शिक्षा को ही अपने हाथ मे लेने का प्रयास आरम्भ किया और धीरे-धीरे देश के पूर्ण शिक्षा-यत्र पर अधिकार जमा लिया। पहले सरकारी स्कूलो तथा कालेजों की शिक्षा का और पीछे सम्पूर्ण शिक्षा-यत्र का उद्देश्य ही क्लर्क और चपरासी निर्माण करना हो गया।

ज्यो-ज्यो शिक्षा-क्षेत्र मे सरकारी हस्तक्षेप बढता गया, त्यो-त्यो शिक्षा का उद्देश्य मानव अभ्युदय के स्थान पर सरकार का अभ्युदय बनता गया और शिक्षा-केन्द्र मानव के स्थान पर सेवक निर्माण करने लगे।

स्वराज्य प्राप्ति के उपरान्त सरकार का शिक्षा-यत्र मे हस्तक्षेप अत्यधिक हो गया है। अब तो विश्वविद्यालय किसी ऐसे स्कूल या कॉलिज का अपने साथ सम्बन्ध नहीं करता, जो सरकारी पाठ्यक्रम को मान्यता नहीं

देता और सरकारी पाठ्यक्रम है—सरकार की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन। सरकार को क्या पढे हुए और किस स्वभाव के लोग चाहिये, यह सरकारी कार्यो की सूची पढने से पता चलता है। इस सूची मे मानव बनाना नही आता।

सरकार को क्लर्क, एकाउटेन्ट, मिस्त्री, ओवर सीयर, सिविल इन्जीनियर, बिजली तथा मशीनो के इन्जीनियर इत्यादि चाहियें और सरकारी शिक्षा इनको तैयार करने का यत्न कर रही है। इन्हीं कार्यों की शिक्षा देने मे सरकार लगी हुई है। यद्यपि हमे सदेह है कि सरकार की शिक्षा-पद्धति यह सब बनाने मे भी सफल हो रही है। इस पर भी मान लेते हैं कि सरकार यह बना रही है, तो भी इतना तो कहना ही होगा कि इतने मात्र से मानव अभ्युदय पूर्ण नहीं हो जाता। मानव मे मानवता तो एक क्लर्क इन्जीनियर इत्यादि बनने से बहुत बड़ी है। ये सब काम तो मनुष्य के शरीर को सिखाने मात्र से सीखे जाते हैं। इन कामो मे मन, बुद्धि और आत्मा के समन्वित विकास सम्बन्ध नही।

यहाँ कहा जाता है कि आज सरकार के प्रजातन्त्रात्मक होने से सरकार की सेवाएँ समाज की सेवाएँ ही हैं और समाज की सेवा अपनी अर्थात् मानव की सेवा ही है। अतः इसको मानव कल्याण ही मानना पडेगा। सरकार की सेवा को समाज की सेवा मान लेने पर भी यह सेवा-कार्य सीखना मानव अभ्युदय कैसे हो गया ? मानव के कार्य उक्त सेवाओ से बहुत अधिक हैं।

मनुष्य शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का सयोग है। इन्जीनियर इत्यादि की शिक्षा तो कुछ बुद्धि को छू भी पाती है, परन्तु मन और आत्मा के विकास में तो यह किंचित मात्र भी भाग नही लेती। बुद्धि के विकास मे भी इसका बहुत ही कम भाग है। शरीर की उन्नति भी आज स्कूल-कॉलिजो में नहीं होती। जहा तक मन और आत्मा का प्रश्न है, इसके लिये वर्तमान शिक्षा-पद्धति मे कोई स्थान है ही नही। थोड़े से गुर (फार्मूले) स्मरण कर लेने से मन अथवा आत्मा का विकास नही हो सकता। पढे-लिखे लोगों मे अनाचार, दुराचार और अयुक्ति-सगत व्यवहार इस बात का साक्षी है। वर्तमान शिक्षा प्राप्त युवक सरकारी मशीन का एक अंग मात्र ही बन सकते हैं। ज्यो ही उनका सरकार यत्र से सम्बन्ध विच्छेद हुआ, वे या तो सरकार से बग़ावत करने का विचार करने लगते हैं अथवा आत्म-हत्या पर उतारू हो जाते हैं।

समाज-सेवा मानव ग्रभ्युदय नही। इसके विपरीत यह कहा जाये, तो अधिक ठीक होगा कि मानव ग्रभ्युदय ही समाज-सेवा है। समाज मनुष्यो से ही बनता है। समाज से मनुष्य बनते नही देखे जाते। कारण स्पष्ट है। समाज-सेवा का कार्य मानव की सर्वांग उन्नति का प्रतीक नही।

मानव ग्रभ्युदय की ग्रोर प्रथम पग है—अधिक से अधिक सख्या मे मानव तैयार करना। समाज का ग्रभ्युदय मानवो की सख्या सीमित रखने मे नही है। सब समाजवादियो को यह चिन्ता लगी रहती है, कि मानवो की सख्या एक सीमा से अधिक न हो जाये।

किसी समय यूनान मे स्पार्टन समाज-हित को व्यक्तिगत हित से श्रेष्ठ मानते थे ग्रौर वे दुर्बल बच्चा को मार डालने मे ही समाज कल्याण मानते थे। यही बात ग्राज कहे जाने वाले सब सभ्य देशो में, एक दूसरे ढग से की जा रही है। समाज हित मे बच्चे न पैदा करना, एक ग्रावश्यक कार्य माना जाता है। यह बात समाजवादी देशों मे भी ग्रौर पूँजीवादी देशों में भी की जा रही है। अन्तर केवल इतना है कि समाजवादी देशो मे सरकार अर्थात् समाज इसके उपाय बताती है ग्रौर पूँजीवादी देशो में पति-पत्नी अपने छोटे से समाज के हित मे प्रोफिलैटिक्स प्रयोग करते हैं, अथवा गर्भपात करते हैं। भारत की समाजवादी सरकार भी जन-सख्या सीमित करने के पीछे कमर कस चल पडी है। मानव निर्माण करना कार्य नही रहा ग्रौर सरकार गर्भ-निरोध अर्थात् परिवार नियोजन के कार्यों से सतुष्ट न रहकर गर्भपात को कानून से स्वीकार कराने की बात पर विचार करने लगी हैं।

अत मानव कल्याण की प्रारम्भिक बात, कि अधिक से अधिक सख्या मे स्वतन्त्रता पूर्वक मानव निर्माण, को अकार्य मान लिया गया है। इस कार्य मे युक्ति भले ही कुछ हो, परन्तु मानव-निर्माण मे यह बाधा हितकर दिखाई नही देती। सन्तान-निरोध, भ्रूण-हत्या अथवा शिशु-हत्या योग्य ग्रौर अयोग्य मे भेद नही करती। इस कारण यह हितकर नही हो सकता।

वस्तु स्थिति यह है, कि सरकार शिक्षा को अपने हाथ मे लेकर ऐसे शिक्षित निर्माण कर रही है, जो मानव नही होते। वे तो केवल समाज-यत्र के पुर्जे मात्र होते हैं। जिस स्थान पर वे काम करने के लिये बनाये जाते हैं, वही कार्य वे कर सकते हैं। ज्यो ही वह कार्य छूटा, वे ससार को अन्धकारमय पाते हैं। कारण, उनमे मन, बुद्धि ग्रौर ग्रात्मा का विकास नहीं हो पाता।

अत हमारा यह विश्वास है कि शिक्षा के उद्देश्य बदला है—इसके शासन के अधीन होने से। यह उद्देश्य का बदलना शिक्षा को उन्नत करने मे

कारण नही हुआ, वरच इसको पतन की ओर ले जाने वाला ही हुआ। वर्तमान शिक्षा मानव को शरीर से सुदृढ, मन से सतर्क, बुद्धि से विकसित और आत्मा से पवित्र नही बना रही। यह शिक्षा बना रही है—क्लर्क, लेखाकार, मिस्त्री, ओवरसीयर, इन्जीनियर, अफसर इत्यादि। यह भी इस कारण कि सरकार अथवा समाज को इनकी आवश्यकता है। शिक्षा-सस्थाएँ सेवा योग्य कार्य सिखा कर युवकों को शिक्षित मान लेती हैं।

यही कारण हैं कि धैर्यहीनता, क्रोधाधिक्य, असत्य भाषण, चोरी, अनाचार और दुराचार की व्यापकता हो गई है। अभिप्राय यह है कि सब प्रकार की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक दुर्बलताएँ दिखाई देने लगी हैं। कारण, आज शिक्षा सेवक-निर्माण करने में लगी हुई है, मानव निर्माण मे नही।

अत' शिक्षा की इस दुर्दशा को दूर करने के लिये उपाय यह है कि इस को समाज सेवक तैयार करने वाली योजना का परित्याग कर मानव बनाने का कार्य आरम्भ कर देना चाहिए।

शिक्षा देना विद्वानों का काम है, सरकार अथवा सरकारी नौकरों का नहीं। अत शिक्षा को राजनीतिक दासता से मुक्त करना प्रथम कार्य है। इसके लिये प्रथम पग है केन्द्र और राज्यों मे सरकारी शिक्षा-विभाग बन्द किये जाय। शिक्षा मंत्रियो के पद रद्द किये जायें। विश्वविद्यालयो को नर्सरी स्कूलो से लेकर अन्वेषण विभागो तक की देख-रेख का अधिकार दिया जाये।

इस दिशा में दूसरा पग है, सरकारी कार्यालयों, कारखानों, सेना और पुलिस इत्यादि महकमों मे भर्ती के लिये अधिकारी अपनी-अपनी परीक्षाए चलायें। स्मरण रहे शिक्षा नही, परीक्षाए और उन परीक्षाओ में बैठने की शर्त किसी स्कूल कॉलिज अथवा विश्वविद्यालय के सर्टिफिकेट, डिप्लोमा अथवा डिग्री की आवश्यकता न हो। इनमे बैठने की स्वीकृति किसी भी साक्षर को हो। परीक्षा निर्धारित विषयो और स्तर की हो। जो उत्तीर्ण हो सके, वह नौकरी पायेगा।

राजनीतिक दासता से शिक्षा को मुक्त करने का तीसरा पग है—व्यापार, उद्योग, कृषि, साहित्य और कला से शासन को प्रथक करना। शासन और ससद का कार्य सेना, पुलिस, न्याय और शान्ति-व्यवस्था तक सीमित हो जाना चाहिये।

थे और इसी प्रकार के अन्य कार्य हैं, जिन से शिक्षा को राजनीतिक 'धनो से मुक्त किया जा सकता है। वर्तमान शिक्षा की दुर्दशा का सबसे बडा कारण यह दासता ही है।

यह तो शिक्षा को बधन-मुक्त करना हुआ, परन्तु शिक्षा की उन्नति और विकास के लिये इसको विचारो की दासता से भी मुक्त करना होगा। जब पढा-लिखा यह समझता है कि जो कुछ उसने पढा अथवा जाना है, वह ही सब कुछ है और किसी का अधिकार नही कि वह उसके अतिरिक्त कुछ कहे अथवा करे। वह विचारो की दासता है और यह उन्नति मे बाधक होगी।

ऐसी दासता आज विश्वविद्यालयो, कॉलेजो, स्कूलो तथा अन्य शिक्षा केन्द्रो मे व्यापक दिखाई देती है। उदाहरण के रूप मे, किसी भी विषय पर अन्वेषण अथवा मौलिक-पत्रक (Thesis) लिखने के लिये विषय का निर्वाचन एक अधिकारियो का बोर्ड करता है। जिस विषय को वे दो चार अधिकारी स्वीकार नहीं करते, उस पर कोई विद्यार्थी मौलिक कार्य नही कर सकता। यह विचारो पर सीमा बाधनी है। यह बात आज प्राय सब विश्वविद्यालयो मे चल रही है। परीक्षा-बोर्ड तो होना चाहिये, परन्तु विषय निर्धारण बधन है। यह बात भी उसी श्रेणी की है, जैसा सेवा-कार्य के लिये शिक्षा का वैसा ही पाठ्यक्रम स्वीकार करने के लिये शिक्षणालयों को बाध्य करना।

पाठ्यक्रम पर दो सीमाएँ हो सकती हैं। एक विचार की असीमता और दूसरे विद्यार्थी की सामर्थ्य। होना यह चाहिये कि कोई भी विद्वान् अपने विषय की शिक्षा दे सके। जो सीखने की सामर्थ्य और रुचि रखता हो, सीख सके। ज्ञान-विज्ञान का पाठ्यक्रम वही विद्वान् निश्चय करें, जो शिक्षक हो। इसी प्रकार अन्वेषण करनें कराने पर कोई नियन्त्रण न हो। परीक्षा परीक्षको के हाथ मे हो।

विडम्बना यह है कि अन्वेषण कार्य में विषय निश्चय करने, फिर लेखो को स्वीकार करने तथा उनकी परीक्षा करने वाले एक ही लोग होते हैं। इस पर एक बात और कि उन अन्वेषण करने वालों को नौकरी देने वाले भी वे परीक्षक ही हैं। इस से शिक्षा कुण्ठित हो रही है।

एक सीमा तक जिस मे भाषा का ज्ञान, प्रारम्भिक गणित, इतिहास, भूगोल अथवा विज्ञानादि विषयो के पाठ्यक्रम तो विश्वविद्यालयो द्वारा नियुक्त

समितिया और आयोग निश्चय करें, परन्तु उनसे ऊपर विषयो का विशेष अध्ययन और पठन व्यक्तिगत अध्यापकों में अधीन हो।

जहा तक सरकारी और निजी सेवाओ का सम्बन्ध है, वे अपनी-अपनी परीक्षा लेकर सेवक नियुक्त करें। उन परीक्षाओं मे बैठने के लिये, जैसा हम ऊपर बता चुके हैं किसी संस्था अथवा विद्यालय के प्रमाण-पत्र की आवश्यकता न हो।

मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक विकास के लिये शास्त्रों मे कई योग-क्रियाएं बताई हैं। उनको भी शिक्षक गण स्वीकार करेंगे और विद्यार्थी सीखेंगे। यह तब ही हो सकेगा जब शिक्षक अपना पाठ्यक्रम स्वय निश्चय करेंगे। उनकी अपनी योग्यता की परीक्षा और विद्यार्थी के मन तथा बुद्धि के विकास का अनुमान विद्यार्थी की कुशलता से निश्चय होगा। विद्यार्थियों में योग्यता प्राप्त करने की प्रतिस्पर्धा चल पड़ेगी और यह व्यक्ति और समाज दोनों के हित मे होगा।

कुछ लोग आत्मा परमात्मा को नही मानते। हमारा कहना है कि न माने और न पढायें, परन्तु जो पढाना चाहें और मन, बुद्धि और आत्मा को उन्नत करने की शिक्षा देना चाहें, उन पर प्रतिबन्ध न हो। आज समाज अथवा सरकार की सेवाओ के लिये किसी विश्वविद्यालय अथवा सरकारी बोर्ड की डिग्री, सर्टिफिकेट अथवा डिप्लोमा की अनिवार्यता है और उन संस्थाओ में मन बुद्धि और आत्मा के विकास की शिक्षा का पाठ्यक्रम नहीं रहता। यदि सब के लिये द्वार खुले होंगे, तो नि:सन्देह उन्नत मन और आत्मा वाले समाज में अधिक सफल होंगे।

संक्षेप में, हमारा यह कहना है, कि आज की शिक्षा मे सब दोषो का मूल शिक्षा के उद्देश्यों का हीन हो जाना है। यह शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के विकास के लिये नहीं रही। यह समाज की कुछ सेवाओं के लिये सेवक बनाने में सीमित कर दी गयी है।

बिना इस उद्देश्य को बदले शिक्षा की दशा सुधर नहीं सकेगी। यह निम्न कोटि का उद्देश्य बना है, राजनीति-तन्त्र का शिक्षा के पाठ्यक्रम में अनाधिकार हस्तक्षेप से। शासन दो प्रकार से हस्तक्षेप कर रहा है। एक तो शिक्षा के पाठ्यक्रम में राजनीतिक सुविधाओं को लक्ष्य बना कर और दूसरे सरकारी और समाज की सेवाओं मे सरकारी पाठ्यक्रम वाली शिक्षा की उपाधि दे कर। बिना इन का उन्मूलन किये सुधार असम्भव है।

यदि यह नही किया जायेगा और सरकारी नौकरियों का क्षेत्र बढ़ता गया, तो विद्यार्थियो मे बैचेनी की एक झलक जो, अभी-अभी मिली है, और जो विराट रूप मे चीन के आदोलन मे दिखाई दी है, व्यापक हो जायेगी।

●

भारती साहित्य सदन,
३०/९० कनाट सर्कस,
नई दिल्ली-१.

लक्ष्य प्राप्ति की चाह

•

डॉ० लक्ष्मी मल्ल सिंघवी

पिछले दिनो देश के अनेक भागों मे विद्यार्थियो का असन्तोष जिस आकार और परिमाण मे प्रकट हुआ है, उसके कारण देश की अनेक प्रमुख समस्याए भी पृष्ठभूमि मे पड गई हैं। लोकतन्त्रीय उपायों से सामाजिक शाति और सुव्यवस्थित प्रगति के उद्देश्यो का विद्यार्थी-असन्तोष की समस्या और दृष्टिकोण से परस्पर सम्बन्ध है। विद्यार्थियो द्वारा लगातार आदोलन और प्रदर्शन करते रहने से तथा देश के नवयुवकों द्वारा हिंसात्मक काम करने से राष्ट्र की शक्ति क्षीण हो जाती है, शिक्षा का उद्देश्य पूरा नही होता, हमारे समाज के आधार भूत मान नष्ट हो जाते हैं और लोकतन्त्रीय व्यवस्था के क्रियाकलापो को गहरा आघात लगता है।

विद्यार्थी समाज के अभिन्न अङ्ग हैं। व्यक्तिगत दृष्टि से वे हमारे पुत्र, पुत्री और भाई, बहन है। सामूहिक दृष्टि से वे नई पीढी के तथा समाज के अपेक्षाकृत अधिक भाग्यशाली वर्ग के प्रतिनिधि है। इसलिए निश्चय ही एकमात्र उनके बारे मे विचार नही किया जा सकता। वे वस्तुतः हमारे समाज की वर्तमान परिस्थितियों के प्रतिबिंब हैं। बुजुर्ग उनके सामने जो उदाहरण रखते हैं, वे प्राय. अनुकरणीय नहीं होते।

सभव है कि देश क्रुद्ध नवयुवक किसी विशेष कारण से रुष्ट न हो। यह भी सभव है कि उनका रोष उचित न हो। हो सकता है कि वे किसी उद्देश्य और आदर्श की प्राप्ति के लिए अन्धेरे मे भटक रहे हो।

सत्य तो यह है कि हम नवयुवको में अदम्य उत्साह और देश के भविष्य के प्रति अटूट विश्वास उत्पन्न नही कर सके हैं। चारो ओर सदेह आशका और उदासीनता व्याप्त है। देश मे गरीबी और अभाव है तथा लोग हर समय इसी की चर्चा करते रहते हैं। जीवन पर राजनीति बुरी तरह सवार है। लोगो मे कुण्ठा और निराशा छाई हुई है। विद्यार्थियों के मन में बेरोज-गारी की आशका समाई हुई है। शिक्षा का स्तर रसातल में जा रहा है।

विद्यार्थियो की पढाई-लिखाई पर आमतौर पर ध्यान नही दिया जाता। ऐसा लगता है, कि अब गम्भीर और गहन अध्ययन करने की परिपाटी समाप्त होती जा रही है। पाठ्यक्रम समय की आवश्यकताओं के अनुरूप नही है, शिक्षा की सुविधाए प्राय अपर्याप्त हैं, विश्वविद्यालयों मे विद्यार्थियो की सख्या कई गुनी बढ गई है और विद्यार्थियो की शक्ति का सदुपयोग करने के उपाय बहुत कम हैं।

पिछले दिनो केन्द्रीय गृहमत्रालय ने १२०० विद्यार्थियों के मामलो का अध्ययन किया था। यह अध्ययन यद्यपि प्रकाशित नही किया गया है, किन्तु इससे (देखिये, हिन्दुस्तान टाइम्स, १६ नवम्बर, १९६६) जो सूचना मिली है, उससे पता चलता है कि आदोलनो मे भाग लेने वाले पचास प्रतिशत विद्यार्थी अपने अध्यापको अथवा शिक्षा-सस्थाओं से असन्तुष्ट थे। शेष पचास प्रतिशत विद्यार्थियो ने राजनीतिक दलो के इशारो पर आदोलनो में भाग लिया। हम इस अध्ययन के आधार पर किसी अन्तिम निर्णय पर शायद न पहुँच सकें, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि पिछले कुछ वर्षों मे विद्यार्थी-आन्दोलन पर राजनीति का प्रभाव काफी बढ गया है।

महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयो के छात्रो को वर्तमान राजनीतिक मामलो की जानकारी अवश्य होनी चाहिए। यदि छात्र देश की राजनीतिक गतिविधियो और राजनीतिक परिवर्तनो को समझते हैं और इनके प्रति सजग रहते हैं, तो उनकी यह प्रवृत्ति बडी अच्छी है और इसे प्रोत्साहन भी दिया जाना चाहिये। किन्तु राजनीतिक प्रदर्शनो और आदोलनो मे विद्यार्थियो के सक्रिय रूप से भाग लेने पर और विद्यार्थियों से राजनीतिक दलो द्वारा वस्तुत स्वार्थ-सिद्ध कराने पर छात्र लगातार निरर्थक अशाति उत्पन्न करते रह सकते हैं। सन् १९१७ मे भागलपुर के बिहार छात्र-सम्मेलन मे महात्मा गाँधी ने कहा भी था—

"... "राजनीति के दो पहलू होते हैं—सैद्धान्तिक अध्ययन और सक्रिय रूप से भाग लेना। विद्यार्थियो को राजनीति के सिद्धान्तो का अध्ययन अवश्य करना चाहिए, किन्तु इसमे सक्रिय भाग लेना उनके लिये हानिकर है विद्यार्थियो को दलगत राजनीति से दूर रहना चाहिए। उन्हे निष्पक्ष रहना चाहिए और राष्ट्र के नेताओ का आदर करना चाहिये। राष्ट्रीय नेताओ के बारे मे कोई निर्णय देना विद्यार्थियो का काम नही है धृष्टता की भावना विद्यार्थियो को शोभा नही देती।"

दूसरा प्रश्न है कि छात्र सेवा कर सकते हैं ? इसका सीधा-सादा उत्तर यही है कि प्रत्येक विद्यार्थी को मन लगाकर पढना चाहिये और अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिये। उसकी यही इच्छा होनी चाहिये कि अध्ययन से प्राप्त अपने ज्ञान को वह देश की सेवा मे लगायेगा। मुझे पूर्ण निश्चय है कि विद्यार्थी इस प्रकार देश की सेवा कर सकेंगे।

आधुनिक भारत मे हम नई और बदलती हुई व्यवस्था की प्रारम्भिक कठिनाइयो मे से गुज़र रहे हैं। समव है कि इन परिवर्तनो का दूरगामी प्रभाव नही हो रहा हो अथवा हमारी इच्छानुसार परिवर्तन वहुत तेजी से न हो रहे हो, किन्तु शताब्दियो मे हुई प्रगति समान १०–२० वर्षों मे ही प्रगति कर लेना और द्रुतगति के कारण उत्पन्न समस्याओ को भी इतनी ही अवधि मे सुलभा लेना बडा कठिन कार्य है। उदाहरण के लिये शिक्षा आयोग ने कल्पना की है कि आर्थिक प्रगति के मुकाबले शिक्षा के क्षेत्र मे प्रगति चार सौ गुना अधिक तेज़ रफ्तार से होगी (देखिये हिन्दुस्तान टाइम्स, १६ नवम्बर, १९६६)। इसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न असतुलन दूर करना कोई आसान काम नही है। इसलिये आवश्यक है कि विद्यार्थी और उनकी आकाक्षाएँ सामाजिक और आर्थिक वास्तविकताओ के धरातल पर मज़बूती के साथ आधारित रहे। यदि विद्यार्थियो को समाज-सेवा और राष्ट्र-सेवा के कार्यो में पूरी तरह नहीं लगाया जायगा तो उनकी मानसिक स्थिति राष्ट्र के अनुकूल न बनने की आशका रहेगी और इसके कारण देश की लोकतन्त्रीय सस्थाओ का काम ही रुक सकता है।

मैं, एडवर्ड शिल्स (एण्काण्टर सितम्बर १९६१, खण्ड १७ अक ३, पृष्ठ १२ से २०) के इस विचार से सहमत हूँ कि भारतीय विद्यार्थियो मे उथल-पुथल सविनय अवज्ञा आन्दोलन की परम्परा का परिणाम नही है, हालाकि इस आन्दोलन मे भारत के विद्यार्थियों ने लगभग २५ वर्ष तक प्रमुख रूप से भाग लिया था। एडवर्ड शिल्स ने लिखा है—

"वस्तुतः इससे विपरीत बात सत्य है। भारतीय विद्यार्थी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन मे इसीलिए भाग लिया, क्योंकि वह स्वभावत. व्यक्तित्वहीन नौकरशाही सरकारी वातावरण के विरुद्ध था। यह कदाचित् एक गहरे असन्तोष की अभिव्यक्ति थी, जिसके कारण भारतीय छात्र का अपने सामाजिक जीवन के साथ तालमेल नही बैठ पा रहा था। यह असन्तोष आदिकालीन परम्परागत परिस्थिति से आधुनिक और व्यापक सामाजिक

व्यवस्था की दिशा मे भारत की चेष्टा का प्रारम्भिक परिणाम थी । इसी के विरुद्ध ही भारतीय विद्यार्थी विरोध प्रकट कर रहा है और इसी विरोध की समाप्ति दिखाई नही दे रही ।"

भारत के राजनीतिज्ञो और शिक्षा शास्त्रियों का कर्त्तव्य है कि वे इस 'विरोध' को रचनात्मक, सार्थक और सृजनक्षम बनाने मे सहायता दें । **विद्यार्थियो में इस कड़वाहट और सम्भ्रम के बावजूद लक्ष्य-प्राप्ति की चाह मौजूद है । इस इच्छा को स्नेह और सावधानी से पाल पोसकर पूरा किया जाना चाहिये ।**

व्यावहारिक दृष्टि से शिक्षा की योजना और विश्वविद्यालयो के प्रवन्ध मे सुधार किया जाना चाहिये । विश्वविद्यालयों के प्रवन्ध मे राजनीतिक हस्तक्षेप रोकने के लिए कठोर कदम उठाये जाने चाहिए, किन्तु साथ ही विश्वविद्यालयो के अध्यापक-राजनीतिज्ञो के साथ भी कठोर व्यवहार किया जाना चाहिए । गम्भीर अध्ययन-अध्यापन और अनुसधान की सुविधाएँ बढाई जानी चाहिएँ । विद्यार्थियो को विश्वविद्यालय के बौद्धिक क्रियाकलापो मे तल्लीन रहना चाहिए । विद्यार्थियो के पथ-प्रदर्शन की व्यवस्था काफी व्यापक परिमाण मे होनी चाहिये और उन्हें रोजगार आदि के बारे मे भी सलाह दी जानी चाहिये । अनुशासन स्थापित करने के लिए आवश्यक है कि किसी भी प्रकार की ढील न दी जाय, किन्तु साथ ही अनुशासनहीनता की कार्यवाहियाँ रोकने के लिए प्रशासनिक तथा विचार-विमर्श सम्बन्धी पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए । इस प्रकार के पुनर्गठन का मूल आधार गुरु और शिष्य के बीच निकट सम्बन्धो की स्थापना तथा शिक्षा-प्रणाली मे आमूल सुधार होगा ।

●

सवैधानिक एवं ससदीय
अध्ययन संस्थान,
२०, महादेव रोड,
नई-दिल्ली-१.

पूँजीवादी शिक्षा-व्यवस्था : 'एजूकेशनल-लेबरर' तथा प्रमाणपत्रधारी 'विद्यार्थी-नौकर'

•

साहित्यमहोपाध्याय डॉ० भगवानदास माहौर

हमारे मनीषियो ने ज्ञान का अर्जन करने वालो और उसको समाज मे वितरित करने वालो की तीन श्रेणियो मे रखा है ऋषि, मुनि और आचार्य। ऋषि का पद सर्वोच्च है, उसके बाद मुनि की प्रतिष्ठा है, तदन्तर आचार्य की। ऋषि सत्य का साक्षात्कार करता है, मुनि सत्य का मनन करता है, आचार्य अधिगत नवीन उपलब्धि की समस्त ज्ञान-व्यवस्था को सुव्यवस्थित करता है। ऋषि का आत्मतोष सत्य की शोध और उसे प्राप्त करने में है, आचार्य का आत्मतोष उसे सुग्राह्य बनाने और विद्यार्थियो मे वितरित करने में है। विष्णुगुप्त आदि आचार्यों ने अध्यापकों को दो वर्गों मे रखा है आचार्य और उपाध्याय। वे वेतनभोगी अध्यापकों को 'उपाध्याय' की कोटि मे रखते हैं।

यह सब याद कर लेने की आवश्यकता इसलिये प्रतीत हुई, कि हम उपाध्याय लोग अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा और समाज में अपने स्थान के विषय मे चिन्तन, विचार-विमर्श या सामान्य चर्चा करते समय प्राय ही ऐसा कुछ मान कर चलते हैं, कि मानों हम प्राचीन ऋषि मुनि की नही, तो कम से कम आचार्य की प्रतिष्ठा के अधिकारी तो हैं ही। फिर आज तो परीक्षा पास करके भी आचार्य पदवी प्राप्त कर ली जाती है, तथा किसी कॉलिज या विश्व-विद्यालय के किसी विभाग मे अपनी नौकरी की अवधि, या पदेन सर्वोच्च नौकर होने के कारण उपाध्याय, आचार्य-पद पर आरूढ हो जाते हैं। स्पष्ट है कि ऐसे सभी 'प्रोफेसर' या परीक्षोत्तीर्ण 'आचार्य' प्राचीन आचार्य-पद और प्रतिष्ठा के अधिकारी नहीं। इसी मास मे यह भी कह दिया जाना चाहिये कि हम उपाध्यायों मे ही ऋषि, मुनि तथा आचार्य भी होते रहे हैं और आज भी हैं, क्योंकि ऋषियों, मुनियों और आचार्यों का होना मानव समाज के लिये

अपरिहार्य है। और सच तो यह है कि आज समाज की जो आर्थिक व्यवस्था है, उसमे वास्तविक ऋषियो और आचार्यों को भी रूपन उपाध्याय—वेतनभोगी अध्यापक ही बनना पड़ता है। उपाध्याय रहते हुए ही वे ऋषियो और आचार्यों की तरह आचरण करते हैं और तदनुरूप प्रतिष्ठा और आदर भी प्राप्त करते हैं। कोरे उपाध्याय उस ब्रह्म-प्रतिष्ठा के न तो अधिकारी ही होते हैं, न सामान्यत उन्हें वह मिलती ही है।

समाज की प्राथमिक प्राचीन साम्यवादी अवस्था मे, तदन्तर दासप्रथाश्रित और सामन्ती व्यवस्था मे भी, ऋषियो मुनियो और आचार्यों के योगक्षेम का भार सीधे रूप मे सम्पूर्ण समाज या राज्य पर होता था, फिर भी ऋषियो और आचार्यों के आश्रमो और गुरुकुलो की समृद्धि और प्रतिष्ठा ऋषियो, और आचार्यों के विद्याबल, शिक्षणबल और विद्यार्थी की श्रद्धा-भक्ति संपादित कर सकने की अपनी क्षमता और अपने स्वभावबल पर अवलंबित होती थी। ये गुरुकुल राजशक्ति द्वारा नियोजित नही होते थे। राज्य समाज के (या यो कहिये कि समाज के शासक-वर्ग के प्रतिनिधि के) रूप मे श्रद्धाभक्ति से इन गुरुकुलो की सहायता करते थे। उनके कार्य मे राज्य हस्तक्षेप नही करता था। इन गुरुकुलो पर किसी हाईकोर्ट की कोई रिट, किसी राजा की कोई राजाज्ञा नही चलती थी और यह इसलिये कि ऐसा होने की कोई आवश्यकता नही थी। विद्याध्ययन का अधिकार कार्यरूप मे केवल द्विजातियो को ही था, विशेषत ब्राह्मणों और क्षत्रियों को ही। अध्यापन का अधिकार तो केवल ब्राह्मणो को ही था। शूद्रों को, समाज के बहुसंख्यक शासित–वर्ग को, विद्याध्ययन का अधिकार ही नही था।

उस ब्रह्मक्षत्र की सत्ता और सर्वोच्चता के समाज मे ऋषि, मुनि और आचार्यों को ब्रह्मप्रतिष्ठा मिलना बडी स्वाभाविक बात थी। ब्राह्मण और क्षत्रियो मे सामाजिक प्रतिष्ठा शास्त्रबल और शस्त्रबल पर ही अवलंबित थी। 'विद्या शस्त्रस्य शास्त्रस्य द्वे विधे प्रतिपत्तये', यह शास्त्र और शस्त्र का ज्ञान गुरुओ द्वारा गुरुकुल में ही गुरुकृपा से ही मिल सकता था। उपाध्याय भले ही वेतन लेते हो, परन्तु उन्हे छात्रो या उनके अभिभावको के आगे हाथ नहीं पसारना पडता था। गुरुकुल मे कुलपति द्वारा दिया हुआ ही छात्र खाते-पहनते थे और गुरु आज्ञा का पालन ही वहाँ सर्वोपरि नियम था। यदि समाज मे प्रतिष्ठित जीवन-यापन करना हो, तो शास्त्र और शस्त्र का ज्ञान आवश्यक था और वह गुरुकुल मे आचार्यों और उपाध्यायो द्वारा ही उनकी कृपा से मिल सकता था, इसके लिये न कोई सरकारी मान्य परीक्षा होती थी और न उस

परीक्षा के लिये बाजारू नोट्स और गैस-पेपर्स ही बाजार में मिलते थे। अत छात्रों मे और समाज मे अध्यापकों को, विशेषत आचार्यों और कुलपतियों को ब्रह्म-प्रतिष्ठा प्राप्त थी। समाज मे शासित-वर्ग को तो विद्याध्ययन का अधिकार ही नही था। शासक-वर्ग के लोगो को ही अध्यापन और अध्ययन का अधिकार था। छात्रो और अध्यापकों में वर्ग-विरोध या हित-विरोध जैसी कोई बात नही थी। अतएव काम, क्रोध और अहकार वश गुरु-विरोध करने के पाप का प्रायश्चित अग्नि-प्रवेश करके करने की व्यवस्था थी। बाद मे राजपुत्रों आदि विशिष्ट लोगो के लिये विशिष्ट गुरुओ और गुरुकुलों की व्यवस्था होने लगी तथा गुरुकुलो मे शुल्कदायी और सेवा करने वाले छात्रो का भेद होने लगा था। उसी परिणाम मे गुरुओ की प्रतिष्ठा और छात्रों की आज्ञाकारिता और अनुशासन में फर्क पडने लगना स्वाभाविक हुआ।

बौद्ध और जैन मत के प्रचार और प्रसार ने उन वैश्यो और शूद्रों को भी ब्रह्म–प्रतिष्ठा प्राप्त करने का अवसर मिला, जो इस अवसर से लाभ उठा सकने की स्थिति मे थे। बौद्धों ने हमें बहुत से वैश्य, शूद्र और चाडाल आचार्य तक दिये हैं। बौद्ध विश्वविद्यालय नालदा मे ऐसे बहुत से शूद्र आचार्यों का होना बताया जाता है। बौद्ध आदि शासन मे ब्राह्मणेतर वर्णों के लोगो को भी आचार्य उपाध्याय आदि की वृत्ति मिल सकी। परन्तु परिमाणत. ऐसा बहुत अल्प मात्रा मे ही हुआ। बडे गुरुकुलो की बात छोड दें, तो गावों की चटसारें प्राय ब्राह्मण गुरुओ के हाथ मे ही रहीं। जो हो, इस समस्त युग मे सामाजिक मान्यता प्रधानत: यही रही कि विद्या दान की वस्तु है, व्यवसाय की नही। गुरु शिष्य को विद्या का दान देता है, शिष्य गुरु से विद्या दान मे प्राप्त करता है, खरीदता नही है। ऐसी समाज-व्यवस्था में छात्रो मे अनुशासन और शिक्षको की समाज मे प्रतिष्ठा की कोई समस्या उत्पन्न हो ही नही सकती थी।

मुसलमानों के शासनकाल मे शिक्षा—व्यवस्था मे कोई रूपगत परिवर्तन विशेष नही हुआ, परन्तु एक तात्त्विक परिवर्तन अवश्य हुआ। राज-भाषा के रूप मे एक विदेशी भाषा के अध्ययन के लिये गावो मे भी मुसलमानों और कायस्थ मुअल्लिमों के मकतब भी वजूद मे आये, और अमीरों और राजा-रईसों के लडकों को पढाने के लिये मुअल्लिम शेखों और कायस्थ मुंशियों को तनख्वाह पर नियुक्त किया जाने लगा। इससे वे परिस्थितियां उत्पन्न हो गई जिनमें मुदर्रिसो की जबान पर आने लगा —"लानत हजार बार बकारे मुदर्रिसी।"

सामन्ती व्यवस्था मे एक प्रकार से प्रत्येक का सामाजिक दर्जा जन्म से ही निश्चित था। हर एक की साम्पत्तिक अवस्था भी एक प्रकार से निश्चित थी। उपयोगी कलाओ और व्यापारो के लिये कोई पब्लिक स्कूल नही थे। उनकी शिक्षा कारीगरो के घर पर ही काम करते, काम मे हाथ बटाते, हुए होती थी। 'पढा लिखा' होना साधारण प्रजा के लिये कोई बहुत जरूरी न था। हा, उच्च वर्गों मे विशेष प्रतिपत्ति के लिये पुस्तकीय विद्या और कलाकुशलता की आवश्यकता थी। अतएव अभी तक परिस्थितियाँ ऐसी ही थी कि छात्रो मे शिक्षको का आदर और समाज मे शिक्षको की प्रतिष्ठा स्वाभाविक रूप में हो। शिक्षको और छात्रो मे कोई स्वाभाविक हित--विरोध नही था, हित-साम्य ही था। छात्रो की आर्थिक उन्नति या उनका मुलाजिमत मे होना, किसी प्रकार की सार्वजनिक परीक्षा मे पास ही कर सार्टीफिकेट प्राप्त कर लेने पर अवलवित न था।

जब तक समाज मे सामन्ती-अर्थव्यवस्था रही, तब तक मनु निर्दिष्ट समाज-व्यवस्था भी तात्त्विक रूप मे रही, भले शासन मुसलमानो का हो गया हो। मुसलमानो आदि के अन्दर भी अर्थव्यवस्था के अनुरूप वर्गभेद पर आधारित वर्ण--व्यवस्था अपने तात्त्विक रूप मे आ ही गई। हा, वह मनु--व्यवस्था के समान सुगठित, सुव्यवस्थित, सुनियोजित भले न रही हो।

अग्रेजो के शासन और भारत के विदेशी साम्राज्यवादी पूँजीवादी उत्पीडन के साथ ही भारत मे पूँजीवाद भी पनपा ही और सामन्तीय अर्थव्यवस्था का सुदृढ गढ मनु--व्यवस्था ढहना शुरू हुई।

भारत मे अंग्रेजी शासन तो अब समाप्त हो गया परन्तु, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था भलीभाति स्थापित हो गई। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे सन्निहित आन्तरिक विरोध पनप रहे हैं और भारत में भी समाजवादी अर्थव्यवस्था की पुकार ज़ोर पकड़ रही है।

आज जो शिक्षण-व्यवस्था भारत मे प्रचलित है, वह मूलत विदेशी साम्राज्यवादी उत्पीडकों के द्वारा भारत मे अपने उत्पीडन के सहायक उत्पन्न करने के लिये ही नियोजित थी। महाकवि अकबर ने इसी बात को बडी चुटीली रीति से अपने एक शेर मे व्यक्त किया है :

तोप खिसकी तो प्रोफेसर पहुँचे।
जब वसूला हट गया तो रन्दा है।।

और आज भी, शासक श्रेणी के वसूले की काटछाट पर रन्दा चलाना ही प्रोफेसरो का काम वना हुआ है। परन्तु ज्ञान तो प्रकाश है ही, उससे उत्पीडन को समझने और उसका प्रतिकार करने का मार्ग भी दिखता ही है। अंग्रेजो द्वारा स्थापित शिक्षा-व्यवस्था ने जहा उनकी उत्पीडन मशीन के पुर्जे पैदा किये, वहा उसके उत्पीडक कार्य और मर्म को समझने वाले तथा उसको उखाड फेंकने वाले इजीनियर भी उसमे से उत्पन्न हुए ही।

आज साधारण अक्षर-ज्ञान और हिसाव तथा उच्च विज्ञान, कलाकौशल, उद्योग, कृषि आदि सभी की शिक्षा का प्रबन्ध प्राइमरी, सेकण्डरी, स्कूलों, डिग्री कालेजो और विश्वविद्यालयो द्वारा होता है। यह वृहत् परिमाण पर पूजीवादी उत्पादन व्यवस्था के भलीभाति अनुरूप है। इसमे इधर-उधर असतुलन है और बहुत है, जो योजनाहीनता के कारण स्वाभाविक है, परन्तु पूजीवादी व्यवस्था के लिये रूपत यह है वहुत ही उपयुक्त।

आज अध्यापक की वृत्ति का समाज मे क्या स्थान है और उसकी क्या प्रतिष्ठा है ? आज समाज के सारे काम 'मजदूर' करते हैं—वेतनभोगी मजदूर। यही तो पूजीवाद का आदर्श है। वालको को अक्षरज्ञान कराना, साधारण हिसाव सिखाना आदि का काम भी वेतनभोगी मजदूरो के द्वारा होता है। पूजीवादी अर्थव्यवस्था और तदनुरूप राजनीतिक व्यवस्था पूजीवादी जनतत्रवाद के लिये यह परमावश्यक वात है। प्राइमरी और सेकन्डरी अध्यापको की सामाजिक स्थिति वास्तव मे 'एजूकेशनल लेवरर' की ही है, इसे कोई भी स्वीकार कर लेगा। कॉलेजो के प्रोफेसरों की स्थिति भी तत्त्वत इससे कुछ भिन्न नही है, वे अपेक्षाकृत कुछ अधिक वेतन पाने वाले मजदूर जैसे ही हैं।

पूजीवादी व्यवस्था मे सर्वव्यापी नौकरी और प्रतियोगिता की व्यवस्था मे, विद्याध्ययन या वास्तविक योग्यता प्राप्त करने का महत्त्व नहीं है—महत्व है परीक्षा का और उसमे उत्तीर्ण होने के प्रमाणपत्र का। आज अध्यापक और छात्र मे एक आधारगत विरोध है। छात्रो या उनके अभिभावको को आज विद्या या विषय के ज्ञान की आवश्यकता नही है, आवश्यकता है परीक्षा मे उत्तीर्ण होने के प्रमाणपत्र की। आज अध्यापको से छात्र और अभिभावक यह अपेक्षा नही करते कि वे विषय का ज्ञान प्राप्त करावें, प्रस्तुत उनकी सर्वोपरि अपेक्षा इस बात की होती है कि वे परीक्षा पास भर करादें और प्रमाणपत्र दिलवा दें। अतएव छात्रो और अभिभावकों के आर्थिक हित मे सावधान,

विद्याध्ययन के हित मे नही, ज्ञान की वृद्धि और प्रसार के हित मे नही, ऋषियज्ञ के हित मे नही, आज सबसे अच्छा और योग्य अध्यापक वह है, जिसका आचरण ऐसा होता है कि छात्र चाहे स्कूल मे आए या न आये, पढे या न पढ़े, अध्यापक उसे उपस्थित बताके परीक्षा मे सम्मिलित करा दे और जैसे हो उचित-अनुचित उपायो से भी उन्हें पास करा दे, और उन्हे प्रमाणपत्र दिलवा दे, ताकि नौकरी मिल सकने के मार्ग की पहली बाधा तो दूर हो जाय। जब बी. ए. और एम ए. पास तक म्युनिसिपल बोर्ड की क्लर्की ही नही, दरबानी तक के लिये मारे-मारे फिरते हो, तो इसके सिवा और क्या हालत हो सकती है? छात्रो की और उनके अभिभावकों की भी दृष्टि मे अच्छा अध्यापक वह नही हो सकता जो अपने विषय का अच्छा ज्ञान रखता हो और ईमानदार तथा सदाचारी हो, और विद्यार्थियो मे विषय के प्रति रुचि उत्पन्न करने का प्रयास करता हो तथा उनसे भी ईमानदार और सदाचारी होने का आग्रह करता हो, प्रत्युत् अच्छा अध्यापक वह है जो परीक्षा मे उत्तीर्ण होने भर के लिये छात्र को नोट्स तैयार करा दे, कक्षा मे अनुपस्थित होने पर भी उसकी उपस्थिति लगा दे, गैस-पेपर्स बता दे, और फिर निरीक्षक के रूप मे परीक्षा पास करने मे बाधक नही, सहायक हो। सामान्यतया अध्यापक की योग्यता और सफलता भी इसी बात से आकी जाती है कि उसके सुपुर्द छात्रों मे कितने प्रतिशत छात्र जो अधिकाश मे विद्यार्थी नही, केवल प्रमाणपत्रार्थी ही होते हैं, परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए। ऐसी अवस्था मे छात्रो, परीक्षाओ और अध्यापको का स्तर गिरता जाय, इसमे आश्चर्य की कोई बात नही है।

परन्तु आर्थिक आवश्यकताओ के अतिरिक्त मानवीय जिज्ञासा-वृत्ति भी अपना काम करती ही है। प्रत्येक समाज में ऋषि, मुनि और आचार्यों की आवश्यकता होती ही है। उनके बिना कोई समाज नही रह सकता, अतएव पूँजीवादी समाज मे भी ऋषि, मुनि तथा आचार्यो की प्रतिष्ठा तो होती ही है।सच तो यह है कि पूँजीवाद ने सापेक्ष रूप मे ऋषि-मुनि और आचार्य कुछ अधिक ही उत्पन्न किये हैं। क्यूरी, आइन्सटीन, रमन, राधाकृष्णन जैसो के बिना इसका काम नहीं चलता और इनकी प्रतिष्ठा भी पर्याप्त होती है। ये जैसा कि हम ऊपर कह आये है, वेतनभोगी उपाध्यायों मे ही निकल आते हैं।

जो बात समझने की है, वह यह है कि आज प्रत्येक को छात्र होना ही पडता है—वह विद्यार्थी भले न हो, प्रमाणपत्रार्थी होना अपरिहार्य है। परन्तु प्रमाणपत्रार्थी होने के साथ बहुत से विद्यार्थी भी होते ही है और उन्हें आव-

श्यकता होती है अध्यापक की, वास्तविक आचार्य-वृत्ति की, अतएव अध्यापकों की विद्यार्थियों में प्रतिष्ठा होती ही है। हमें हमें भली-भांति समझ लेना चाहिये कि कोरे प्रमाणपत्रार्थी और आचार्य में विरोध है, हितसाम्य नहीं, जैसा कि आज से पहले किसी भी अवस्था में नहीं था। प्रमाणपत्रार्थियों द्वारा अध्यापकों को मारा पीटा जाना आज की स्थिति के लिये उतनी ही स्वाभाविक बात है, जितना चोरों के द्वारा पुलिसमैन या मजिस्ट्रेट को मारा पीटा जाना। कोरे प्रमाणपत्रार्थियों द्वारा अध्यापकों का आदर किये जाने की अपेक्षा करना आज ऐसा ही है, जैसा चोरों और अपराधियों द्वारा पुलिसमैन या मजिस्ट्रेट का आदर किये जाने की अपेक्षा करना। जिस प्रकार का और जैसा आदर अपराधियों में भी पुलिसमैन या मजिस्ट्रेट का होता है उसी प्रकार का और वैसा ही आदर तदनुरूप अध्यापक भी कोरे प्रमाणपत्रार्थियों में प्राप्त करते ही हैं।

सौभाग्य से देश आज स्वतन्त्र होकर पूंजीवादी व्यवस्था में समाजवाद की ओर शीघ्रता से बढ़ने में प्रयत्नशील है। समाजवाद में मजदूर सामाजिक सम्मान और सुरक्षा प्राप्त करेगा, उसी में उपाध्याय [वेतनभोगी शैक्षणिक श्रमिक] भी पुनः सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगे और फिर किसी को ऐसा न लगेगा कि वह कह उठे "लानत हज़ार बार बकारे मुदर्रिसी"। हम में से जिनमें आचार्य, मुनि, ऋषि की योग्यता होगी उनको तदनुरूप प्रतिष्ठा मिलेगी। हम उपाध्यायों का कल्याण सभी दृष्टियों से समाज में शीघ्र समाजवादी। व्यवस्था विकसित होने में ही है। विद्यार्थियों में अभीष्ट अनुशासन होने की बात भी इसी से सलग्न हैं।

●

बुन्देलखण्ड कॉलेज,
झांसी, (मध्य प्रदेश)

अनुशासन का अध्यात्म

•

डॉ० रामानन्द तिवारी

अनुशासन को प्राय: कानून, शासन, मनोविज्ञान और शिक्षण की की दृष्टि से देखा जाता है। यह अनुशासन का बाहरी दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण मे अनुशासन एक बाह्य आरोपण बना रहता है। बाह्य आरोपण का अनुशासन वस्तुत शासन है, अनुशासन नही। वास्तविक अनुशासन एक आन्तरिक सस्कार है। अपेक्षाकृत अधिक अनुशासित देशो और समाजो मे आन्तरिक सस्कार के रूप मे ही अनुशासन प्रतिष्ठित हुआ है। आन्तरिक सस्कार के रूप मे अनुशासन की भूमिका आध्यात्मिक है। पश्चिम के जिन देशो को हम भौतिकवादी कहते हैं, उन देशो के अनुशासन और उन्नति का रहस्य हमें अध्यात्म मे ही मिल सकेगा। इसके लिये हमे अध्यात्म के शास्त्रीय रूप को छोडकर उसके मूल रूप को समझना होगा।

हम भारतवासी अपने को अध्यात्म का एकाधिकारी मानते हैं और अनुशासन को प्राय. आरोपण एव शासन के रूप मे समझते रहे है। अत पश्चिमी देशो के अध्यात्म और अनुशासन के अध्यात्मिक आधार को समझना हमारे लिये कठिन होगा। किन्तु यह जितना कठिन होगा उतना आवश्यक भी है। हमारे देश मे, सम्पूर्ण समाज मे, विशेषत: विद्यार्थी समाज में अनुशासनहीनता और उछृखलता छाई हुई है। यह हमारे देश की प्रगति और प्रतिष्ठा के लिये घातक है। अत: हमारे देश के उन्नयन और गौरव के लिये अनुशासन के अध्यात्म को समझना होगा।

अनुशासन का अभिप्राय सामान्य रूप से सभी समझते हैं। राष्ट्रीय गौरव और नैतिक आदर्शों के अनुकूल आचरण के पीछे जो संयम, सस्कार और प्रेरणा काम करते हैं, उन्हें अनुशासन कहते हैं। अध्यात्म के अभिप्राय को दर्शन ने बहुत जटिल बना दिया है, किन्तु लौकिक जीवन की कुछ सीमाओं के सन्दर्भ मे हम उसे सरलता से समझ सकते हैं। इन सीमाओ मे अहकार, स्वार्थ तथा इनसे पोषित होने वाली प्राकृतिक प्रवृत्तिया मुख्य हैं। अहकार

मनुष्य जीवन में प्राकृतिक सीमाओं का संकेतक है। मनुष्य की प्राकृतिक सीमाएँ अहंकार में घटित हो जाती हैं और वह उनकी प्रक्रियाओं का माध्यम बन जाता है। प्रकृति और अहंकार की प्रक्रियाओं की कोई मर्यादा नहीं है। वे उच्छृंखल और अमर्यादित होती हैं। इन्हीं प्रक्रियाओं की मर्यादाहीनता और उच्छृंखलता से समाज में वे विरोध और संघर्ष उत्पन्न होते हैं, जिन्हें अनुशासनहीनता के नाम से पुकारा जाता है।

जहां प्रकृति और अहंकार अपनी संकुचित सीमाओं को लांघकर एक अलौकिक विस्तार की ओर अभिमुख होते हैं, वहीं अध्यात्म का उदय होता है। यह अध्यात्म लोक-जीवन में ओत-प्रोत है। लोक-जीवन में जो कुछ भी श्रेष्ठ और सुन्दर है, वह सब इस अध्यात्म से ही परिपोषित है। अतः इस अध्यात्म को अलौकिक कहना पूर्णतः उचित नहीं। किन्तु लौकिक जीवन के स्वार्थ और अहंकार से ऊपर उठ कर ही इस अध्यात्म का आभास होता है। इस अर्थ में इसे अलौकिक कहना भी उचित है। वस्तुतः अध्यात्म लोक-जीवन में व्याप्त एक अलौकिक तत्त्व है। वेदान्त में इस अध्यात्म को 'ब्रह्म' की संज्ञा दी गई है। किन्तु लोक-जीवन के साथ ब्रह्म का सूत्र कुछ विच्छिन्न हो जाने के कारण वेदान्त का अध्यात्मवाद उपयोगी न हो सका। वेदान्त का यह ब्रह्म जीवन से दूर बना रहा।

वस्तुतः अध्यात्म जीवन का अत्यन्त सरल और सुलभ तत्त्व है। जीवन का स्वास्थ्य और सौंदर्य उसी पर अवलम्बित है। अहंकार और स्वार्थ से ऊपर उठकर हमें उसका आभास मिलता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज की सफलता और अभिवृद्धि मूलतः अध्यात्म पर ही निर्भर है। पश्चिमी देशों की भौतिक अभिवृद्धि भी अध्यात्म के आधार पर ही हुई है। यह बात कुछ विचित्र प्रतीत होगी, किन्तु अध्यात्म का तत्त्व समझने से इसका सत्य प्रकाशित होगा। अध्यात्म के बिना सामाजिक जीवन का निर्वाह और उन्नयन सम्भव नहीं है। अध्यात्म के अनुभव में प्रमाद होने पर ही समाज की अवनति होती है। यही प्रमाद भारत की अवनति का कारण रहा है। अध्यात्म के अनुशीलन से ही पश्चिमी देशों की उन्नति हुई है। जिसे हम राष्ट्रीय चरित्र और अनुशासन कहते हैं, वह अध्यात्म का ही फल है।

अध्यात्म एक सामाजिक भाव है, जो अहंकार और स्वार्थ को मर्यादित एवं परिष्कृत करता है। वह नैतिक आदर्शों, राष्ट्रीय लक्ष्यों आदि के रूप में सामाजिक चेतना में व्याप्त रहता है। व्यक्ति नैतिक आदर्शों और राष्ट्रीय गौरव

का जितना मान करता है, उतना ही हम उसे आध्यात्मिक कह सकते हैं। दर्शन इस अध्यात्म को चिन्तन मानता है। किन्तु लौकिक दृष्टि से समाज मे इस अध्यात्म का निर्माण और विकास होता है। इसके मुख्य निर्माता तो समाज के नेता ही होते हैं, किन्तु समाज का प्रत्येक व्यक्ति इसके निर्माण मे योग देता है। व्यक्तिगत स्वार्थ और अहकार से ऊपर व्यक्ति के भाव और आचरण मे जो अतिशय होता है, उसी से समाज और देश के व्यापक अध्यात्म की रचना होती है। यह अध्यात्म एक सूक्ष्म तत्त्व के रूप मे समाज की चेतना मे व्याप्त रहता है और व्यक्तियो के व्यवहार को मर्यादित एव अनुशासित करता है। लौकिक अर्थों मे उसे नैतिक चेतना, राष्ट्रीय भावना, सामाजिक मर्यादा आदि कह सकते हैं, किन्तु ये सब व्यक्तिगत स्वार्थ और अहकार की सीमाओ से परे होने के कारण मूलतः आध्यात्मिक ही होते हैं। अध्यात्म इन सब अहकारातीत भावो का सामान्य तत्त्व है। इसे सामाजिक समष्टि का सस्कार कह सकते हैं। समष्टि होने के कारण यह शक्तिमान भी होता है। हम श्रद्धा से इसका अनुशीलन करते है, किन्तु यह हमे अपनी शक्ति से अनुशासित भी करता है।

सामाजिक समष्टि का यही अध्यात्म अनुशासन का मूल रहस्य है। इसी अध्यात्म के रूप मे अन्य देशो और समाजो मे नैतिक और राष्ट्रीय अनुशासन अनुष्ठित हुआ है। उन समाजो के कर्णधारो ने धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि अनेक क्षेत्रो मे इस समष्टि के व्यापक और स्थायी सत्य का निर्माण एव अनुष्ठान किया है। इसका अनुष्ठान नागरिकों के लिये एक प्रेरणा बन कर अनुशासन का सहज सूत्र बन गया। समष्टि का यह अध्यात्म भगवान का साक्षात रूप है, जो अन्तर्यामी बन कर व्यक्तियों के व्यवहार को अनुशासित करता है। इस अध्यात्म का आन्तरिक अनुशासन व्यक्तियों की उच्छृखलता को मर्यादित करता है। इस प्रकार समष्टि का यह अध्यात्म व्यक्ति का प्रभु है। किन्तु दूसरी ओर यह अध्यात्म व्यक्ति के अस्तित्त्व को असीम गौरव और महिमा से मण्डित करता है। यही गौरव और महिमा व्यक्ति की प्रेरणा का आन्तरिक रहस्य है।

छात्रो और लोक समाज मे उक्त आन्तरिक रहस्य के आधार पर ही अनुशासन की प्रतिष्ठा हो सकती है। प्राचीन भारत मे अनुशासित जीवन के श्रेष्ठतम उदाहरण मिल सकते हैं। ये उदाहरण भी अनुशासन के उक्त रहस्य को प्रमाणित करते हैं। अन्य देशों और समाजो का अनुशासित जीवन भी इसका समर्थन करता है। अनुशासन एक आन्तरिक और आत्मिक प्रश्न है।

वह कानून, शासन और शिक्षण का बाहरी प्रश्न नहीं है। कानून में दण्ड के भय से नागरिकों के व्यवहार को नियन्त्रित किया जा सकता है, किन्तु यह नियन्त्रण और दण्ड-विधान शक्ति के द्वारा शासन का ही आरोपण है। शासन के द्वारा आरोपित यह नियन्त्रण स्वाभाविक और वास्तविक अनुशासन नहीं होता। शासन का प्रभुत्व आन्तरिक अध्यात्म के साम्य को खण्डित करता है और आत्मानुशासन को आच्छन्न बना देता है। शासन और प्रभुत्व के द्वारा अनुशासित व्यक्ति शासन की अनुपस्थिति में उच्छृंखल हो जाते हैं। यह उच्छृंखलता शासन के द्वारा होने वाले अनुचित दमन की प्रतिक्रिया होती है। माता-पिता की अनुपस्थिति में घर में बच्चों के व्यवहार और अध्यापकों की अनुपस्थिति में विद्यार्थियों के व्यवहार में इस प्रतिक्रिया के परिचित उदाहरण मिलते हैं। पिछले दिनों में विद्यार्थियों के आन्दोलनों तथा जनता के उत्पातों में इस प्रतिक्रिया के कुछ उग्र रूप देखने में आये हैं। इन प्रतिक्रियाओं की शासकीय प्रतिक्रिया दमन के रूप में हुई है। यह दमन उग्रता के प्रति उग्रता का व्यवहार है। दो उग्रताएं मिलकर अनुशासन और कल्याण की स्थापना नहीं कर सकती। उग्रता की इस प्रतियोगिता में अन्ततः समाज की उग्रता की विजय होती है और यह उग्रता क्रांति बन कर नये शासन की स्थापना करती है। उग्रताओं के इस संघर्ष में शासन के परिवर्तन की भूमिका हमारे देश में बन रही है। क्रांति के बाद समाज और शासन निर्माण और अनुशासन की दिशाओं में नये सहयोग के मार्ग खोजते हैं।

कानून और शासन के बाहरी आरोपण से जिस अनुशासन की स्थापना होती है, वह अनुशासन बाहरी, अस्थायी और अस्वाभाविक होता है। आन्तरिक और आत्मिक अनुशासन के अभाव में ही यह मार्ग अपनाया जाता है। किन्तु यह किसी भी समाज और देश के कल्याण का स्थायी मार्ग नहीं बन सकता। शिक्षण और उपदेश भी आन्तरिक और स्थायी अनुशासन की स्थापना के लिये पर्याप्त नहीं है। इनमें भी शासन के प्रभुत्व की गन्ध रहती है और वह अध्यात्म के साम्य को भंग कर अनुशासन को आरोपण बना देता है। शिक्षण और उपदेश की अपेक्षा जीवन्त उदाहरण के द्वारा छात्रों और नागरिकों को अनुशासन की गहरी प्रेरणा मिलती है। वस्तुतः जीवन्त आचरण का उदाहरण ही अनुशासन की आन्तरिक प्रेरणा बन सकता है। उदाहरण की अन्तर्ज्योति लोक के मार्ग का दीपक बन जाती है। इतना अवश्य है कि एक व्यक्ति के उदाहरण का प्रकाश अन्ततः सीमित ही रहता है। किन्तु राष्ट्र और समाज की परम्परा में प्रज्वलित होने वाले आदर्शों के

असंख्य दीपक मिल कर एक राष्ट्रीय सूर्य का निर्माण करते हैं, जो सम्पूर्ण राष्ट्र के लिये प्रकाश और प्रेरणा का स्रोत तथा अर्चना का आस्पद बन जाता है। वेदो मे सूर्य को जगत की आत्मा कहते हैं। यह राष्ट्रीय सूर्य राष्ट्र की आत्मा बन कर प्रत्येक व्यक्ति के अन्त करण को प्रेरित और प्रकाशित करता है। अन्तर्यामी बन कर यह राष्ट्र के जीवन मे अनुशासन की मर्यादा का अनुष्ठान करता है।

राष्ट्रीय आचरण और आदर्शों के ऐसे राष्ट्रीय सूर्य के अभाव मे ही हमारा राष्ट्रीय जीवन उच्छृंखलता के अन्धकार मे भटक रहा हैं। खेद का विषय है कि जिन अनेकों महापुरुषो और महात्माओं का इतिहास मे यशोगान होता रहा है, वे भी हमारे राष्ट्रीय जीवन को प्रेरित और प्रकाशित करने वाले आत्मिक सूर्य का निर्माण नही कर सके। किन्तु राष्ट्रीय सूर्य की रचना और वन्दना ही अनुशासन का एक मात्र मार्ग है। उसके बिना हमारा राष्ट्रीय जीवन अन्धकार मे ही भटकता रहेगा। राष्ट्रीय आदर्श, राष्ट्रीय गौरव और राष्ट्रीय भावना की अन्तर्गत प्रेरणा ही अन्तर्यामी ब्रह्म बनकर हमारे राष्ट्रीय जीवन में आन्तरिक आत्मानुशासन का अनुष्ठान कर सकती है।

महारानी श्री जया कॉलेज,
भरतपुर, (राजस्थान)

अनुशासन की तात्त्विक व्याख्या और शिक्षा में उसका महत्त्व

•

डॉ० चन्द्रशेखर भट्ट

अनुशासन शब्द 'अनु' उपसर्ग पूर्वक संस्कृत की 'शास्' धातु से बना है। इस धातु का प्रयोग शिक्षा देने के अर्थ में होता है। शिक्षा देने वाला शास्ता कहलाता है। भगवान् बुद्ध को शास्ता कहा गया है। वे लोगों को सदाचार और अहिंसा की शिक्षा देते थे। राजा भी शास्ता होता है। वह दण्ड देकर अपराधी को सदाचार की शिक्षा देता है। उपदेशक और राजा दोनों का शिक्षा देने का तरीका अलग-अलग है। अध्यापक के शिक्षा देने का तरीका इन दोनों से विशिष्ट होता है। उपदेशक और राजा के प्रति शासित विरोध पूर्वक अथवा तटस्था पूर्वक व्यवहार करते है, जब कि अध्यापक के प्रति शिक्षार्थी शिष्य-भाव से उन्मुख होकर शिक्षा प्राप्त करते हैं। यही कारण है कि अध्यापक में शिक्षार्थी के प्रति सहज आत्मीयता का भाव होता है। इसी आत्मीयता के कारण अध्यापक शिष्य को शिष्ट—आदर्श नागरिकता के गुणों से विभूषित—बनाकर समाज के सामने प्रस्तुत करता है। जहाँ शास्ता-उपदेशक के शासन को मानना धर्मानुगति है, शासक-राजा के शासन को स्वीकार करना राज्य की व्यवस्था को मानना है, वहाँ अध्यापक का शिष्य बनना शिष्टाचरण है—अनुशासन है। शासन में शासक और शासित दो पक्ष होते हैं, जब कि अनुशासन मे एक ही पक्ष—शिष्य से शिष्ट अवस्था तक गति करता है। अध्यापक तो इस गति का नियन्ता मात्र है। वह इस सारी गति को अपने मे ही समा लेता है और शिष्य को नया व्यक्तित्व प्रदान करके समाज मे प्रस्तुत करता है। जैसे दाम्पत्य-जीवन मे पति-पत्नी के व्यक्तित्व एकीभूत हो जाते है, वैसा ही अनुशासन में होता है।

प्राचीन काल में गुरुकुल मे विद्यार्थी समित्पाणि होकर जाता था, गुरु ज्ञान-प्रभा से दीप्त—आविर्भूत ज्योति होते थे। समिधा हाथ में लेकर जाना प्रतीक है। इस माध्याम से विद्यार्थी घोषित करता था, कि वह शुष्क ईंधन के

समान है और ज्योति पाने का आकांक्षी है। लोक मे कहावत है—'दिये से दिया जलता है।' इस कहावत को गुरुकुल में पूरा उतरता हुआ देखा जा सकता था। वहाँ ज्ञान-दीप्त गुरु शिष्य मे ज्ञान की ज्योति जगाता था।

राजा का शासन राज्यादेश के रूप मे प्रकट होता है और उपदेशक का शासन धर्मादेश के रूप मे सामने आता है, परन्तु अध्यापक का शासन आदेश नहीं, आदर्श के रूप मे शिष्य को प्राप्त होता है। अध्यापक शिष्य को विद्या-चक्षु प्रदान करता है, जिससे ससार मे भले-बुरे का परीक्षण करता हुआ, वह अनुवर्तन करे। यह आदेश देकर आदेष्टा के मस्तिष्क को अपने पास नहीं रख लेता, वरन् दिशा-दर्शन करके उसे आगे अपनी दिशा खोजने के लिए शिष्य को सौंप देता है। इसीलिए उसके व्यापार को 'शासन' न कह कर 'अनुशासन' कहा गया है।

अनुशासन मे आदर्श का बडा महत्व है। शिक्षा का आधार आदेश न होकर, आदर्श ही है। बालक का मन पारदर्शी निर्मल शीशे के समान होता है। अध्यापक उसे विद्या का लेप चढाकर दर्पण बनाता है। दर्पण को सस्कृत में आदर्श कहते हैं। अध्यापक विद्यार्थी को आदर्श बनाता है। सासारिक व्यवहार मे वह अपने सामने तीन प्रकार के बिम्ब पाता है, पहले शीशे जैसे पारदर्शी, दूसरे अन्धकाराच्छन्न कृष्णाकार और तीसरे ज्योतिर्मय। अध्यापक द्वारा निर्मित यह आदर्श तीसरे को प्रतिबिम्बित करता है। दूसरे से स्वय तमसावृत हो जाता है और प्रथम को प्रतिबिम्बित नहीं करता। अग्रेजी में आदर्श के समकक्ष Ideal शब्द है, जो व्यक्ति से पृथक रहकर उसे प्रेरणा देता है, जिसके विषय मे यह भी कहा जाता है कि वह कभी प्राप्त नही किया जा सकता। इनके विपरीत आदर्श स्वय व्यक्ति मे ही होता है, जो पग-पग पर उसे मार्ग दिखाता है। Ideal अप्राप्य उच्च-लक्ष्य हो सकता है, परन्तु आदर्श तो व्यक्ति मे ही रहता है और सचाई को उसके कार्यों द्वारा अभिव्यक्त कराता है तथा उसे कलुषों से बचाता है। अनुशासन का सम्बन्ध व्यक्ति मे ऐसा आदर्श उत्पन्न करने से है।

प्राकृतिक-व्यापार मे सर्वत्र एक नियमन-शीलता देखी जाती है। सूर्य समय पर उदित होकर अन्धकार का नाश करता है। कमलिनी सूर्य को देख कर खिलती है। चन्द्रमा रात्रि मे ही उदित होता है और कुमुदिनी को विकसित करता है। दिन और रात्रि एक दूसरे का अनुवर्तन करते हैं। ऋतुएँ क्रमशः बदलती रहती हैं, सारे नक्षत्र शून्य आकाश मे चक्कर लगाया करते हैं। प्रकृति का यह व्यापार नियमन शीलता के कारण ही है। प्रकृति मे जो महत्व नियमन शीलता का है, वही महत्त्व जीवन मे अनुशासन का है।

विवेक का व्यावहारिक-क्षेत्र मे उपयोग ही अनुशासन है। जब व्यक्ति अपने मे जगे हुए आदर्श के अनुरूप अपने सारे क्रिया-कलापो, विचारों और व्यवस्थाओ को एक निश्चित साँचे मे ढाल लेता है, तब उसका जीवन अनुशासित होता है। तब उसे शिष्ट सज्ञा दी जा सकती है। शिष्ट व्यक्ति एक निश्चित नियम, योजना या व्यवस्था के अनुकूल कार्य करता है। कर्त्तव्य-परायणता, दत्तचित्तता लगन आदि अनुशासन के ही दूसरे स्वरूप हैं।

अनुशासन की परिधि बडी व्यापक है। हमारे वैयक्तिक, पारिवारिक सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रो मे, अनुशासन के बिना एक कदम भी आगे बढ़ना सम्भव नही है। समाज की कोई भी सस्था उसके बिना चल नही सकती। जीवन मे आत्म-सयम अनुशासन का ही अग है। पारिवारिक-समरसता अनुशासन मे ही प्राप्त होती है। समाज की एकता अनुशासन के बिना सुरक्षित नही रह सकती। सच्ची नागरिक-भावना का उद्भव राष्ट्र मे अनुशासन से ही सम्भव है। यही क्यों, क्षेत्र, जाति आदि के स्वार्थों से ऊपर उठकर विश्वैक्य की भावना को जगाने के लिए भी अनुशासन की आवश्यकता है।

अनुशासन के सर्वातिशायी महत्त्व को देख कर, यह प्रश्न होना स्वाभाविक ही है कि अनुशासन की भावना जगती कहाँ है ? और उसका शिक्षा में क्या महत्व है ?

ऊपर कहा जा चुका है कि शिक्षा अनुशासन से अभिन्न है। इतना अवश्य है कि ऐसी शिक्षा, जो अध्यापक-शिष्य सम्बन्ध से आती है, ही अनुशासन है। अन्य सम्बन्धों से बरबस लादी गई शिक्षा शासन है, अनुशासन नही। शासन शासक और शासित जैसे वर्गों में समाज को बाँट देता है। जबकि अनुशासन भेद-बुद्धि को सदा के लिए समाप्त कर देता है। छोटे-बडे सभी लक्ष्यो की सिद्धि के लिए अनुशासन की अत्यन्त आवश्यकता है। इसलिए अनुशासनयुक्त जीवन बिताने का अभ्यास करना होगा। शिक्षा देते समय अध्यापक ने शिष्य मे एक आदर्श जगाया है, आगे उसी से प्रेरणा लेकर कर्त्तव्य कर्मों मे लगे रहने से लक्ष्य-सिद्धि निश्चित है।

अध्यापक और शिष्य अनुशासन के दो शरीर है। इस सम्बन्ध से वे एक हो जाते हैं। शिष्य सर्वतोभावेन अध्यापक के प्रति समर्पित हो जाता है और अध्यापक शिष्य मे स्वय को व्यक्त करने के लिए तत्पर हो जाता है। अपने बीच की दूरी को दोनों आधी-आधी पार करते हैं। यदि ऐसा न करें,

तो अध्यापक का सिखाना और शिष्य का कुछ भी सीख पाना सम्भव नही है। अब परा-मनोविज्ञान की खोजो ने यह प्रमाणित कर दिया है, कि अध्यापक और शिष्य मे कोई अतीन्द्रिय-सम्बन्ध स्थापित हो जाता है । यह सम्बन्ध अनुशासन का है। इस सम्बन्ध को गीता मे देखा जा सकता है। अर्जुन प्रपन्नावस्था की प्राप्ति के लिए कृष्ण के प्रति आत्म-समर्पण करता है—'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'। कृष्ण भी उसमे निष्ठा जगाने के लिए कहते हैं—'मन्मना भव'। जब शिष्य स्वार्पण-पूर्वक अध्यापक-मय हो जाय, तभी अनुशासन सम्भव है, तभी वह कह सकता है—'नष्टो मोह. स्मृतिर्लब्धा ...स्थितोऽस्मि गत सन्देह:'। सारे सन्देह और मोह की निवृत्ति और विवेक की सिद्धि अनुशासन से सम्भव है।

शिक्षक और शिक्षित मे वैचारिक एकतानता और मानसिक तादात्म्य अनुशासन से ही सम्भव है। तन्त्र-साधना मे गुरु और साधक शिष्य मे ऐसा भाव उत्पन्न होने पर, गुरु शिष्य मे शक्तिपात करता है । व्यावहारिक-स्तर पर भी ऐसी एकतानता मे शिष्य को प्रभूत लाभ होता है । यह प्राचीन मान्यता चली आती है, कि हर व्यक्ति ज्ञान-विज्ञान के हर किसी क्षेत्र मे सिद्धहस्त हो सकता है, जब कि ऐसा सम्भव नही है। जिस क्षेत्र मे शिष्य दक्षता प्राप्त करना चाहता है, उसके लिये उसे अपनी योग्यता प्रमाणित करनी होगी। अनुशासित-जीवन ही शिष्य की योग्यता का प्रमाण है । शिष्य की योग्यता ही गुरु को ज्ञान-दान के लिए उत्सुक बनाती है। गुरु तो कामदुघा के समान है। उससे ज्ञान दुहना शिष्य का काम है। उसे सच्चा वत्स बनना होगा। वह जो कुछ है, प्रकृति की देन है, पर वह क्या बनना चाहता है, यह उसकी सस्कृति साधना का अग है। उसे अपने सस्कृत-स्वभाव को प्रमाणित करना होगा।

हिन्दी की 'सीखना' क्रिया शिक्षा के वास्तविक भाव को स्पष्ट कर देती है। शिष्य सीखना चाहेगा और इसके लिए प्रयत्नशील होगा, तो सीख पायेगा। अध्यापक तो उसमे प्रेरणा मात्र दे सकता है। शिक्षा पढना-सीखना मात्र नहीं है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति शिष्ट बनता है—शिष्ट-सम्मत जीवन यापन की पद्धति मे अपने जीवन को ढालता है। इसके लिए उसे अध्यापक का आश्रय लेना होगा और अपने व्यक्तित्व मे आदर्श जगाना होगा। चूंकि इस सारी साधना मे शिष्य को ही पहल व प्रयत्न करना है, इसलिए इसे अनुशिक्षण नाम दिया जा सकता है, जो अनुशासन का पर्यायवाची है । शिक्षा दी नहीं जाती, वरन् ली जाती है । शिक्षा देने वाला तो निमित्त

मात्र है, शिक्षा लेने वाला ही प्रमुख है । इस व्यापार का वही एक पक्ष है, जिसमे दूसरा पक्ष भी समाया हुआ है । इसलिए शिक्षा अनुशासन का ही नाम है । उससे भिन्न राजा और उपदेशक का शासन है, जिसका जीवन मे एकागी महत्व है । श्रद्धा, आस्था और सुदृढ विश्वास जीवन मे पद-पद पर सम्बल देने वाले व्यक्ति के सहचर हैं, जिनकी प्राप्ति अनुशासन से ही सम्भव है ।

राज्य शिक्षा सस्थान,
उदयपुर.

अस्वच्छ बिम्ब का स्वच्छ प्रतिबिम्ब क्यों कर हो ?

•

प्रो० शम्भूसिंह मनोहर

अनुशासनहीनता आज के शिक्षा-जगत् की एक ज्वलन्त समस्या है। पिछले कुछ वर्षों मे तो इसने सक्रामक रूप धारण कर लिया है, जिसके फलस्वरूप आए दिन विद्यार्थियो द्वारा हिंसात्मक आन्दोलनों, उपद्रवों अथवा परीक्षा-भवनो मे खुले-आम छुरेबाजी की घटनाओ के समाचार पढ़ने को मिलते है।

हमारे शिक्षा-शास्त्री सिर खुजला-खुजला कर इसके कारणों की मीमांसा कर चुके हैं और इसके निवारण के अनेक उपाय भी सुझा चुके हैं, परन्तु यह समस्या अगद के पैर की तरह ज्यों की त्यो अटल होकर जमी है। बल्कि, उल्टे यह दिनोंदिन बढती ही जा रही है। आखिर इसका सबब क्या है ? क्या यह समस्या अचानक पैदा हो गई ? अथवा पिछले कुछ वर्षों मे क्या कुछ ऐसी परिस्थितियां बनी, जिन्होने इसको गभीर रूप से उभार दिया ? वस्तुत: ये सब प्रश्न विचारणीय हैं, क्योकि बिना इसकी उत्पत्ति की सही पृष्ठभूमि को समझे, हम इससे कदापि निस्तार नही पा सकते।

आज हमारे अधिकाश शिक्षाविद् अनुशासनहीनता के जो कारण बतला रहे हैं, वे वस्तुत: निरे सैद्धान्तिक एव उनकी उर्वर कल्पना की उपज मात्र हैं। यथार्थ कारण मूल वस्तुस्थिति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसीलिए उनके निष्कर्ष प्लेनिंग कमीशन की योजनाओ की तरह एकेडेमिक से अधिक महत्त्व नहीं रखते। अत: यदि हमे इस समस्या से जूझना ही है, तो थोडा सा आत्म-दर्शन, किंवा सत्य-कथन करना होगा। प्रस्तुत लेख मे इसी दृष्टि से मैं इस समस्या पर अपने विचार रख रहा हूँ।

मेरे विचार से विद्यार्थियो में अनुशासनहीनता का श्रीगणेश उसी दिन से हो गया था, जिस दिन हमारे राजनीतिक नेताओ ने, जिनमे राष्ट्रपिता

महात्मा गांधी सर्व-प्रमुख है, प्रथम वार अपने असहयोग आन्दोलन मे कूद पडने के लिए देश के विद्यार्थी-वर्ग को आह्वान किया था। यह एक चौंकाने वाला कथन हो सकता है, परन्तु उतना ही कटु सत्य भी ! मेरी यह दृढ धारणा है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अनजाने ही एक ऐसी परम्परागत मर्यादा को तोड दिया, जो आगे चलकर भस्मासुर के वरदान की तरह उन्हीं की नीतियों के लिए अभिशाप बन गई। दीपक प्रकाश देता है, परन्तु उसके साथ कजल भी अनिवार्यत उत्पन्न हो जाता है। राष्ट्रपिता के इस आह्वान से हमारे विद्यार्थी-वर्ग मे, जहा एक ओर राजनीतिक चेतना का सचार हुआ, वहा दूसरी ओर अनुशासनहीनता की कालिमा भी उसके साथ ही पैदा हो गई और शनैः शनैः राजनीतिक परिस्थितियों व घटना-चक्र के साथ यह उत्तरोत्तर घनीभूत होती जा रही है।

आप एक वार किसी भी परपरागत मूल्य या मर्यादा को तोड दीजिए, चाहे वह कितने ही श्रेष्ठ आदर्श या महत् उद्देश्य के लिए क्यो न हो, उसके बाद आप यह आशा नहीं कर सकते कि वह सदा उस श्रेष्ठ कार्य विशेष के लिए ही तोडी जाएगी। दीवार एक वार टूटी, कि टूटी। मैं यह निस्सकोच एव दृढ-कठ कहना चाहता हूँ कि हमारे उक्त राजनीतिक नेताओ से पहले किसी भी लोकनायक ने, यहा तक कि विदेशी शासक-वर्ग ने भी शिक्षण-सस्थाओ की इस परम्परागत पवित्रता व मर्यादा को राजनीतिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए कभी नही तोडा था।

प्राचीन काल में राजाओ तक ने आश्रमों व गुरुकुलो की मर्यादा की रक्षा की है तथा उसे राजनीति की छाया से सदा मुक्त रखा है। यहाँ तक कि अग्रेजों ने भी देश मे चाहे कितना ही दमन-चक्र क्यो न चलाया हो तथा शिक्षा-प्रणाली को अपनी शासन-व्यवस्था के अनुरूप क्यों न ढाला हो, परन्तु उन्होंने विद्यार्थियो को अपने परम्परागत मूल्यों व आदर्शों के प्रति अना-स्थावान वनाकर अनुशासनहीनता को प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी रूप मे प्रश्रय व प्रोत्साहन नही दिया। परन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व व पश्चात् हमारे ही ही कुछ मूर्धन्य नेताओ ने इस शैक्षणिक पवित्रता की रक्षा न कर एक भयकर भूल की, जिसका दुष्परिणाम आज एक सर्वग्राही एव सर्व व्यापक विभीषिका के रूप मे हम भोग रहे हैं और अव तो यह मर्ज बेकाबू सा हो गया है।

इसका यह तात्पर्य नहीं कि इस समस्या का सूत्रपात केवल इसी कारण से हुआ, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व शिक्षण-

संस्थाओं में, जो राजनीति का अवांछित प्रवेश कराया गया वह अनुशासनहीनता की समस्या को जन्म देने में सर्वप्रमुख हेतु रहा है।

इसके फलस्वरूप शिक्षण-संस्थाओं के वातावरण में ही एक आमूल-चूल परिवर्तन हो गया। गुरु व शिष्य के स्नेह और श्रद्धा पर आधारित युग-युग से चले आ रहे प्राचीन मूल्य सहसा ध्वस्त होने लगे। शिक्षण-संस्थाओं में ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न परिषदों का स्थान अब ले लिया इन यूनियनों ने तथा विद्यार्थियों के अभीष्ट उद्देश्य पूर्ति के साधन बन गये नारे, आन्दोलन और हड़तालें। शिक्षा-जगत में यह परिवर्तन बड़ा ही दुर्भाग्यपूर्ण था।

इसके बाद अनुशासनहीनता के लिए गौण रूप से जिम्मेदार हमारी तथाकथित धर्म-निरपेक्ष नीति है, जिसने समाज में बचे खुचे नैतिक-मूल्यों को ही चौपट कर दिया। हम यह भूल गए कि धर्म के बाह्य आचारों व क्रिया-कलापों के मूल में जो नैतिकता के सार्वजनीन, सार्वकालिक एवं सार्वत्रिक आदर्श छिपे हुए हैं, वे ही तो सामाजिक चरित्र के मेरुदण्ड हैं। अनुशासित जीवन की आधार शिला हैं, परन्तु हमने धर्म-निरपेक्षता के नाम पर उन नैतिक-मूल्यों को भी उखाड़ फेंका। सब धर्मों के गुणों का ग्रहण एक बात है और सब धर्मों के तत्त्वों को तिलांजलि देना दूसरी बात। हमने धर्म के इस नकारात्मक या निषेधात्मक रूप को ही अपनी नीति का आधार बनाया, जबकि हमारा आग्रह उसके विधेयात्मक उदार स्वरूप के ग्रहण की ओर होना चाहिए था, जिसमें सभी धर्मों के उत्कृष्ट तत्त्वों तथा सर्वोच्च नैतिक-मूल्यों का समाहार हो जाता है। परन्तु पाश्चात्य संस्कृति में पले हमारे इन नेताओं के यह बात समझ में आनी मुश्किल थी। वे यह भूल गए कि अपने पदार्थवादी दर्शन व भौतिकवादी समृद्धि के बावजूद भी पश्चिम ने अपनी धार्मिक परम्पराओं की हत्या को अपनी देश-नीति का अंग नहीं बनाया। आज भी पश्चिम के लोग हर रविवार को श्रद्धा से गिरजों में सामूहिक पूजा में भाग लेते देखे जा सकते हैं। परन्तु हमारे यहां नई पीढ़ी के कितने युवक या युवतियां नियमित रूप से अपनी धार्मिक परम्पराओं का पालन करते हैं ? वस्तुतः हमारे नेताओं ने देश की नई पीढ़ी को धर्महीन (Dereligionise) बनाकर प्रकारान्तर से उसे अनास्थावान और नैतिकता से ही शून्य कर दिया है, जिसके परिणाम दूरगामी होंगे।

इन सबके फलस्वरूप स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् हमारे समाज में चारित्रिक पतन की एक बाढ़-सी आ गई। इसने बचे हुए सारे मान-मूल्यों को

ही ध्वस्त कर दिया। छात्रो ने देखा कि जब 'विधि' (नियम) के विधाता हमारे ये विधायक विधान-सभाओ व ससद-भवनों मे परस्पर जूतों के माध्यम से अपने विचारो का आदान-प्रदान करते है, घूसों और मुक्को से अपने विचार-स्वातन्त्र्य का उद्घोष करते हैं तथा गालियो की बौछार से अपनी वक्तृत्व-कला के नित नये रेकार्ड स्थापित करते हैं, तो भला वे उनसे पीछे क्यों रहते ? उन्होंने देखा कि शिक्षरग-सस्थाओ मे कोई भी कार्य, चाहे वह यूनियन के उद्घाटन का हो अथवा उसके समापन का (मेरी दृष्टि मे दोनों पर्याय हैं!), बिना किसी नेता का आशीर्वाद पाये पूरा नहीं होता, तो भला उनमे अपने विद्वान् अध्यापको की अपेक्षा उन सफेदपोश एवं वाक्पटु, किन्तु ज्ञान मे निरे पोंगे नेताओ को अधिक सम्मान देने की मनोवृत्ति क्यो न पनपती ? उन्होंने यह भी देखा कि शिक्षरग-सस्था के आचार्य द्वारा कोई सही, किन्तु सख्त कदम उठाये जाने पर जब किसी छात्र ने भूख हडताल की तो करुणा-विह्वल मत्री महोदय स्वय अपने कर-कमलो से उसे मतरे का रस पिलाकर उसका अनशन तोडने हेतु आ धमके। ऐसी स्थिति में बेचारे अध्यापको या शिक्षरग–सस्थाओ के आचार्यों की मर्यादा भला कहा रहती ? स्पष्ट ही अनुशासनहीनता को इससे प्रत्यक्ष प्रोत्साहन मिला है। अत मेरी दृष्टि मे आज की देशव्यापी अनुशासनहीनता के लिए सर्वाधिक दोषी हमारे राजनीतिक नेता हैं। रही बात शिक्षको की, उनका हाल और भी बुरा है। वे एक ओर समाज के उपेक्षापूर्ण व्यवहार मे व्यथित हैं, तो दूसरी ओर शिक्षाधिकारियो की ब्यूरोक्रेटिक मनोवृत्ति से आक्रान्त। हमारे शिक्षा-मत्रालयो में जो अधिकारी नियुक्त हैं—मत्रियो, सचिवो आदि से लेकर निचले पदाधिकारियो तक—उनमे अधिकाश का शिक्षा, शिक्षको तथा शिक्षा-जगत की समस्याओं से कोई वास्ता नही है। उनके द्वारा शिक्षा जैसे सात्त्विक कार्य की प्रगति की बात सोचना एक दुराशा मात्र है। वे शिक्षको को असहाय जन्तु से अधिक कुछ नही समझते, जो उनकी फाइलों का कैदी और उनकी दया का पात्र है, जिसे वे अपनी कलम के एक इशारे से जैसे चाहें नचा सकते हैं। यदि आपको मेरे कथन मे अत्युक्ति लगे तो तनिक उन अध्यापको से पूछ देखिये जो सचिवालय या एसपैक्टोरेट के बरामदों मे आपको रोज चक्कर काटते मिलते हैं। शिक्षा-सचिवों की तो बात ही क्या, जो किसी सामान्य अध्यापक से बात करने मे भी अपनी तौहीन समझते हैं, उनके कार्यालयाधिकारी भी इस कदर अहमन्यता से ग्रस्त हैं, मानों वे ही उनके भाग्य विधाता हैं, आका हैं। और वास्तव में वे हैं भी, क्योंकि वे जहा चाहे बेचारे निरीह शिक्षक का तबादला कर सकते हैं तथा उसकी गाढी कमाई के वेतन के

लिये उसे महिनों बरसो दर-दर भटकने को मजबूर कर सकते हैं। शिक्षको के साथ जो भेडियो की तरह गुर्राकर पेश आते हैं, ऐसी जल्लादी मनोवृत्ति वाले अधिकारियो के हाथो मे आज हमने अपने शिक्षक का भविष्य सौंप रखा है। बेचारे प्राइमरी स्कूल के अध्यापक का भविष्य तो और भी अधकार-मय तथा स्थिति अत्यधिक दयनीय है। जबसे प्राइमरी स्कूलों को पचायतो के नीचे लगाया गया है, तब से ही उन स्कूलो के अध्यापको की दुर्गति का समारभ हो गया है। ।वे सरपच के हाथों की कठपुतली बना दिये गए हैं। उनके स्वतत्र और निर्भीक व्यक्तित्व की हमनें सामूहिक हत्या कर दी है। तेली के बैल की तरह दुनिया भर की अला-बला उनके सिर पर लाद दी जाती है। यहा तक कि जन-गणना जैसे अवान्तर और दर-दर भटकने के काम भी आज भारत का अध्यापक करता है। ऊपर से हम चिल्लाते हैं कि अध्यापक राष्ट्र के निर्माता है, भाग्य-विधायक हैं और न जाने क्या-क्या ! परन्तु क्या राष्ट्र-निर्माताओ की सामाजिक प्रतिष्ठा की भी हमने कभी चिन्ता की है ? वस्तुत आज का अध्यापक, विशेषत प्राइमरी स्कूल का अध्यापक अपने अर्थाभाव से उतना पीडित नही है, जितना इन राजनीतिक नेताओं की खुराफातो से अपनी प्रतिष्ठा और आत्म-सम्मान को बनाये रखने के लिये चिन्तित है। स्वभावत: आज का अध्यापक असतुष्ट है और उसका वही अस-न्तोष नाना रूपो मे छात्र-वर्ग मे प्रतिच्छादित हो रहा है। अत अनुशासन-हीनता के निवारणार्थ हमे इस पृष्ठ भूमि को नही भूल जाना चाहिए।

रही बात विश्वविद्यालय जैसी स्वायत्तशासी सस्थाओ व उनमे नियुक्त शिक्षको की। यहा भी राजनीति का कीटाणु प्रवेश कर चुका है। सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि विश्वविद्यालयो के अधिकाश उच्च पदों पर ऐसे व्यक्ति हैं, जो या तो स्वय राजनीति के दगल के सफल खिलाडी हैं या किसी सफल खिलाडी के हाथो की कठपुतली हैं। बहुत कम व्यक्ति ऐसे हैं जो सच्चे माने में विशुद्ध शिक्षक, ज्ञानार्थी या विद्वान कहे जा सकते हैं। ऐसी स्थिति मे विश्वविद्यालय यदि दलगत राजनीति के अखाडे बन गए हो तथा उनमे नियुक्त आचार्य एव अध्यक्ष नामधारी व्यक्ति मठाधीश के ही रूपान्तर रह गए हो तो क्या आश्चर्य है। देश मे आज अधिकाश ऐसे ही मठाधीशो का जाल बिछा हुआ है। सर-स्वती के सच्चे पुजारियो और ज्ञान के अनन्य आराधकों की संख्या आज नगण्य सी हो गई है। पाठ्य-क्रमो मे अपनी या अपनों द्वारा लिखित घटिया और घासलेटी पुस्तकें नियत करने आदि सैकडो स्वार्थपूर्ण कार्यो के लिये वे अपने पद को अक्षय कवच बनाकर जो भ्रष्टाचरण करते हैं—वह सब आज

के विद्यार्थी से छिपा नही है। इन सबको देख उसके मन मे विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है, जो निरी स्वाभाविक है। यह विद्रोह, अन्याय और पक्षपात की सहज प्रतिक्रिया है, जिसे रोका नही जा सकता। विद्यार्थी देखते हैं कि जब उनके आचार्य या अध्यापक अपनी वेतन-वृद्धि के लिए कभी मौन प्रदर्शन करते हैं, व कभी मुखर आन्दोलन, तो भला वे भी उनके पद-चिह्नो पर क्यो न चलेंगे ? ऐसी स्थिति में आज के अध्यापको को भी आत्म-दर्शन करना होगा। उन्हे सोचना होगा कि क्या वे अपने विद्यार्थियो के लिए प्रेरणा के स्रोत रह गए हैं ? उन्हे देखना होगा कि क्या वे स्वय उन मूल्यो का सम्मान एवं आदर्शो पर आचरण करते हैं, जिनकी वे अपने छात्रो से अपेक्षा करते हैं ? यदि नही, तो फिर अकेले छात्रों से ही नैतिकता के निर्वाह और अनुशासन-पालन की आशा करना क्या उचित है ?

निष्कर्ष यह है कि आज का विद्यार्थी—वर्ग तो हमारे समाज का एक प्रतिबिम्ब मात्र है। जब बिम्ब ही मलिन है तो प्रतिबिम्ब स्वच्छ कहां से होगा ?

अत: यदि हम इस अनुशासनहीनता की समस्या का सचमुच स्थायी हल चाहते हैं, तो हमे शिक्षा को राजनीति के चगुल से सर्वथा मुक्त करना होगा तथा अपने जीवन में उन प्राचीन परम्परागत मूल्यो की पुनर्प्रतिष्ठा करनी होगी, जिन्हे हम आज छोड बैठे हैं। शिक्षण-संस्थाओं मे राजनीति की जो पकिलता प्रवेश कर गई है, उसे दृढतापूर्वक निकाल बाहर करना होगा। साथ ही हमे शिक्षको की सामाजिक एव आर्थिक प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए भी ठोस कदम उठाने होंगे। उधर शिक्षकों को भी चाहिए कि वे आत्म-दर्शन करें तथा भारत के प्राचीन शिक्षकों की महान् परम्पराओ के अनुरूप आचरण करें। आज अर्थ—युग की जटिलताएं हमारी नैतिकता के लिए एक चुनौती बन गई हैं। शिक्षको को यह चुनौती स्वीकार करनी होगी। यदि शिक्षक व समाज के सभी वर्ग सगठित होकर आत्मानुशासन का संकल्प लें, तो फिर अनुशासन-हीनता की समस्या निश्चय ही हल जायेगी और शिक्षण—सस्थाओ मे फिर से विद्याध्ययन के अनुरूप वातावरण बन सकेगा। यो बातें बनाने से कुछ नहीं होने का है। अब भी समय है, हम चेतें और छात्रों को बोध देने से पहले स्वयं आत्मानुशासन का आदर्श रखें।

★

हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

शिक्षा की उपेक्षा और नव पीढ़ी का क्षोभ

विद्यासागर

देश मे कोहराम मचा है। प्रदर्शन, अनशन, धरना आदि की भरमार है। इन आन्दोलनों को राजनीतिक नेता विभिन्न सज्ञाएँ दे रहे है, परन्तु स्वतन्त्रता के बाद नेतृत्व-वर्ग से जाने अथवा अनजाने मे जो भूलें हुई हैं, उनसे आखें मू दी नही जा सकती। लम्बे समय से विद्यार्थी-आन्दोलन चल रहा है। इसके कारण तथा निदान के सम्बन्ध मे अनेक गोष्ठियो और छोटे-बड़े सम्मेलनो का आयोजन किया गया है। विद्यार्थियो को उनके कृत्यों के कारण कोसा जा रहा है और विद्यार्थी-वर्ग भी शान्ति और कानून-व्यवस्था को भग कर शासन को परेशान कर रहा है। इस सारी प्रक्रिया मे कई बार प्रश्न उठता है, कि एकाएक नव पीढी के साथ ऐसी कौन सी बात हो गई है, जिसके कारण उसने देश भर में तूफान मचा रखा है? यदि हम स्थिति का विश्लेषण करें, तो एक बात स्पष्ट रूप से सामने आयेगी कि विद्यार्थी-जगत् का वर्तमान असतोष किसी एक दिन अथवा एक क्षण का परिणाम नही, बल्कि पिछले अनेक वर्षों से शिक्षा-जगत् के प्रति 'उपेक्षा-भाव' का भयकर दुष्परिणाम है, जो आज सभी के सिरदर्द का कारण है। विद्यार्थी-असन्तोष का दोष राजनीतिक दलो पर भी डाला जा रहा है। एक निश्चित सीमा तक इसमे सत्यता भी है। कुछ राजनीतिक दल स्वार्थों की पूर्ति के लिए विद्यार्थियो का प्रयोग कर रहे हैं, परन्तु इससे भी बढकर अनेक ऐसे कारण हैं, जिन्होंने आज विद्यार्थी को ऐसी स्थिति मे लाकर खडा कर दिया है कि जो भी चाहता है, उसका उपयोग-दुरुपयोग करता है। चाहे वह प्रश्न इस्पात के कारखाने का हो, चुनाव में टिकिट लेने का हो, राजनीतिक नेताओं के आपसी सघर्ष का हो अथवा शिक्षण-सस्थाओं के अध्यापकों-प्राध्यापको की आपसी दलबन्दी का हो।

पिछले अनेक वर्षों से विद्यार्थियो पर अनुशासनहीनता का दोष लगाया जा रहा है। विद्यालयों मे होने वाला ऐसा कोई समारोह नही, जिसमे विद्यार्थियों को अनुशासन मे रहने का उपदेश न दिया जाता हो। प्रश्न यह है कि

क्या केवल विद्यार्थी ही अनुशासन हीन है ? वह जिस समाज का अंग है, क्या वहाँ अनुशासनहीनता नही ? आये दिन राज्यो की विधान सभाओ तथा संसद में जिस प्रकार के दृश्य उपस्थित होते हैं, उनका संस्कार विद्यार्थी के मस्तिष्क पर पड़े बिना नही रह सकता । देश के लगभग सभी राजनीतिक दलो में गुटबन्दी है । एक ही दल के नेता सार्वजनिक रूप से एक दूसरे पर आरोप लगाते हैं । इस स्थिति मे विद्यार्थी से अनुशासन की अपेक्षा करना केवल धोखा है । कुछ दिन हुए एक सडक पर स्कूल के कुछ विद्यार्थी आपस में बातचीत कर रहे थे कि "जिस समय संसद के समक्ष प्रदर्शन होता है, उस समय संसद का भीतरी दृश्य देखने वाला होता है ।" इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि नेताओं के आपसी व्यवहार का विद्यार्थियो पर कितना प्रभाव पड़ता है ।

प्राय विद्यार्थियो से राजनीति मे भाग न लेने की बात कही जाती है और हास्यास्पद स्थिति यह है, कि बात कहने वाले राजनीतिक नेता चुनाव के समय विद्यार्थियो का प्रयोग करते हैं। देश के विद्यार्थी-संगठनो पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक दलो का नियन्त्रण है । स्कूलो और कॉलजो में राजनीतिज्ञों को ही आमन्त्रित किया जाता है । इन अवसरो पर अध्यापकों का व्यक्तित्व बौना और कुंठित हो जाता है । विद्यार्थी के मस्तिष्क पर प्रभाव पडता है कि मेरे शिक्षक से मन्त्री, संसद-सदस्य और यहा तक कि नगरपालिका के सदस्य भी बढ़ कर हैं ।

आज का विद्यार्थी नेतृत्त्व-विहीन है । तथाकथित विद्यार्थी-नेता विश्व-विद्यालयो और कॉलिजो मे सिर झुकाये देखे जा सकते हैं । वे नेता तो हैं, परन्तु उनकी सुनने वाला कौन है ? विद्यार्थी यूनियनो का नेतृत्त्व परि-स्थिति वश सर्वथा अयोग्य विद्यार्थियो के हाथों में आ जाता है और शिक्षण-संस्थाओ का वातावरण औद्योगिक संस्थाओ जैसा बन जाता है । विद्यार्थी-नेता अनेक प्रश्नो पर बगलें झांकने लगते हैं । पिछले दिनो विद्यार्थी समस्याओ के विचारार्थ बुलाई गई संगोष्ठी में जब एक विद्यार्थी-नेता से बोलने के लिए कहा गया, तो उसकी हालत देखते ही बनती थी । विद्यार्थी-नेता—परन्तु अपनी समस्याओं के संबध मे बोल नही सकते और जब कोई विद्यार्थी किसी सरकारी इमारत को ध्वस करने लिए अपने हाथ से मे पत्थर उठाता है, तो विद्यार्थी-नेता मे साहस नहीं होता कि उसके हाथो को रोक सके ! इस सब का परिणाम यह है कि योग्य और गम्भीर विद्यार्थियो के हाथो से नेतृत्त्व उनके हाथो मे चला गया है, जो किसी कारण से अध्ययन-कार्य मे पिछड़े हुए हैं । विद्यार्थी हास्यास्पद मांगें मनवाने के लिए आन्दोलन

कर रहे हैं, जैसे—सिनेमा टिकटो के रेट कम किये जायें, सिनेमाघर वातानुकूलित बनायें जायें, परीक्षायें न ली जायें तथा रेलो के समय मे उनकी इच्छा के अनुसार परिवर्तन किया जाये।

विद्यार्थी और अध्यापक के आपसी सम्बन्ध दिनो-दिन कटु हो रहे हैं। विद्यार्थी के हृदय मे अपने अध्यापक के प्रति किसी प्रकार का श्रद्धा-भाव नही रहा और अध्यापक छात्र के जीवन के प्रति उत्तरदायी नही रहा। बहुत कम ऐसे छात्र हैं, जो अपने अध्यापक से हाथ जोड कर अभिवादन करते हैं। अध्यापको मे अफसरशाही की भावना पनपती जा रही है। अनेक ऐसी शिक्षा-सस्थायें हैं, जिनके मुखियों से मिलने के लिए घण्टो कार्यालयो के बाहर ठहरना पडता है। यदि कोई छात्र अपना शिक्षा-शुल्क निश्चित तिथि को नही दे सकता और उस सम्बन्ध मे प्रार्थना-पत्र प्रिन्सिपल अथवा मुख्याध्यापक को देने जाये, तो उससे दुर्व्यवहार किया जाता है। इस स्थिति मे विद्यार्थी अपमानित-सा भारी मन से प्रधानाचार्य के कमरे से बाहर आता है। उसके हृदय मे प्रतिहिंसा की भावना भडक रही होती है। वह अपने अध्यापको को अपमानित करने की ताक मे रहता है। बहुत कम ऐसे अध्यापक होंगे, जिनका विद्यार्थियो से सच्चा स्नेह होगा और जो यह अनुभव करते हो, कि हमे विद्यार्थियो के जीवन को बनाना है। शिक्षण-सस्थाओ मे ऐसे लोगो की भरमार है, जो किसी कारण वश अपने इच्छित क्षेत्र मे जा नही सके और उन्हें अध्यापन-कार्य करना पडा। ऐसे हाथो मे नव पीढी सुरक्षित नही। वर्तमान छात्र-आन्दोलन मे शासन-तन्त्र ने जिस प्रकार से कार्य किया है, उससे तो अध्यापको की स्थिति और भी असहाय सी हो गयी है। लाठी-गोली ने अध्यापको की छात्रो को नियन्त्रण करने की शक्ति को कुंठित कर दिया है। अभी ऐसी शोचनीय स्थिति नही आई थी कि छात्र अध्यापको के नियन्त्रण मे न रह सकें, परन्तु पुलिस-कारवाई ने सभी आशाओ पर पानी फेर दिया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा आयोजित सम्मेलन मे उपकुलपतियो ने सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया था, कि उपकुलपति की अनुमति के बिना पुलिस विश्वविद्यालय क्षेत्र में नही घुस सकती। 'विद्यार्थी राष्ट्रीय मार्च' के सम्बन्ध मे विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कॉलेजो के प्रिन्सिपलो की एक बैठक मे प्रिन्सिपलो के विचारों से ऐसा स्पष्ट पता चलता है, कि छात्रो के समान अध्यापक भी वर्तमान स्थिति से असतुष्ट हैं। यदि वर्तमान स्थित में सुधार लाने के लिए महत्वपूर्ण निर्णय न किये गये तो हो सकता है कि अध्यापक भी छात्रों के समान आन्दोलनकारी राह पर चल पडें।

यौनवाद की चर्चा ने छात्र-मस्तिष्क को कुंठित कर दिया है। उसे 'वनने' से पहले ही 'समाप्त' कर दिया गया है। बुकस्टालों पर यौन-साहित्य की भरमार है। वर्सो, काफी-हाऊसों और यत्र-तत्र सैक्स की ही चर्चा होती है। चलचित्रों और आधुनिक साहित्य में भी इसी का उल्लेख है, विद्यार्थी के हाथ मे तो राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास आदि की पुस्तकें होती हैं, परन्तु मस्तिष्क कहीं और चक्कर लगा रहा होता है। आखों मे रगीले स्वप्न होते हैं। फिलम अभिनेता-अभिनेत्री छात्र-छात्राओ के आदर्श हैं।

घर की चार दीवारी मे भी छात्र की अजीब स्थिति है। अभिभावक उसके जीवन के प्रति उदासीन है। उसके पास इतना समय नही कि वह अपने वालक के अध्ययन-कार्य की प्रगति के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त कर सके। फीस निरन्तर दी जा रही है, परन्तु वालक के अध्यापक से मिलने की फुर्सत नही। हाँ इतनी चर्चा जरूर होती है कि 'आजकल स्कूलों और कॉलेजों में पढाई नहीं होती।'

वर्तमान शिक्षा-पद्धति दोषपूर्ण है। सभी एक स्वर मे इसकी आलोचना करते हैं, परन्तु किसी मे इस बात का साहस नही कि इसमे अपेक्षित परिवर्तन करे। विद्यार्थी को अपना भविष्य अन्धकार मय दिखाई देता है। उच्च-शिक्षा पाने के बाद भी जीविका के लिए वह मारा-मारा फिरता है। डाक्टरों और इजीनियरों की आवश्यकता की वात जोरो से की जाती है, परन्तु अनेक ऐसे युवक मिल जायेंगे, जो डाक्टर और इजनीयर की शिक्षा के बाद भी सालों-साल नौकरी की तलाश में रहते हैं। भविष्य के प्रति आशंकित छात्र-छात्रायें, यदि किसी के बहकावे मे आकर अनिष्ट कर बैठें तो क्या आश्चर्य।

विद्यार्थी समस्या को सूझबूझ से हल करने की आवश्यकता है। लाठी और गोली से देश के होनहार युवक–युवतियों के प्राण लिये जा सकते हैं, परन्तु उनके असतोष को समाप्त नही किया जा सकता। विरोधियों पर छात्रों को बहकाने का दोष लगाया जा सकता है, परन्तु इनसे भी बढ़कर वे दोषी हैं, जिन्होंने ऐसी परिस्थितिया निर्माण करने का अवसर दिया है, जिनमें विद्यार्थियों को पथ-भ्रष्ट किया जा सके। ध्वसकारी तत्त्व तेजी से विद्यार्थियो की नाशकारी प्रवृत्तियों को बढावा दे रहे हैं, परन्तु निर्माणकारी तत्त्व मूक दर्शक की भांति तमाशा देख रहे हैं, उन्हें कार्यक्षेत्र मे आना चाहिये। अपने दोषों को दूसरों पर मढने से समस्या का समाधान नहीं,

हो सकेगा। स्वतन्त्रता के बीस वर्ष बाद भी सरस्वती-मन्दिरो का उचित सम्मान नही किया गया। शिक्षा-नीति के कारण विद्यालय उपेक्षित हैं। वर्तमान समस्याओं का समाधान गोष्ठियो और आयोगो की स्थापना से नही, बल्कि छात्र-अध्यापक-अभिभावक के परस्पर सहयोग और महान् आदर्श से ही सम्भव है।

हिन्दी प्रचार समिति,
३३, फीरोजशाह रोड,
नई दिल्ली–१.

हमारा छात्र !

राकेशदत्त त्रिवेदी

यदि कहा जाय कि अनुशासन ही जीवन है, तो इसमें किसी प्रकार की अतिश्योक्ति न होगी। विद्यार्थी-जीवन में तो इसका अपरिमित महत्व आंका ही नहीं जा सकता। खेद है कि आज अनेकों व्यवधानों के कारण विद्यार्थी-जीवन में अनुशासन का अभाव अनुभव किया जा रहा है, जो न केवल वर्तमान छात्र-वर्ग के लिए अहितकर है, वरन् भावी समाज तथा राष्ट्र के लिए कहीं अधिक घातक है। अनुशासनहीनता को दूर करने के लिए बहुत से उपाय किये गये हैं और अब भी किये जा रहे हैं, परन्तु समस्या को को मूलरूप से नष्ट करने के लिए हमें उन मूलभूत कारणों का विवेचन करना होगा, जिनका यह दुष्परिणाम है। विद्यार्थी-जीवन में अनुशासन के दो पहलू हैं—वैयक्तिक तथा सामूहिक। जहां तक वैयक्तिक अनुशासन का प्रश्न है, भारतीय छात्र अन्य देशों के छात्रों से कम अनुशासित, कम कर्त्तव्यनिष्ठ और कम सहिष्णु नहीं। इसलिए सामूहिक अनुशासनहीनता ही मुख्य रूप से भारतीय छात्र-वर्ग की समस्या है और उसी के सामाजिक, शैक्षक, राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक कारणों की छानबीन का हम यहां प्रयास करेंगे।

जैसा हमें विदित है कि आज उच्च आध्यात्मिक तत्त्वों की ओर समाज में विशेष ध्यान नहीं दिया जाता, फलस्वरूप चारों ओर नैतिक गुणों का ह्रास दिखाई पड़ने लगा है। विद्यार्थी-वर्ग समाज का एक कोमल और जागृत अंग है, इसलिए वह भी इस कुप्रभाव से अछूता नहीं रह पाया। अधिकांश छात्र अपने अध्यापकों, अभिभावकों और अन्य सम्मान्य सम्बन्धियों के प्रति वह आदरभाव और श्रद्धा नहीं रखते, जो भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। आदरणीय व्यक्तियों के प्रति यदि समुचित आदर का भाव न रखा जाय, तो इससे कल्याण और हित में बाधाएं आती है—'प्रतिबध्नाति हि श्रेय पूज्यपूजाव्यतिक्रम." (रघुवंश, १/)। नैतिक विघटन करने वाली प्रवृत्तियों के कारण भावी सफल जीवन का उत्तरदायित्व भी छात्रों की समझ में नहीं आता। प्राचीन छात्र-आदर्शों और कर्त्तव्यों का एक तो उनको

बोध ही नही कराया जाता और यदि किसी स्थिति मे कहीं कराया भी जाता है, तो वह इस रीति से कि उसका छात्रों के ऊपर बहुत कम प्रभाव पडता है। वस्तुत: विद्यार्थियो मे अनुशासनहीनता की समस्या मूलरूप से कोई अलग समस्या नही है, क़िन्तु हमारे समाज की नैतिक समस्या का एक पहलू मात्र है। हमारे जीवन मे अर्थवाद इतना प्रवेश पा चुका है, कि माता-पिता या अभिभावकों के पास एक तो समय ही कम होता है, पर जो कुछ अवकाश मिलता भी है, उसे भी वे अपनी सन्तति के विकास को देखने मे नही लगा पाते। फलत अभिभावकों की इस उपेक्षावृत्ति के कारण घर पर उन्हे किसी प्रकार का मार्ग-निर्देशन नही हो पाता और समाज के उन भडकाने वाले तथा अहितकर तत्त्वो से छात्र-वर्ग की रक्षा नही हो पाती, जो उन्हे अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं।

हमारी शिक्षा-प्रणाली का उद्देश्य केवल भौतिक पदार्थों की उपलब्धि अथवा जीविकोपार्जन मात्र बन कर रह गया है। चरित्र-निर्माण पर विशेष बल नही दिया जाता, इसलिये व्यक्तित्व का पूर्ण विकास होना असम्भव सा हो गया है। छात्र अनुभव करता है कि वह विद्यार्थी इसलिए है, जिससे वह परीक्षा मे पास हो सके और पास इसलिए हो जाय, जिससे उसे जीविकोपार्जन का कोई सुगम साधन उपलब्ध हो सके। आज की हमारी शिक्षा-प्रणाली लगभग उसी शिक्षा-प्रणाली का विकास अथवा प्रसार मात्र है, जो अंग्रेजो ने अपने शासन-काल मे, अपने उद्धेश्यों की पूर्त्ति के लिए प्रचलित की थी। हम उसी प्रणाली के प्रसार को परिवर्तन समझ बैठे है। वास्तविक प्रश्न आज यह नही, कि हम किस प्रकार का और अधिक प्रसार करें, किन्तु यह है कि हम किस प्रकार की शिक्षा को फैलायें, जो जीवन-यापन मे हमारी सहायता करने के साथ-साथ हमे अपेक्षित चरित्र और व्यक्तित्व प्रदान करे।

शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापक-वर्ग का महत्त्व सर्वोपरि है, किन्तु उसकी भी सामाजिक और अर्थिक स्थिति सतोषजनक नही है। आर्थिक दृष्टि से अध्यापन-कार्य मे कोई प्रलोभन नही है और समाज मे उसके कार्य का वह सम्मान नहीं रह गया, जो उसके महत्वपूर्ण कार्य को देखते हुए होना चाहिए। इसलिए निराशा और अनुत्साह की भावनायें उसमे प्राय देखी जाती हैं। समाज के लिए ये घातक भावनाएं परोक्षरूप से विद्यार्थियों मे प्रवेश पा रही हैं। अत सन्तुष्ट तथा संयत अध्यापक-वर्ग का अपेक्षित मात्रा मे न होना छात्रों की अनुशासनहीनता का एक अप्रत्यक्ष कारण माना जा सकता है।

दूषित परीक्षा-प्रणाली से छात्रो की अनुशासनहीनता को बढ़ावा मिलता है और उसके भयकर उदाहरण परीक्षा–काल मे देखे जा सकते है, जब डराने धमकाने से लेकर शारीरिक बल-प्रयोग तक के साधनों का उपयोग देखने और सुनने को मिलता है। एक छात्र का अपने अध्यापक से कोई व्यक्तिगत सम्पर्क या लगाव नही रह गया हैं। बड़ी–बडी सख्या वाली कक्षाओ में किसी छात्र विशेष की क्या समस्याएँ हैं और उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए किन चीजो की आवश्यकता है, इसका अनुमान भी एक अध्यापक को लगा सकना कठिन होता है। जैसे हम बस में बैठते हैं और कण्डक्टर को टिकिट के पैसे देकर गन्तव्य स्थान तक पहुँच जाते हैं, उसी प्रकार एक छात्र स्कूल या कॉलिज मे फीस देता है और अध्यापक की सहायता से परीक्षा पास करके अपनी जीविका मे लग जाता है। ऐसे शैक्षिक दृष्टिकोण के कारण अध्यापक छात्र के चरित्र और व्यक्तित्व मे कोई रुचि नही ले पाता। अतः परम्परागत गुरु-शिष्य का भाव न होना अनुशासनहीनता का एक प्रबल कारण हैं। परिस्थितिवश प्राचीन गुरु–शिष्य परम्परा पूरी तरह तो जाग्रत नही की जा सकती, किन्तु यदि इस परिपाटी को थोडा बहुत भी पुनर्जीवित किया जा सके, तो विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता जैसी भयकर त्रुटियो से बहुत अशो मे बचा जा सकता है—

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।

विद्यार्थियो की शक्ति और सामर्थ्य का उपयोग जब राजनीतिक उद्देश्यो के लिए किया जाने लगा, तब तो स्थिति और भी भयावह हो गई। भारत के स्वतन्त्रता–सग्राम मे विद्यार्थियो ने बडा सफल और वाछित योग दिया। नेताओ की पुकार पर उन्होंने विद्यालय छोड़े और विदेशी सरकार से टक्कर ली। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद भी, विद्यार्थियों का उपयोग राजनीतिक उद्देश्यो के लिए होता रहा। जो शस्त्र चलाना उन्हें स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पूर्व सिखाया गया था, उसे वे आज भी उसी दक्षता से चला रहे हैं। दूसरी ओर, जब एक छात्र से उन्नत आदर्शों पर चलने के लिए कहा जाय, तो उनसे उस आदर्श के पालन की आशा तभी की जा सकती है, जब आदर्श कार्यरूप में उनके सामने रक्खा जाय। राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों से छात्रों के सम्मुख न्याय, सद्भावना और त्याग के जीवित उदाहरण आने चाहिये। छात्रो के ऊपर से राजनीतिक प्रभाव हटाना तो दूर रहा, बहुत से राजनीतिक दल अपने सर्वव्यापी प्रभाव के द्वारा छात्रों को भी विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं में बाँट देते हैं, जैसा विश्वविद्यालयो मे प्रायः देखा

जाता है। चुनाव के दिनों मे राजनीतिक दल विद्यार्थियो के सहयोग से मतदाताओ को प्रभावित करने के लिए सचेष्ट पाये जाते हैं। किसी राजनीतिक दल विशेष के लिए छात्र काम करें और यदि उसे सफलता न मिले तो उनमें असन्तोष और द्वेष की भावनाएँ बढने लगती हैं, जिनको वे अन्य किसी बात पर बाद में प्रगट करते हैं।

छात्रों की अनुशासनहीनता की पृष्ठभूमि मे मनोवैज्ञानिक कारण भी हैं। एक छात्र को आज अपने भविष्य का कोई पता नहीं, उसकी जीविका और कार्य बिलकुल अनिश्चित हैं। उसकी शिक्षा का मूल उद्देश्य जीविकोपार्जन का साधन है, किन्तु जब समय आने पर उसे समुचित जीविका भी प्राप्त नहीं होती, तो उसका धैर्य और उत्साह टूट जाता है। शिक्षा के उपरान्त बेकारी जैसी समस्याएँ, उसके अन्दर निराशा और असन्तोष को जन्म देती हैं, जो और बढने पर उच्छृंखलता तथा स्वच्छन्दता का रूप धारण कर लेती हैं। इन परिस्थितियों मे भी कोई ऐसी व्यवस्था उनके सामने नहीं, जो उन्हें शिक्षा के वास्तविक अभिप्राय को बतला कर, उनमे सहनशीलता, विनय, नम्रता और अनुशासन के भावों को भर सके। छात्रो को बताना होगा कि शिक्षा का वास्तविक अर्थ यत्न पूर्वक उस ज्ञान को प्राप्त करना है, जिसकी उपलब्धि होने पर मनुष्य की आत्मा सभी बाधाओ से मुक्त हो जाती है, जैसा गीता मे कहा है, "ज्ञान विज्ञान सहित यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्"।

●

राष्ट्रीय संग्रहालय,
जनपथ, नई दिल्ली.

द्वितीय खंड

भेंट-वार्तायें

भेंट-वार्तायें

भेंट एव प्रस्तुतीकरण : कृष्णवीर द्रोण

प्रो० एम वी. माथुर

(उपकुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय)

हिन्दी-आन्दोलन को लेकर जब र विश्वविद्यालय को बन्द करना पडा, तो उन्ही दिनों एक रात्रि को लगभग ८.३० बजे मैं जब श्री माथुर के निवास स्थान पर पहुँचा, तो वे अपने अध्ययन-कक्ष मे व्यस्त थे। निजी-सचिव के द्वारा मुझे अपने पास बुलवाकर घडी की ओर दृष्टि डालते हुए उन्होंने मुझ से कहा कि आप विद्यार्थी-आन्दोलन से सम्बन्धित मेरे विचार जानना चाहते हैं न ? आपके पास प्रश्न होंगे, पूछिये। मैंने प्रश्न किया—

प्रश्न—श्रीमान्, क्या आप यह बताने का कष्ट करेंगे कि गत दिनों में हुये देश-व्यापी विद्यार्थी-आन्दोलन के प्रति आपकी क्या धारणा है ?

उत्तर—(निर्विशेष भाव मे डूबकर उन्होंने अत्यन्त सहजता से इस प्रकार उत्तर दिया, मानों उत्तर की पक्तिया उनके मस्तिष्क मे पहले से ही जमी हुई रखी हो) यह समस्या जितनी सहज है, उतना ही इसका हल कठिन है।

प्रश्न—आपके विचार से यह समस्या क्या है ?

उत्तर—अत्यन्त सघन जन-सख्या वाले देश में उच्च-शिक्षा के आकांक्षी बेरोजगार नौजवानों से उत्पन्न है यह समस्या।

प्रश्न—(मैंने एक अर्थशास्त्री विचारक की विचार-सरणि को दूसरे पक्षों की ओर मोडने की दृष्टि से प्रश्न किया), क्या यह एक नितांत आर्थिक समस्या ही है ?

उत्तर—(अपेक्षाकृत अधिक सचेतना समेटते हुये) वास्तव मे तो, यह सब सामाजिक बेचैनी की उपज है। यह समाज एक Organic living है, जिसके किसी भी भाग मे खराबी उत्पन्न होने से सारा का सारा ढाँचा अव्यवस्थित हो जाता है। आज समाज का कोई भी भाग मार्ग-निर्देशन नही दे पा रहा। माता-पिता, शिक्षक तथा नेता सभी

असहाय से हो रहे हैं। (विशेष बल देते हुये) आज तो धर्म भी दिशा-सकेत नही दे पा रहा। छात्र को यदि कोई भी प्रभावित कर पा रहा है, तो वह है—चलचित्र (मेरे विचार से निश्चय ही श्री माथुर का सिनेमा के दुष्प्रभावों की ओर सकेत था) शिक्षा-केन्द्रों में भीड एकत्रित हो गई है, कोई पारस्परिक (शिक्षक-छात्र) सम्पर्क शेष नही रह गया है और परिणामत कोई शिक्षा-ग्रहण की वास्तविक प्रक्रिया नहीं चल रही। डिग्री-वितरण की एजेन्सीज़ मात्र रह गये हैं हमारे वर्तमान शिक्षा-केन्द्र। यहा कोई बौद्धिक अन्तर्मिलन नही होता।

प्रश्न—'शिक्षा में भीड' की समस्या का समाधान कैसे किया जाय ?

उत्तर—शिक्षा देने की विधि (टेक्नीक्) मे परिवर्तन द्वारा।

प्रश्न—क्या इस विधि-परिवर्तन को आप कृपया स्पष्ट करेंगे ?

उत्तर—विश्वविद्यालयों को पत्राचार-पाठ्यक्रम तथा रात्रि-कॉलेजों की सुविधायें छात्रों को प्रदान करनी चाहिये।

प्रश्न—क्या आपने राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा इस प्रकार के पाठ्यक्रम को प्रारम्भ करने की योजना बनाई है ?

उत्तर—हा, ऐसी योजना प्रस्तावित भी की जा चुकी है, परन्तु प्रस्तावक अनिवार्य रूप से उसे व्यावहारिक रूप नहीं दे सकता। पुराने लोग नवीनता के प्रति कुछ 'हिच' करते हैं। ये सब योजनायें पैसे से होती हैं और पैसे सरकार के पास हैं।

प्रश्न—शैक्षणिक-प्रक्रिया मे आप अध्यापक के व्यक्तिगत सम्पर्क को तो अत्यन्त प्रभावी मानते ही होंगे ?

उत्तर—नि सन्देह।

प्रश्न—पत्राचार-अध्ययन-अध्यापन विधि में तो व्यक्तिगत सम्पर्क का नितात अभाव सा ही रहता है ?

उत्तर—यह तर्क बिलकुल ठीक है, परन्तु एक सूक्ष्म तथ्य की ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा, कि एक योग्य एव चरित्रवान अध्यापक की कला उसके पत्र-व्यवहार से भी प्रतिबिम्बित होती है और फिर यह रास्ता वर्तमान दुर्व्यवस्था से तो स्पष्टतया श्रेष्ठ ही है।

प्रश्न—आपके विचार से इस दुर्व्यवस्था का हल क्या है ?

उत्तर—बस एक मात्र हल है—सन्तुष्ट अध्यापक ।

प्रश्न—विश्व-विद्यालयी प्राध्यापकों को तो वेतन भी अच्छा मिलता है, क्या वे भी असन्तुष्ट हैं ?

उत्तर—क्यो नही ! असतोष की भी क्या कोई सीमा है, यह तो द्रोपदी का चीर है । क्या आज प्राध्यापक अपने वेतन-मानों को लेकर असन्तुष्ट नहीं हैं ? (मैंने कहा—हैं, श्रीमान्)

प्रश्न—तव क्या इस द्रोपदी के चीर का कभी अन्त ही नही होगा ?

उत्तर—अन्त क्यों नहीं होगा । अर्थशास्त्र के विद्यार्थी के नाते (श्री माथुर ने मुझ से पूछा कि क्या मैंने अर्थशास्त्र पढा है, मैंने स्वीकारते हुये कहा, जी हाँ, बी० ए० मे पढा था) मै तो यह कह सकता हूँ कि वही अध्यापक अधिक सन्तुष्ट होगा कि जिसको द्रव्य (Money) से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता अपेक्षाकृत शीघ्र की स्थिति पर शून्य हो जाय (Marginal Value of money should be zero at a farely early stage) ।

प्रश्न—तो क्या इसका यह अर्थ लगाया जाय कि मात्र धन द्वारा सन्तुष्ट अध्यापक बनाये जा सकते हैं ?

उत्तर—नही, यह बात इस प्रकार नही है । सभी 'महान् अध्यापक' सन्तुष्ट उत्पन्न होते हैं, मैंने तो एक औसत अथवा सामान्य बात कही है । असंतोष का एक कारण यह भी है, कि जिन परिवारों से ये छात्र पढ़ने आ रहे हैं, वे अपने परिवारो की शिक्षित होती हुई सर्वप्रथम पीढी है । अतः उन्हें उनके परिवारों मे शैक्षणिक वातावरण नही मिल पाता । दूसरे, उनके पास पढने के लिये पर्याप्त धन भी नही है । विद्यालयों मे पुस्तकालय तथा अन्य प्रकार की सुविधायें भी उपलब्ध नहीं हैं । ये लोग सस्ते नोट्स पढते हैं और इस प्रकार येनकेन-प्रकारेण—साम, दाम, दण्ड, भेद के द्वारा परीक्षा में उत्तीर्ण होना चाहते हैं । मेरे विचार से इस छात्र-असतोष के लिये छात्रों को दोष देना उचित नहीं ।

प्रश्न—तो क्या इसका यह तात्पर्य है कि छात्रो को किसी भी दृष्टि से दोषी नहीं ठहराया जा सकता ?

उत्तर—नहीं तो। कुछेक छात्र अवश्य दोषी हैं, जिन्हें सच्चे गुरुजनों द्वारा सही मार्ग बताये जाने पर भी वे उस पर हठवश नही चलते। वैसे विद्यार्थी तो कच्चे माल की तरह हैं, जिन्हें अध्यापक रूपी कारीगर पक्के माल मे परिवर्तित करता है।

प्रश्न—वर्तमान शिक्षा-नीति के बारे में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर—मेरे विचार से आज की शिक्षा-नीति हमे प्रजातन्त्र तथा समाजवाद की ओर नही ले जा रही।

प्रश्न—(मैंने आश्चर्य दर्शाते हुये कहा) आज तो सभी के लिये शिक्षा के द्वार खुले हुये हैं, फिर भी आप शिक्षा-नीति को इस प्रकार क्यो कहते हैं ?

उत्तर—कोठारी कमीशन के प्रतिवेदन को आप देखें, उसमे भी स्पष्ट किया गया है कि एक सच्चे प्रजातन्त्र मे सर्वोच्च एव सर्वश्रेष्ठ शिक्षा ग्रहण के अधिकारी का निर्णय जन्म और धन की दृष्टि से न आक कर प्रतिभा की दृष्टि से आका जाना चाहिये। आज जिसके पास पैसा होता है, वह श्रेष्ठतम पब्लिक स्कूलो में शिक्षा ग्रहण कर सकता है और फिर यह भी निश्चित ही है कि ऐसे विद्यालयो के छात्र देश के सर्वश्रेष्ठ स्थानो को ग्रहण करने मे भी सफल होते हैं। कहा हैं आज सरकारी क्षेत्र (Public Sector) मे उच्च कोटि के विद्यालय ? दूसरे, हमने प्रजातन्त्र के नाम पर हर व्यक्ति के लिये उच्च-शिक्षा के द्वार बडी उदारता से खोल दिये हैं। क्या प्रत्येक व्यक्ति बौद्धिक-प्रतिभा की दृष्टि से उच्च-शिक्षा का अधिकारी है ? क्या यह प्रजातान्त्रिक अथवा सामाजवादी सिद्धान्त है कि प्रत्येक मतदाता को प्रधान-मन्त्री बना दिया जाय ? मेरा यहाँ स्पष्ट मत है कि अब समय आ गया है कि हम शिक्षा मे (Selective approach) को प्रारम्भ करें अर्थात् प्रत्येक शैक्षणिक स्तर के पश्चात् हम विद्यार्थियों की (Test Ability) योग्यता की जाँच के आधार पर (Screening) छटाई करें और जो अधिकारी हो उसे ही आगे बढने दें, अनाधिकारी को कदापि आगे न बढने दें। और चूंकि गत वर्षो मे हमने ऐसा नही किया, इसी कारण सर्वत्र हाहाकार फैल गया है।

प्रश्न—आपकी सम्मति से अच्छे अध्यापकों का निर्माण कैसे किया जाय ?

उत्तर—साधारण आवश्यकताओ की पूर्ति तथा भरण-पोषण की सुविधाओं के बिना वर्तमान मे अच्छे अध्यापक का निर्माण करना कठिन ही

प्रतीत होता है। दूसरे, यह सबसे आवश्यक हो गया है कि अध्यापको को उनके कर्त्तव्यो और दायित्वो का स्पष्ट भान करा दिया जाय। तीसरे, वे निश्चय ही इस योग्य भी होने चाहियें कि अपने छात्रो को सुनागरिक बना सकें। हमारी इस शताब्दी मे ज्ञान-विज्ञान के आयाम इतनी द्रुत-गति से विस्तृत हो रहे हैं कि इस क्षण का सत्य अगले क्षण असत्य हो रहा है। ऐसे समय मे अध्यापक के ज्ञान का समसामायिक तथा आधुनिक होना कितना अनिवार्य है। बीस वर्ष पुराना एम० ए० की डिग्री वाला अध्यापक आज न केवल बडी शान से पढा रहा है, अपितु पदोन्नति के हेतु अपनी वरिष्ठता भी अधिकारता है। ऐसे पासपोर्टों (डिग्रियो) का समय-समय पर नवीनीकरण होना चाहिये। शिक्षा के क्षेत्र मे ज्ञान ही वरिष्ठता का मापदण्ड होना चाहिये।

प्रश्न—क्या वर्तमान मे हमारी राजनीति की दिशा विद्यार्थी-समाज पर दुष्प्रभाव नही डाल रही ?

उत्तर—स्पष्ट है कि राजनीति भी आर्थिक-सामाजिक क्षेत्र के अन्तर्गत ही आती है। यह सारी दुर्व्यवस्था–आर्थिक सामाजिक त्रुटियो की उपज है। तथापि विभिन्नताओ से भरे इस विशाल जन-समुदाय वाले देश मे हमने जनतान्त्रिक समाज-व्यवस्था के द्वारा इन २० वर्षों के काल में, जो उपलब्धिया प्राप्त की हैं, वे ससार की उन्नति के इतिहास मे अपूर्व हैं। और फिर हमारे राष्ट्र की स्वतन्त्रता की आयु भी अल्प ही है। (मैंने कदाचित ठीक ही सोचा कि अवश्य ही ये शब्द शिक्षा-आयोग की सदस्यता से प्रभावित हैं।[1])

प्रश्न—(अन्त मे अन्तिम एव आग्रहपूर्ण प्रश्न पूछते हुये मैंने कहा) तो आपकी सम्मति मे वर्तमान शिक्षा के अविलम्ब सुधार के लिये क्या किया जाना चाहिये ?

उत्तर—बस, कुछ आदर्श शिक्षा-सस्थाये खुलनी चाहियें, जिनमें अच्छे अध्यापको को उत्तम अध्यापन की सुविधायें उपलब्ध हो सकें।

---

१ श्री माथुर शिक्षा आयोग के सदस्य भी रह चुके हैं।

जे. पी नायक

(शिक्षा सलाहकार—भारत सरकार)

•

जयपुर में २८ अक्टूबर, १९६८ की रात्रि को लगभग ८ बजे, जब मैं श्री नायक से मिला तो वे लेटे-लेटे कदाचित् राजस्थान मे प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण एव शिक्षा के विषय में कुछ पढ रहे थे, क्योकि अगले ही दिन उन्हे राजस्थान मे पचायती राज्य के अन्तर्गत चल रही प्राथमिक शिक्षा के विषय पर राजस्थान सरकार द्वारा इस विषय पर आयोजित सगोष्ठी मे अपने विचार प्रगट करने थे। मेरे आने की सूचना प्राप्त होते ही आप श्वेत-शुभ्र वस्त्रों मे बाहर आये और अपने स्वाभाविक मृदु स्वर मे मेरे आने का कारण पूछा। मैंने जब बताया कि छात्र-आन्दोलन के विषय पर लिखी जा रही एक पुस्तक के हेतु आपके विचार जानने हैं, तो वे कदाचित् अपनी अति कार्य-व्यस्तता की बात कहने वाले थे कि मैंने बीच मे ही कहा कि मेरे पास पुस्तक की रूप-रेखा तैयार है, पहले आप इसे देखने का कष्ट करलें, आगे का कार्यक्रम सुविधानुसार फिर निश्चित कर दीजियेगा। मेरे इस प्रस्ताव पर वे तुरन्त सहमत हो गये और बोले कि अच्छा अगले दिन ५ बजे आइयेगा। अगले दिन मैं यथा समय पहुँच गया। मेरे आने की सूचना मिलते ही उन्होंने मुझे बुला लिया और अपने सामने वाली सीट पर बैठने का सकेत किया। मैंने पूछा कि आपको हमारी पुस्तक की योजना कैसी लगी ? आपने उत्तर दिया, योजना काफी अच्छी और नवीन है, मुझे पसन्द आयी। मैंने जब पूछा कि छात्र—आन्दोलन के विषय मे क्या आप कुछ बता सकेंगे तो उन्होंने कहा अवश्य पूछिये, अब मैं कुछ बता सकूँगा। वार्ता की भाषा के विषय मे जब चर्चा चली, तो उन्होंने कहा कि यों सामान्यत मैं हिन्दी बोल-समझ लेता हूँ। मने उनकी कठिनाई को समझते हुये कहा कि वैसे तो पुस्तक हिन्दी मे है, तथापि वार्ता की भाषा सुविधानुसार हिन्दी अथवा अंग्रेजी में से कोई सी अपनायी जा सकती है। मैंने प्रश्न किया—

प्रश्न—महोदय, कृपया क्या आप यह बताने का कष्ट करेंगे कि हमारे देश में छात्र–असन्तोष के क्या कारण हैं ?

उत्तर—इसके कारण मिश्रित है, कोई एक कारण नही है, जैसे—शिक्षा-स्तर का गिरना, विद्यार्थियो को शैक्षणिक सुविधाओं का न मिलना तथा रोजगार की कमी होना इत्यादि।

प्रश्न—आपके मत से और कोई प्रमुख कारण हो सकता है?

उत्तर—हाँ, एक और एक प्रमुख कारण है—दो पीढियो के बीच का अन्तर, नवीन और पुरानी पीढी के मध्य विचार-विषमता की खाई चौडी हो गयी है। लेकिन यह वस्तु भारत के लिये ही कोई अपवाद नही है, यह तो 'वर्ल्ड फेनोमेनन' (संसार व्यापी तथ्य) है। इसके अतिरिक्त हमारे देश मे पारिवारिक इकाई की दृष्टि से शिक्षा प्राप्त करने वाली यह प्रथम पीढी है, जिसके घरो मे सामान्यतः शिक्षा की कोई परिनिष्ठित परम्परा नही रही है, अतः छात्र-जीवन भी अस्त-व्यस्त हो चला है।

प्रश्न—आपके द्वारा बताई गई दो पीढियों मे से किसमे सुधार अधिक होना चाहिये?

उत्तर—साधारणत', जब कि परिवर्तन का दौर चल रहा है, किसी एक पक्ष को दोषी ठहरा कर दूसरे को सुधारने की बात कहना बहुत ठीक नही है। यह असन्तोष परिवर्तन की प्रक्रिया का ही स्वाभाविक प्रतिफल है।

प्रश्न—श्रीमान्! आपकी दृष्टि से हमारी शिक्षा-व्यवस्था के प्रमुख दोष क्या हैं?

उत्तर—देश मे जनसख्या की वृद्धि बहुत तेजी से हो रही है, लेकिन रोजगार के साधन अपेक्षाकृत कम हैं, इस कारण युवको मे असन्तोष व्याप्त हो गया है।

पश्न—महोदब, आप जो बता रहे है, वह श्रम और उत्पादन के साधनों की माग और पूर्ति के सिद्धान्त से अधिक सम्बन्ध रखता है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि हमारे देश की शिक्षा-प्रणाली के दोष कौन-कौन से हैं?

उत्तर—हाँ, तो अभी जो शिक्षा आयोग ने हमारी शिक्षा-प्रणाली की कमियो की ओर सकेत किया है, वे मुख्यत तीन हैं—प्रथम तो हमारी शिक्षा जीवन से सम्बन्धित नही है और हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति नही कर पाती। दूसरे, सारे देश मे शिक्षा का स्तर भी काफी गिरा हुआ है। तीसरे, हमारे यहां शिक्षा का प्रसार भी अभी उतना नही हो पाया है, जितना कि अपेक्षित है। उदाहरण के लिये लीजिये, अमरीका मे शिक्षा काल के औसत वर्ष बारह हैं, जब कि हमारे यहा ये केवल तीन

वर्ष ही हैं। इतने अल्पकाल मे शिक्षा अपने उद्देश्यो को प्राप्त नहीं कर सकती।

प्रश्न—आजकल विद्यार्थी और राजनीति के प्रश्न को लेकर काफी विवाद फैला हुआ है, आपके मतानुसार विद्यार्थी को राजनीति मे भाग लेना चाहिये अथवा नही ?

उत्तर—विद्यार्थियों को राजनीति के सिद्धान्तो का अध्ययन करना चाहिये। उन्हें समझना चाहिये कि सविधान क्या है, प्रजातत्र एव विभिन्न राजनीतिक दल क्या है ? परन्तु उन्हें अपने अध्ययन काल मे राजनीतिक दल-बन्दी से दूर रहना चाहिये।

प्रश्न—कभी-कभी यह भी कहने-सुनने मे आया है कि, शिक्षा-प्रशासन छात्रों की उचित मागो पर भी ध्यान नही देता। यदि ऐसी स्थिति हो, तो छात्रो को क्या करना चाहिये ?

उत्तर—उचित माँगो को न सुना जाना अच्छा नही है, उन पर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिये। मेरे विचार से शिक्षको और विद्यार्थियो के मध्य कोई अनिवार्य कॉन्फ्लिक्ट (विरोध) की स्थिति नही है (अब श्री नायक के विचारो का क्रम स्वभावत ही शिक्षको और विद्यार्थियों के सम्बन्धों की ओर मुड गया) शिक्षको और विद्यार्थियो के सम्बन्धो का आधार मजदूरों और मिल-मालिको के समकक्ष नहीं रखा जा सकता, अत दोनो पक्षों के बीच विरोध का प्रश्न ही खडा नही होता।

प्रश्न—फिर भी कभी-कभी विरोध उपस्थित हो जाता है, इसका क्या कारण है ?

उत्तर—इसके कारण अनेक हो सकते हैं, परन्तु प्रमुख है—दोनो के बीच 'अन्डरस्टैन्डिग' की कमी—दोनो पक्ष एक दूसरे की बात को न तो समझ पाते हैं और न स्पष्ट ही कर पाते हैं।

प्रश्न—इस दिशा मे कौनसे उपचारात्मक कदम अपेक्षित हैं ?

उत्तर—दोनों पक्षों के विचारों को स्पष्ट करने के लिये एक ऐसी मशीनरी होनी चाहिये, जो विवाद के पक्षो को भलीभांति उजागर कर सामजस्य स्थापित कर सके। लेकिन समस्या का समाधान उस समय अत्यन्त कठिन हो जाता है कि जब कोई तीसरा पक्ष समस्या को बनाये रखने में दिलचस्पी रखने लगे—जैसे कुछ राजनीतिक दल।

प्रश्न—अभी हाल मे ही विद्यार्थियो के लिए एन सी सी. की अनिवार्यता समाप्त करके "भारतीय समाज सेवा" की योजना प्रारम्भ की जा रही है, आप इसकी सफलता के प्रति कैसे विचार रखते है ?

उत्तर—हाँ, मै आशावान हूँ, यह एक अच्छी योजना है । लेकिन इसकी सफलता दो बातो पर निर्भर करती है—पहले तो शिक्षकों का नेतृत्व इस दिशा मे काफी प्रभावशाली होना चाहिये । दूसरे राज्य-सरकारो का सहयोग भी इस बात मे अपेक्षित है, कि वे छात्रो के लिये समाज-सेवा के उचित और व्यावहारिक कार्यक्रम एव योजनायें (Projects) बनायें ।

प्रश्न—अध्यापक तो जैसे है वैसे ही हैं, इनसे आप जितनी आशा करें, यह आपकी भावना और निर्णय पर निर्भर है । महोदय, क्या कुछ लोगो का यह कथन सत्य है, कि एन सी. सी. की योजना की कमजोरियो के कारण ये नवीन योजनाये जैसे—समाज-सेवा और खेलकूद की योजनायें—लागू की जा रही हैं ?

उत्तर—नही, यह धारणा सही नही है । इन योजनाओ को प्रारम्भ करने का कारण यह नही है, कि एन सी. सी की योजना असफल रही है, बल्कि हम अपने युवा-विद्यार्थी को भिन्न-भिन्न प्रकार के मनभावन कार्य-क्षेत्रों के चुनाव की सुविधा (Fields of interests) तथा दिलचस्पी के कार्यक्रमो की विभिन्नताओ के विकल्प (Options of the Variety of programmes) देना चाहते हैं । हमारा लक्ष्य यह रहा है, कि वर्तमान युग मे मात्र ज्ञान-प्राप्ति ही शिक्षा के उद्देश्यो को पूरा नही कर सकती, अपितु विद्यार्थी मे समाज-सेवा का भाव भी उत्पन्न होना चाहिये ।

प्रश्न—परन्तु जो छात्र खेल-कूद की योजना मे भाग लेंगे, वे तो समाज के अनिवार्य सेवा-भाव से वचित रह जावेंगे, इसके लिये आपका क्या विचार है ?

उत्तर—वास्तव मे आपका यह प्रश्न अत्यन्त मौलिक एव गम्भीर है, परन्तु हमारी कठिनाई यह है कि समाज-सेवा से सम्बन्धित सभी प्रकार के कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने के लिये हमारे पास योग्य एव कुशल व्यक्ति (Trained Personnels) नही हैं, फलत यह कठिनाई खड़ी हो गयी है ।

प्रश्न—छात्र-असन्तोष के विषय मे आपने जो अभी शैक्षणिक तथा अन्य कारण बताये हैं, क्या इनके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों मे भी इसके कारण ढूंढे जा सकते हैं ?

उत्तर—हां, क्यों नहीं ? राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक इत्यादि अनेक कारण हैं।

और अब चूंकि श्री नायक महोदय के वायुयान द्वारा दिल्ली जाने का समय हो आया था, अतः वार्ता को यहीं समाप्त करना पड़ा । चलते समय पुन. उन्होंने हमारी पुस्तक के प्रति अपने सन्तोष के भाव व्यक्त किये।

●

डॉ० राजकृष्ण

(आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्व विद्यालय)

•

डॉ० राजकृष्ण ने अपनी अमरीका और मलाया की दो-दो विदेश यात्राओं की व्यस्तता के बीच मुझे समय ही नही दिया, अपितु समस्त वार्ता को अपनी सौजन्यता, उन्मुक्तता तथा अनौपचारिकता से बरावर सरस बनाये रखा। उस दिन डॉ० साहब कक्षा को पढाकर जब अपने विभाग-कक्ष मे आये, तो मुझे बैठा पाया। लगभग तीन बजे थे। अन्य बातों के अतिरिक्त, उन्होंने हमारी पुस्तक की योजना के प्रति अपनी प्रसन्नता प्रगट की और कहा—आइये, खाना खाने के कार्यक्रम के साथ-साथ ही अपनी यह वार्ता भी चलती रहे, तो अच्छा है, कार्याधिक्य के समय सब कुछ उचित है। मैंने सहमति प्रगट करते हुये अपना पहला प्रश्न किया—

प्रश्न—महोदय! आपके विचार से छात्र-आन्दोलन के क्या-क्या कारण हो सकते हैं?

उत्तर—मैं ऐसा मानता हूँ कि इसके कई कारण हैं, किन्तु मुख्य कारण यही है कि अधिकतर अध्यापक-गण स्वय अपनी परेशानियो मे फसे रहते हैं। उनकी आर्थिक अवस्था भी सतोषप्रद नही है। साथ ही उन्हें अपने विषयों का पर्याप्त और स्पष्ट ज्ञान भी नही होता। उनकी अपने कार्य के प्रति कुछ रुचि नही होती। उनका अपना जीवन कोई आदर्शबद्ध नही होता।

प्रश्न—क्या आपके विचार से छात्र-आन्दोलन के कोई अन्य कारण भी हैं?

उत्तर—हाँ, अध्ययन के पश्चात् छात्रों के व्यवसाय की असुरक्षा का प्रश्न भी इसी से जुडा हुआ है। पहले तो वे जो कुछ ज्ञानार्जन करते हैं, उसकी मदद से वे अपने जीवन को धनोपार्जन द्वारा सुरक्षित बना सकेंगे, इसी के बारे मे वे सशंकित रहते है। साथ ही वे यह भी जानते हैं, कि आज अपने व्यवसाय से सम्बन्धित विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि अन्य उचित-अनुचित साधनों का जानना

अधिक आवश्यक है, जिनकी मदद से उनसे कम योग्यता वाले उनके ही साथी ऊचे-ऊचे पदों को प्राप्त कर लेते हैं। अब, आप ही बताइये कि ऐसे ज्ञान–विरोधी वातावरण मे विद्यार्थियो मे ज्ञानार्जन की विशुद्ध जिज्ञासा कैसे जाग्रत की जा सकती है ?

एक बात छात्र–आन्दोलन के विषय मे और कही जा सकती है, कि सामाजिक और राजनीतिक नेताओ के दुर्व्यवहारो की खबरें पढ–सुनकर छात्रों को कोई अच्छी प्रेरणा नहीं मिल पाती। सक्षेप में हमारे विद्यार्थी को न अपने परिवार से, न अध्यापको से और न समाज से ही कोई समुचित मार्ग–निर्देशन मिलता है।

प्रश्न—क्या अध्यापको की वेतन-वृद्धि से शिक्षा-समस्याओ का हल निकल सकता है ?

उत्तर—नहीं ... नही । अध्यापन का कार्य तो वस्तुत. मनोवृत्ति के परिष्करण से अधिक सम्बन्धित है। अध्यापक के आत्मतोष तथा आश्वस्त होने की नितान्त आवश्यकता है। परन्तु इसके विपरीत हमारे अध्यापक असतोष एवं Cynicism से ग्रसित हैं। मैं यह कहूँ तो गलत न होगा कि आमतौर से अध्यापन-कार्य मे द्वितीय अथवा तृतीय श्रेणी के बौद्धिक-वर्ग (Second rate intelligentia) के व्यक्ति ही आकर्षित हो पाते हैं।

प्रश्न—तब फिर शिक्षा-जगत् में अपेक्षित सुधार किस तरह लाया जा सकता है ?

उत्तर—जैसा मैंने ऊपर सकेत किया है, शिक्षा के बाह्य उपकरणो मे तो आवश्यक वृद्धि होनी ही चाहिये, किन्तु वास्तविक शिक्षा–सुधार शिक्षक ही कर सकते हैं। शिक्षक और विद्यार्थी का विचार–विनिमय ही शिक्षा की आत्मा है। यदि शिक्षक चाहें तो व्यक्तिगत एव सामूहिक प्रयत्नों द्वारा पाठ्यक्रमों में सुधार ला सकते हैं, अच्छी पाठ्य–सामग्री विद्यार्थियों को उपलब्ध करा सकते हैं, अपनी शिक्षण-विधि मे सुधार ला सकते हैं, इत्यादि।

प्रश्न—क्या आपको कक्षा मे पढाते समय छात्रो के चेहरो पर सतोष की झलक दृष्टिगोचर होती है ?

उत्तर—छात्रों के चेहरों को देखने से पहले मुझे अपना चेहरा देख लेना चाहिये। अथवा यो कहिये कि छात्रो के चेहरे दर्पण का कार्य करते

हूँ। मेरे चेहरे की छाया ही सीधे रूप मे विद्यार्थी के चेहरे पर छाया-नुकृति बन विराजमान हो जाती है। मुझे अपने-आपसे प्रश्न करना चाहिये कि क्या मै वास्तव मे पढाना चाहता हूँ? क्या मै अच्छी प्रकार पढ़ाना जानता हूँ? क्या मैंने पढाने के लिये पर्याप्त और स्पष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया है तथा क्या मैं छात्रों से स्नेह करता हूँ?

प्रश्न—आर्थिक कठिनाइयो का शिक्षा पर क्या प्रभाव पडता है?

उत्तर—जिन विद्यार्थियो के माता-पिताओ की आर्थिक अवस्था ठीक नहीं होती, उनके बच्चे अच्छी बुद्धि रखते हुये भी उत्तम प्रकार की शिक्षा ग्रहण नही कर पाते तथा घर के काम का भार अधिक होने से वे पढाई मे पर्याप्त समय नही लगा पाते। उनके रहने तथा पढ़ने के स्थान भी अनुपयुक्त होते हैं। और फिर यदि माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धी अशिक्षित हों, तो घरेलू वातावरण ही शिक्षा-विरोधी बन जाता है।

प्रश्न—आपके मत से क्या अन्य भी कोई शिक्षा-विरोधी तत्त्व समाज में कार्य कर रहे हैं?

उत्तर—आधुनिक शिक्षा केवल तथ्य-ज्ञान और भौतिक विज्ञान पर बल देती है। भावनात्मक-ज्ञान, नैतिक-ज्ञान अथवा धर्म-ज्ञान की प्राय. कुछ भी शिक्षा नही दी जाती। इसलिये इन सूखे क्षेत्रों की पूर्ति नवयुवक अन्य सस्ते-सुलभ माध्यमों से करते हैं—रेडियो, सिनेमा, सस्ता साहित्य, आदि। क्योंकि इन माध्यमों की अधिकतर सामग्री आर्थिक लाभ की दृष्टि से ही तैयार की जाती है, अत इनसे विद्यार्थियों को कोई उप-युक्त उच्च प्रेरणास्पद शिक्षा प्राप्त होने की आशा नहीं की जा सकती। केवल एकागी, अवास्तविक, अनैतिक एव नीचे स्तर का मनोरजन ही मिलता है। जो इच्छायें इन माध्यमों से उत्तेजित होती हैं, उनकी आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियो के कारण तुष्टि न होने पर नवयुवकों मे कुण्ठा, नैराश्य और आक्रोश की वृत्तिया उभरने लगती हैं।

प्रश्न—वर्तमान की इस गम्भीर परिस्थिति को सुधारने की दिशा मे आप क्या सुझाव देंगे?

उत्तर—शिक्षकों के लिये रिफ्रेशर-कोर्सेज (अभिनवन-पाठ्यक्रम) होने चाहिये। उनकी विचार-गोष्ठिया होनी चाहिये, जिनमे वे नियमित

पाठ्य-क्रमों के विषयों के अतिरिक्त अन्य जीवन तथा समाज सम्बन्धी प्रश्नों पर मुक्त रूप से भाग ले सकें। ऐसी गोष्ठियों में विद्यार्थियों के मन में उठने वाले विभिन्न प्रकार के प्रश्नों के उत्तर देने के लिये शिक्षा-क्षेत्र के उच्चतम विचारकों को आमन्त्रित किया जाना चाहिये, जिससे विद्यार्थियों को बौद्धिक स्तर पर एक समन्वयात्मक दृष्टि भी मिले तथा उनकी उमड़ती हुई भावनाओं को उचित दिशा भी मिल सके।

डॉ० गोविन्द चन्द्र पाँण्डेय

(अध्यक्ष—इतिहास विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय)

•

छात्र-आन्दोलन का ज़िक्र जब मैंने डॉ० पाण्डेय से किया, तो उनके चेहरे पर मायूसी के भाव छा गये। विश्वविद्यालय के अपने कक्ष मे वे कुछ व्यक्तियों से बातचीत कर रहे थे। अन्य उपस्थित महानुभावो की ओर से मेरी तरफ मुडते हुए उन्होने कहा—आइये, चर्चा करने मे कोई हानि नही, क्या प्रश्न हैं आपके, पूछिये। मैंने कहा—

प्रश्न—महोदय ! क्या आप बतायेंगे कि स्वतत्र भारत मे इन दिनो छात्र-आन्दोलनों के फूटने के क्या कारण हो सकते हैं ?

उत्तर—ऐसी बात तो नही है, कि परतत्र भारत मे छात्र आन्दोलन करते ही न थे, परन्तु उस समय आन्दोलनो के कारण दूसरे ही थे। हाँ, पत्थर, ईंट इत्यादि फैंकना नई चीज़ है। वर्तमान शासन-व्यवस्था से सभी लोग, और मुख्य रूप से मध्यम वर्ग काफी असतुष्ट है और फिर ज्यो-ज्यो देश मे आम-चुनाव निकट आने लगते हैं, त्यो-त्यो देश के राज-नीतिक दल विद्यार्थियो मे असन्तोष उत्पन्न कर, उन्हे अपना राजनी-तिक मोहरा बनाने की चेष्टा करते हैं। मद्रास मे द्रविड मुन्नेत्र कड-गम यही तो कर रहा है। वैसे अन्य देशो, जैसे चीन, इन्डोचाइना इत्यादि में भी यही सब हो रहा है।

प्रश्न—स्वतत्रता-पूर्व भारत के छात्र-आक्रोश और वर्तमान छात्र-आक्रोश मे क्या कोई मौलिक अन्तर है ?

उत्तर—पहले विदेशी शासन को हटाने के लिये आन्दोलन होते थे, और अब ये राजनीतिक दल-विशेष की नीति से प्रेरित होकर प्रारम्भ होते हैं। पहले वाले आन्दोलनो में समझौते का प्रश्न ही नही उठता था, क्योकि विदेशी शासन को हटाना ही एकमात्र शर्त थी। आज सवैधानिक ढग से समझौते की कल्पना की जा सकती है।

प्रश्न—क्या आपके विचार से विद्यार्थी–आन्दोलन एक ऐतिहासिक अनिवार्यता है ?

उत्तर—नही ।

प्रश्न—क्या आप वर्तमान परिस्थितियों के सन्दर्भ मे इन आन्दोलनों के भविष्य मे कुछ सकेत दे सकेंगे ?

उत्तर—इनके बढने की ही सम्भावना अधिक है। हमारे देश की दल–नीति असतुलित है । विरोधी दल भी स्वस्थ नही हैं । भविष्य में यदि यही रीति–नीति चलती रही, तो कटु राजनीतिक सघर्ष बढ़ेंगे और साथ ही छात्र–आन्दोलन मे भी वृद्धि होती जायगी ।

प्रश्न—क्या हमारा वर्तमान विद्यार्थी अपनी पुरानी परम्परा से नितान्त अलग हो गया है ?

उत्तर—हाँ, बिलकुल अलग । पहले विद्यार्थी विद्यार्जन एव चरित्र–निर्वाह आदि जैसी बातों के लिये विद्यालयों मे जाता था । आज की भाति पहले शिक्षा का सीधा सम्बन्ध धनोपार्जन न था । अब तो विद्यार्थी का कोई चारित्रिक आदर्श ही नही रह गया है । हाँ, विदेशी बुराइयो का अवश्य आयात हो गया है । पहले का विद्यार्थी विद्यालय से बाहर आकर समाजोपयोगी सिद्ध होता था, आज राष्ट्र–निर्माण के प्रयत्नों में उसका कोई स्थान निश्चित नही है । वैसे विद्यार्थी भी बेचारा क्या करे, सारी शिक्षा–पद्धति ही प्रेरणास्पद नहीं है ।

प्रश्न—क्या प्राचीन विद्यार्थी की तुलना मे आज के विद्यार्थी की कोई नवीन उपलब्धि नहीं है ?

उत्तर—नहीं । पहले विद्यार्थी आत्म-स्वाभिमानी एवं आत्मनिष्ठ था तथा दूसरे देशों को ज्ञान देता था, आज का विद्यार्थी ज्ञानार्जन हेतु विदेश जाने का इच्छुक है ।

प्रश्न—क्या इतिहास मे विद्यार्थी–आन्दोलन कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका के रूप मे स्थान पा सकेगा ?

उत्तर—इस समय का विद्यार्थी तो असन्तोष का ईधन है, स्वय झुलसेगा और समाज को झुलसायेगा ।

प्रश्न—वैचारिक-स्तर पर इस छात्र-आक्रोश की सीधी टक्कर किससे है ?

उत्तर—इस बात को स्वय छात्र भी नहीं पहचानते। असन्तोष के कारण बडे घुले-मिले से एव समाजव्यापी हैं। हां, विद्यार्थियो को शिक्षा की सुविधायें नही हैं तथा साथ ही धनोपार्जन के साधन भी नही हैं।

प्रश्न—आपके मत में हमारी शिक्षा-प्रणाली का सबसे बडा दोष क्या है ?

उत्तर—शिक्षा की कोई सार्थकता नही है।

प्रश्न—अध्यापक-वर्ग अध्यापन मे रुचि लेते हैं अथवा नही ?

उत्तर—अध्यापन और अध्ययन की तो स्थिति का एक ही दृष्टान्त पर्याप्त है, कि विश्वविद्यालय 6-6 माह तक बन्द हो जाते हैं, परन्तु परीक्षा-परिणाम का प्रतिशत पूर्ववतः ही बना रहता है।

प्रश्न—अध्यापक-वर्ग अध्यापन मे रुचि क्यो नही लेता ?

उत्तर—उनका यह कहना है कि दुनिया में सबसे बडा अन्याय उन्ही के साथ हो रहा है और वे आर्थिक समस्याओं से ग्रसित हैं।

प्रश्न—विश्वविद्यालयों के अध्यापकों के साथ तो इतनी विषम आर्थिक समस्या नही है, फिर भी वे अध्यापन मे रुचि क्यों नही लेते ?

उत्तर—इसका सीधा मतलब है कि वे अयोग्य है और असल बात तो यह है कि वे वेमन से यहा आये हैं। यदि कल ही उन्हे कोई अन्य प्रशासनिक-सेवा मिल जाय, तो अध्यापन-कार्य को छोड देंगे। लोगों मे ज्ञान की प्यास बुझ गई है।

प्रश्न—क्या अध्यापकों के वेतन को वढाने से समस्या का हल निकल सकता है ?

उत्तर—वर्तमान मनोवृत्ति वाले अध्यापको पर कोई फर्क नही पडेगा। वैसे आर्थिक कठिनाई, यदि हो, तो उसे हटाया ही जाना चाहिये। मुख्य रूप से तो अध्यापक को जिज्ञासु होना चाहिये। हमारे देश का ज्ञान आज विदेशों मे उत्पन्न होता है। हम अपनी हीन भावना के कारण, विदेशी कूडे-करकट के प्रति अत्यन्त आकर्षित है। मै एक विदेशी टैक्सी-ड्राइवर को जानता हूं, जिसको हमारे शिक्षा-शास्त्रियों ने बडा सम्मान दिया। इस प्रकार विदेशों के द्वितीय और तृतीय श्रेणी का मानस भारत मे विशेषज्ञ (Expert) के रूप मे समादृत होता है।

प्रश्न—इस समस्या के निराकरण हेतु क्या आप कुछ सुझाव दे सकेंगे ?

उत्तर—हमारी शिक्षा-पद्धति मे परिवर्तन होना चाहिये। हमारे विचारों और आचरण मे स्वदेशी-स्वावलबन तथा राष्ट्रीय आदर्शों की स्थापना होनी चाहिये। विद्यालयों की व्यवस्था ठीक होनी चाहिये। प्रशासकों को सबलता धारण करनी चाहिये और जो उपद्रवी छात्र नहीं हैं, उनकी भी न्यायोचित बात को सुनना चाहिये। हमे आर्थिक आत्म-निर्भरता के साथ-साथ आध्यात्मिक आत्म-निर्भरता की ओर भी बढना है। एक बार डॉ० सनयात सेन ने कहा था "चीन को स्वदेशी सामाजिक ज्ञान के साथ पाश्चात्य भौतिक विज्ञान का समावेश करना है।" यही हमारे सन्दर्भ मे भी कहा जा सकता है। हमारे राज-नेता भी आजकल विदेशी सिद्धान्तों से-विशेष चमत्कृत मालूम पडते हैं। उन्हे अपनी भूमि मे सोधी सुगन्ध ही नहीं आती, जिसके दुष्परिणाम भी वे भोग रहे हैं और यदि हमने यह सोच ही लिया है कि ५ हजार वर्षों की भारतीय सस्कृति मे कुछ भी श्रद्धास्पद एव ग्रहणीय नहीं है, फिर तो आगे की सारी बात ही समाप्त हो जाती है।

एल पी श्रीवास्तव

•

प्रात: काल का समय था। मैं श्रीवास्तव महोदय के निवास-स्थान पर ही उनसे मिला। चाय का प्याला मेरी ओर देते हुये उन्होंने कहा,— ये प्रश्न आप किसी बडे शिक्षा-शास्त्री से पूछते तो अधिक अच्छा होता, मुझसे आपको कदाचित् कोई विशेष लाभ न होगा। मैंने कहा, महोदय ! हम इस समस्या के बारे मे आम अभिभावक की राय भी जानना चाहते हैं कि वे अपने बच्चो के बारे मे कैसा और क्या सोच रहे हैं ? और फिर आपका तो शिक्षा-जीवन के साथ भी बहुत निकट का सम्बन्ध रहा है। मेरी बात सुन कर वे कुछ देर के लिये मौन हो गये और फिर बोले, हम अभिभावकों के कहने-सुनने से कुछ होता-जाता तो है नहीं, फिर भी आप जो चाहें पूछिये। मैंने पूछा—

प्रश्न—महोदय, आपके विचार से आजकल छात्र-आन्दोलन क्यों करते हैं ?

उत्तर—अजी साहब, इसके अनेक कारण हैं—जैसे यूनिवर्सिटी मे आये दिन पाठ्य-पुस्तकें बदल दी जाती हैं। ऐसा करने से कुछ लोगों को तो निरन्तर आर्थिक लाभ होता रहता है, परन्तु सरक्षको को नयी-नयी पुस्तकें खरीदनी पडती हैं। और देखिये, मेडिकल कॉलेज मे प्रवेश हेतु, प्री-मेडिकल टैस्ट की एक नयी शर्त लगानी चाही है, अब इससे क्या होगा कि जिन मेधावी छात्रो ने अपने परिश्रम से परीक्षाओ मे अच्छे अक प्राप्त किये हैं, वे तो मेडिकल मे जा नही सकेंगे और इधर-उधर के उनसे कम योग्यता वाले विद्यार्थी येनकेन प्रकारेण, प्रवेश पाने मे समर्थ हो जावेंगे। इसके अतिरिक्त, फीसो की वृद्धि से तो असन्तोष फैलता ही है, लेकिन आये दिन घर वालों से बच्चे आकर पैसे माँगते रहते हैं कि आज हमारे विद्यालय की स्वर्ण जयती मनायी जा रही है, तो कल कोई अन्य कार्यक्रम का आयोजन हो रहा है। घर वाले भी रोज-रोज पैसा कहाँ से दें ? इसके अलावा, मेरी सम्मति मे तो यह जो त्रिवर्षीय पाठ्य-क्रम (स्नातक योग्यता हेतु) निर्धारित किया गया है, उसे हटाकर पुराना ढग ही अपनाया जाना चाहिये। आज यदि कोई छात्र प्रथम वर्ष की परीक्षा उत्तीर्ण

करके किसी कारणवश अपना अध्ययन छोड देता है, तो वह परीक्षा किस काम आवेगी ? पहले छात्र इस परीक्षा को पास करने से इन्टरमीजिएट परीक्षा उत्तीर्ण माना जाता था और आज तो नित्य प्रति पाठ्यक्रम भी बदलते रहते हैं...। कुल मिला कर मेरे विचार से तो सारी शिक्षा-नीति ही गलत है। इस कारण यदि छात्र-आंदोलन करते भी हैं, तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ?

प्रश्न—तो क्या आपकी राय मे ये आन्दोलन किये जाने चाहिये ?

उत्तर—हाँ, ये आन्दोलन आमतौर पर वाजिब ही हैं, लेकिन विद्यार्थियो के द्वारा राष्ट्रीय सम्पत्ति का नष्ट किया जाना उचित नही है।

प्रश्न—क्या आपका तात्पर्य यह है कि माँगों के माँगने का ढग यदि प्रजातान्त्रिक हो, तो छात्रों की माँगें स्वीकार हो सकेंगी ?

उत्तर—यदि माँगें उचित होगी तो अवश्य स्वीकृत होगी।

प्रश्न—क्या छात्रो की माँगें उचित होती हैं ?

उत्तर—कुछ माँगें अनुचित भी होती हैं, लेकिन अधिकतर माँगे उचित ही होती हैं।

प्रश्न—जब न्यायोचित माँगो के स्वीकृत होने की सम्भावना है, तो फिर ये उग्र प्रदर्शन प्राय क्यो खडे हो जाते हैं ?

उत्तर—अधिकतर अधिकारीगण, ऐसे अवसरो पर अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का प्रश्न खडा कर देते हैं और इस प्रकार बात बढ जाती है।

प्रश्न—क्या छात्र-आन्दोलन होने के कुछ और भी अन्य कारण हो सकते हैं ?

उत्तर—अन्य कारण भी हैं—जैसे, छात्रो की सख्या अधिक होने से छात्रो और शिक्षको के मध्य, समीप का कोई व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित नहीं हो पाता और इसके कारण स्नेह तथा अनुशासन का वातावरण निर्मित नही हो सकता। एक कारण यह भी है, कि छात्रो के सामने भविष्य की कोई रूपरेखा ही स्पष्ट नही है और फिर आये दिन शिक्षा सम्बन्धी नियम परिवर्तित होते रहते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि छात्रो में निराशा और हिंसा की भावनायें उठने लगती हैं।

प्रश्न—औसत शिक्षक के प्रति आपकी कैसी धारणा है ?

उत्तर—चूँकि शिक्षको को वेतन कम मिलता है, अत वे अध्यापन से अधिक ट्यूशन करने या अन्य किसी प्रकार से धन कमाने के कार्य को अधिक प्राथमिकता देते हैं।

प्रश्न—जिन अध्यापको का वेतन-स्तर अपेक्षाकृत ऊँचा है, क्या वे अध्यापन मे रुचि लेते हैं ?

उत्तर—मेरे विचार से तो अधिकतर अध्यापक प्राय अपना समय बरबाद ही करते हैं। आमतौर पर प्राध्यापक लोग जब घर पर ही दिखाई देते हैं, तो समझ मे नही आता कि वे पढाते किस समय होगे। वैसे कुछ अध्यापक 'सिन्सीअर' भी होते हैं।

प्रश्न—इस समस्या के उत्पन्न होने के लिये क्या आप और भी कोई कारण बता सकेंगे?

उत्तर—हाँ, कुछ राजनीतिज्ञ भी छात्रो को भडकाते रहते हैं।

प्रश्न—आपकी दृष्टि से बच्चे अपने अभिभावकों के अनुशासन मे रह पा रहे हैं, अथवा नही?

उत्तर—अधिकतर तो बच्चे अभिभावको की बात मानते है नहीं, क्योकि उनका तर्क यह रहता है कि हम कोई व्यक्तिगत माँगें थोडे ही माँग रहे हैं, यह तो एक सामूहिक प्रश्न है, जिसके लिये हम सभी वचनबद्ध एव कटिबद्ध हैं। और फिर आप जानते हैं कि ऐसे समय मे 'समूह की भावना' (Mob mentality) सभी छात्रो के मस्तिष्कों पर छा जाती है।

प्रश्न—यदि माँ-बाप व्यक्तिगत रूप से घर पर अपने बच्चे को औचित्य और अनौचित्य की बात समझाते हैं, तो क्या वे उस पर ध्यान देते हैं?

उत्तर—हां, क्यों नहीं, देते हैं। आखिर तो बच्चे भी 'सैन्सिबिल' (समझदार) होते हैं। हाँ, एक बात इस विषय मे और है कि बच्चे समझते तब ही हैं, जबकि उन्हे ठीक बात समझायी जाय। अनुचित बातो के बहकावे मे वे नही आते। और फिर सरक्षक अब न तो अनुचित बात का समर्थन ही करता है और न अपने बच्चो से ऐसा करने को ही कहता है।

प्रश्न—कुल मिलाकर क्या बच्चे अपने सरक्षकों के वश मे हैं?

उत्तर—आमतौर पर तो हैं ही। हाँ, कुछ दादा-टाइप लड़के अवश्य काबू से बाहर हो जाते हैं।

प्रश्न—बच्चे को बिगडने में क्या किसी सीमा तक सरक्षक भी उत्तरदायी नही हैं?

उत्तर—बच्चो का बनना-बिगडना अधिकतर माता-पिता की आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। कोई भी व्यक्ति अपनी सन्तान को बिगाडना नहीं चाहता। आज यदि कोई बच्चा बिगड़ ही जाता है, तो बेचारा अभिभावक क्या कर सकता है? वह अधिक

से अधिक उसे समझा सकता है, लेकिन वह फिर भी न माने तो उसके पास प्रत्यक्ष तो कोई उपचार है नही।

प्रश्न—इस छात्र-असन्तोष के समाधान हेतु क्या आप कृपया कोई सुझाव दे सकेंगे ?

उत्तर—मेरे विचार से शिक्षा को सोद्देश्य बनाना होगा और साथ ही इसे धनोपार्जन का साधन भी बनाना होगा। इसके साथ-साथ ही केवल उन्ही छात्रो को उच्च शिक्षा पढने देना चाहियें, जो वास्तव में योग्य हों, इससे विद्यालयों की अनावश्यक भीड भी कम होगी, अनुशासन-हीनता घटेगी और जो व्यक्ति जिस कार्य के उपयुक्त होगा, उसे उसके अनुसार ही प्रशिक्षण प्राप्त हो सकेगा। अन्त मे, मैं तो यही कहूँगा कि हमारी शिक्षा-व्यवस्था का नवीनीकरण प्राथमिक कक्षा के स्तर से ही किया जाना चाहिये।

रघुवीर प्रसाद भटनागर

श्री भटनागर का स्नेह तथा सौहार्द्र मुझे स्मरण रहेगा। सारी झंझटो के बीच से समय निकाल कर उन्होंने मुझे अपने पुस्तको की भीड वाले कमरे मे बिठा कर कहा, "भाई साहब, आपका प्रत्येक कार्य मैं करूंगा।" अत्यन्त मैत्री-भाव, सहयोग एवं अपनत्व वाले इस वाक्य से प्रेरित होकर मैंने अपनी पहली जिज्ञासा उनसे इस प्रकार प्रगट की—

प्रश्न—श्रीमान्! आपके विचार से छात्र-आन्दोलन के क्या कारण हो सकते हैं?

उत्तर—बुनियादी तौर पर छात्र-आन्दोलन के तीन प्रमुख कारण बताये जा सकते हैं—आर्थिक विषमता, समाज व शिक्षा में सुनिश्चित एव प्रगतिशील विचारधारा का अभाव तथा आधुनिकता व परम्परा के अन्तर्विरोध से उत्पन्न तनाव।

प्राय. देखा जाता है, कि छात्र-आन्दोलन के कारणों का विश्लेषण करते समय भ्रमवश रोग के लक्षणो को रोग की सज्ञा दे दी जाती है। छात्रों मे व्याप्त नैराश्य व कुण्ठाएँ रोग नही हैं, रोग के लक्षण हैं। रोग है आर्थिक-विषमता। घोर असमता व अन्याय के आधार पर चल रहे समाज मे तरुण हृदय आन्दोलित न हो, ऐसा समझना बड़ी भूल है।

उधर, आज का छात्र या तो लक्ष्यहीन है अथवा प्रतिक्रियावादी विचारधाराओ से गुमराह है। सकीर्णता, साम्प्रदायिकता, जातीयता, प्रादेशिक व भाषायी मताम्धता के विष पर जीवित छात्र सभी प्रकार की अव्यवस्था फैलाने मे मुख्य भूमिका अदा करता है। आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्रव्यापी छात्र-आन्दोलन सुस्पष्ट, रचनात्मक व प्रगतिशील सिद्धान्तो के आधार पर सगठित किया जाए।

नये-पुराने का द्वन्द्व व तज्जनित तनाव सक्रान्ति-काल की विशेषता है। रूढ़िवादी शक्तियाँ डटकर नवीनता व प्रगति के मार्ग मे बाधाएँ उपस्थित करती हैं। इनसे लडना नई पीढी का पावन कर्त्तव्य है। हाँ, लड़ाई करते समय दिशा-भ्रान्ति नहीं होनी चाहिये।

प्रश्न— अभिभावक छात्रों पर नियन्त्रण रख पाते हैं या नहीं ? यदि हां, तो फिर यह उग्र प्रदर्शन क्यों होते हैं ? यदि नहीं, तो वे क्यों नहीं नियन्त्रण रख पाते ?

उत्तर—आमतौर पर आधुनिक समाज में अभिभावक छात्रों पर नियन्त्रण रखने में असमर्थ हैं। इसके तीन मुख्य कारण बताये जा सकते हैं—

(१) परिवार-व्यवस्था का विघटन।

(२) नई पीढ़ी में सामान्य रूप से व्यक्तिवादी प्रवृत्ति का उभार, अधिकार-विरोधी भावना का बाहुल्य व छात्रों के अवचेतन पर राजनीतिक अनुशासनहीनता का गहरा प्रभाव।

(३) नई व पुरानी पीढ़ियों की मान्यताओं के बीच की खाई।

प्रश्न—वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था से क्या आप सन्तुष्ट हैं ?

उत्तर—जी नहीं, मैं उससे घोर असन्तुष्ट हूं।

प्रश्न—शैक्षणिक नियमों के विरुद्ध छात्रों द्वारा हिंसा के प्रयोग से क्या आप सहमत हैं ?

उत्तर—प्रश्न हिंसा के प्रयोग से सहमत अथवा असहमत होने का नहीं है। वह तो यह है कि क्या हमारा समाज हिंसा के प्रयोग के बिना ही आमूल क्रान्ति करने देगा ? मेरी निजी धारणा यह है कि निहित स्वार्थ यथापूर्व स्थिति बनाए रखने के लिए कृत-संकल्प है। ऐसी स्थिति में हिंसा के प्रयोग को मैं तो आवश्यक बुराई नहीं मानूंगा। हां, निरंकुश हिंसा लक्ष्य प्राप्ति में सहायक न होकर बाधक हो जाती है। हिंसा की सीमा उसकी आवश्यकता की परिधि के अन्तर्गत ही ढूंढनी पड़ेगी।

प्रश्न—समस्या का निराकरण क्या है ?

उत्तर—सामाजिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन—समता, समाजवाद, मानवीयता व प्रगति की दिशा में।

हनुमान शर्मा

(महा निरीक्षक—पुलिस विभाग, राजस्थान)

•

विद्यार्थी-आन्दोलन के बारे मे विचार जानने हेतु एक दो बार मैं आई० जी० महोदय से मिल चुका था, परन्तु मैंने उन्हें प्राय: कार्यव्यस्त ही पाया। अब की बार जब रात्रि को मैं उनके निवासस्थान पर पहुँचा तो वे तुरन्त मेरे अभिप्राय को समझ गये और बोले, अच्छा आप आ गये, ठीक है तो आज चर्चा करली जाय, बैठिये। मैंने पूछा—

प्रश्न—महोदय ! आपके विचार से एक अच्छी शिक्षा-व्यवस्था कैसी होनी चाहिये ?

उत्तर—शिक्षा से मैं यह अर्थ लेता हूँ, कि जो बालक के अन्दर निहित सर्वश्रेष्ठ तत्त्व हो, उन्हें वह बाहर लासके और उन्हे बालको को समाजोपयोगी बना सके। शिक्षा एक प्रकार से चिर-संचित अनुभवो से प्राप्त एक परिपक्व विचारधारा है। व्यक्ति समाज मे रीति-नीति, ज्ञान तथा विचार को जन्म देता है, इसके बदले मे समाज उसे पोषण व्यवस्था तथा सुरक्षा प्रदान करता है। शिक्षा के द्वारा ही इच्छा, क्रिया और ज्ञान के समन्वित रूप की स्थापना होती है। मेरे विचार से शिक्षा एक महत् तत्त्व है, जो दिव्यता एवं भव्यता जैसे आलोक से प्रकाशित है। जो शिक्षित हो जाता है, उसके समस्त व्यवहारो में आचरण की सहजता का प्रादुर्भाव हो जाता है।

प्रश्न—ऐसी शिक्षा की व्यवस्था कैसे की जा सकती है ?

उत्तर—अजी, व्यवस्था, प्रणाली, सिद्धान्त इत्यादि जैसे आकर्षक शब्दावलियों (High Sounding phraseology) से अब काम न चलेगा। अब यदि वास्तव में आप उत्तम शिक्षा देना ही चाहते हैं, तो उत्तम अध्यापको को खोजिये और यदि न मिलें तो उनका निर्माण करिये। बाकी बातें शब्दो का जजाल है, भ्रम है।

प्रश्न—'उत्तम अध्यापक' कैसा हो ?

उत्तर—'उत्तम अध्यापक' वह है, जिसमे पढाने की यथेष्ट योग्यता हो और साथ ही वह यह भी जानता हो कि पढाया कैसे जाय। अध्यापक को अपने ज्ञान, आचरण एवं चरित्र की श्रेष्ठता द्वारा छात्र के ऊपर अपनी अमिट छाप लगा देनी चाहिये। एक उत्तम अध्यापक आवश्यक रूप से अपने विद्यार्थी के जीवन का कायाकल्प करता है और चूंकि वह अपने छात्रों की मनोभूमि को पहचानता है, इसी कारण वह उनकी मानसिक प्रतिक्रियाओ को नियन्त्रण मे रखने का वास्तविक अधिकारी है। वह छात्र-जीवन का मर्यादा यत्र (Safty-volve) है। वह उनके मानसिक आन्दोलनो, उद्वेगो, उनके क्रिया-कलापो तथा व्यवहारों का प्रणेता, सूत्र धार एव संचालक है। एक 'उत्तम अध्यापक' अपने उच्च व्यक्तित्व द्वारा बिना बोले ही शिक्षा प्रदान किया करता है, जैसे किसी महापुरुष के दर्शन मात्र से लोगो का कल्याण हो जाता हैं।

प्रश्न—'अनुशासन' से आप क्या अभिप्राय लेते हैं ?

उत्तर—किसी भी व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालन करने हेतु जो एक नियमबद्ध मानसिक आचरण की व्यवस्था करनी होती है, मेरे विचार से वही अनुशासन है। मेरे हिसाब से तो इस जगत् मे जो कुछ भी नियमित घटित हो रहा है, वह अनुशासन के अन्तर्गत ही हो रहा है। इस प्रकार अनुशासन के भिन्न-भिन्न प्रकार हो सकते हैं, परन्तु यहाँ आपका तात्पर्य कदाचित शैक्षणिक अनुशासन से है। (मैंने कहा, जी हाँ) देखिये, अनुशासन और शासन मे भी बडा अन्तर है। शासन आदेशो और नियमों का वाह्य शक्ति द्वारा अनुपालन है, जबकि अनुशासन किसी नियम आम्ड पर रहने की स्वत.स्फूर्तित एक आन्तरिक इच्छा है। शासन द्वारा विधि-विधान का पालन भय एव दण्ड द्वारा कराया जाता है, जबकि अनुशासन से हमारा तात्पर्य उस आत्मानुशासन से होता है, जो व्यक्ति की भावना से सुगन्वित, इच्छा से पोषित तथा आत्म-प्रेरणा से जीवित है। मैं पूर्व ही बता चुका हूं, कि मान कर्ता (शिक्षक) ही अपने ज्ञान, चरित्र तथा आचरण की उच्चता द्वारा अपने शिष्यों द्वारा वांछित अनुशासन की स्थापना करा सकता है।

प्रश्न—वर्तमान सन्दर्भों में, जबकि पुलिस शिक्षा-संस्थाओं मे हस्तक्षेप कर रही है, तो 'शिक्षा-स्वातन्त्र्य के सिद्धान्त' के प्रति आपका क्या दृष्टिकोण है ?

उत्तर—यह बडे दुर्भाग्य की घटना है कि एक विशुद्ध शैक्षणिक समस्या (जिसके अन्य भी कुछ कारण हो सकते हैं) को आत्यन्तिक कानून और व्यवस्था की समस्या (An extreme problem of law and order) के रूप मे परिवर्तित कर दिया गया है। पुलिस और विद्यार्थियो का कोई सीधा सम्बन्ध नही है, जैसा कि आज दृष्टिगोचर हो रहा है। यह हमारे देश का एक और ऐतिहासिक दुर्वृत्तात है, कि ब्रिटिशकाल मे पुलिस के प्रति छात्र के मानस मे घृणा, विक्षोभ तथा प्रतिरोध की भावना भर गयी थी। लाल पगडी (पुलिस का सिपाही) को भारतीय मन ने, जन-जीवन का आरक्षक न मानकर, अपने विरोधी के रूप मे माना था और आज जब कि हम स्वतत्र हो गये हैं, हमारा राज्य है, हमारी पुलिस है, फिर भी समय का कुछ ऐसा चक्र चला है कि छात्रो के मन मे पुलिस के प्रति अब भी वह विरोधात्मक मानसिक परम्परा को बढावा मिल रहा है। पुलिस को देखते ही बालक कुपित हो उठते हैं और चिल्लाने लगते हैं। इस सबके लिये पुलिस को दोषी ठहराना उचित नही। पुलिस के जिस स्वरूप को गढ कर समय, परिस्थिति और समाज ने रखा है, वह हमारे आपके सबके सामने है। कानूनी तौर पर, उसे 'ला एण्ड आर्डर' (कानून और व्यवस्था) बनाये रखना पडता है। लेकिन यह कानून और व्यवस्था इस भाति स्थापित नही की जा सकेगी। ऐसी मेरी मान्यता है।

प्रश्न—छात्रो के अभिभावक उन्हे ऐसे कार्यों मे भाग लेने से क्यों नही रोकते ?

उत्तर—छात्रों के घरवाले अपनी दाल-रोटी की चिन्ता में इतने व्यस्त हैं कि वे आपेसे बाहर हुई अपनी सतान से बात करने का अवकाश ही नहीं निकाल पाते। विवश, वे उन्हे विद्यालयों की ओर ठेल देते हैं। विद्यालय वाले भी उन्हे (भगवान जाने पढ़ा नही पाते या पढाते नहीं) सडकों का रास्ता बता देते हैं, और सडकों वाली शिक्षा जैसी वे ग्रहण कर रहे हैं, उसे आज सभी लोग जानते हैं। इस प्रकार अभिभावक और शिक्षक दोनों मिल कर बेचारी भोली-भाली सतति के जीवन से खिलवाड़ कर रहे हैं।

प्रश्न—विद्यार्थियों के अभिभावक क्यों कर ऐसा कर रहे हैं, क्या इसे और भी अधिक स्पष्ट करने का कष्ट करेंगे ?

उत्तर—अभिभावकों की आर्थिक कठिनाई की ओर मैंने अभी सकेत किया ही था। परन्तु मूल बात तो भाई यह है, कि भारतीय जन-व्यवस्था की

सबसे बड़ी विशिष्टता यह थी, कि वह लोक-समाज पर आधारित थी। आज वह दुर्दैववश टूट-टूट कर गिरती जा रही है। समाज मे आज समाज-सेवी व्यक्तियों का अभाव हो गया है, अतः एक प्रकार की रिक्तता (Vaecum) उत्पन्न हो गयी है। और अभिभावक की भी कूटनीति देखिये, वह अपने चतुर्दिक् व्याप्त वातावरण से क्षुब्ध है, अर्थात् क्रोधित है, लेकिन वह अपना क्रोध निकाले तो किस पर? उसे डर जो लगता है। बस विद्यार्जन के नाम पर अपनी सन्तान को विद्यालय भेज देता है. लेकिन जब वे वहाँ पर उपद्रव करते हैं, तो वह उनको शांत करने नही आता। आये भी क्यों? उसके मन में क्रोध की जो भड़ास भरी पड़ी है, उसे स्वय तो प्रगट कर नहीं सकता, अपने बच्चों के द्वारा अपनी मनचीती इच्छाओं की पूर्ति कर लेता है। अन्यथा, यदि सभी अभिभावक चाहें तो क्या ये बच्चे उनकी आज्ञा को मानेंगे नही ?

प्रश्न—पुलिस द्वारा छात्रो पर शक्ति-प्रयोग का औचित्य आप किस सीमा के पश्चात् वाछनीय समझते हैं ?

उत्तर—यदि कोई समझाने-बुझाने पर भी न मानें और शांति और व्यवस्थाको खतरा उत्पन्न हो जाय, तो विवश शक्ति प्रयोग अनिवार्य हो जाता है।

प्रश्न—छात्रों पर विशेष रियायती दृष्टि से, तुरन्त शक्ति प्रयोग न कर, उनके द्वारा किये कार्यों के परिणामों की सभावना में, यदि कुछ समय के लिये शक्ति का प्रयोग स्थगित कर दिया जाय, तो आपकी राय में क्या परिणाम हो सकते हैं?

उत्तर—यो तो विद्यार्थियों के मामले मे वैसे ही पुलिस कभी उग्रता का रुख नही अपनाती, परन्तु फिर भी पुलिस सम्भावनाओ का खतरा नही उठा सकती। आज धरना शुरू होता है, कल घेराव और परसों प्रदर्शन और बस शनै. शनै हिंसा के बीज अकुरित होने लगते हैं। हिंसा का स्वभाव है कि जब इसकी चिनगारी फूटने लगती है, तो फिर शीघ्र ही दावानल की भाँति अपना विस्तार करने लगती है। अत इसका रोकना ही शुभ है। इसी कारण गांधीजी ने भी 'चोरा चोरी घटना' के बाद ही अपना आन्दोलन वापस ले लिया था।

प्रश्न— आपने अभी कहा कि शक्ति प्रयोग द्वारा अनुशासन की स्थापना सम्भव नहीं, तो इस अवांछित शक्ति प्रयोग के क्या परिणाम हो सकते हैं ?

उत्तर—हिंसा और उपद्रवो के तूफान आयेंगे। अभी पुलिस बुलायी जाती है, कल को सेना बुलानी पड़ेगी। बड़े भयकर दुष्परिणाम भोगने पड़ सकते हैं, गत दिनो के साम्प्रदायिक उपद्रवो से भी भयकर।

प्रश्न—छात्रो पर डडे बरसाते समय पुलिस अधिकारियों की मन स्थिति के अध्ययन करने का क्या आपको अनुभव हुआ है? वे कैसा अनुभव करते हैं?

उत्तर—पुलिस वाला अमानुषिक, हृदयहीन एव निर्दयी नही होता। उसके भी भावना एव सवेदनशीलता होती है। उसे दुःख होता है, कि वह जिन पर डडे बरसा रहा है, उन्हीं में यहीं कहीं उसका भी बच्चा होगा, लेकिन वह मजबूर है।

प्रश्न—पुलिस के इस मानवीय दृष्टिकोण के बावजूद भी आज पुलिस को अच्छी दृष्टि से क्यो नही देखा जाता?

उत्तर—मैंने अभी बताया न, कि इतिहास ने व आज हमने उसे जो स्वरूप प्रदान किया है, वह तदनुसार उस रूप को लेकर चल रही है। उस का काम ही आज्ञा मानना है। मेरी दृष्टि में पुलिस एक अत्यन्त अच्छी सस्था है। (मेरे विचार से अब आई जी महोदय को यह ध्यान हो आया था, कि वे एक पुलिस अधिकारी भी हैं) वास्तव में अगर कोई सेवा करता है, तो वह पुलिस वाला ही करता है। रात्रि को जब सोते हैं, तो वह जाड़े-पाले मे जगकर आपके जान-माल की रक्षा करता है। वह कठिन काम करता है, २४ घण्टे की नौकरी करता है और बदले मे उसे मिलता है—अल्प वेतन और असख्य गालियां। लेकिन, वह उस स्थिति को भी सयम से सहन करता है। यों अच्छे बुरे, सभी सस्थाओं में समान रूप से पाये जाते हैं। क्या आपके अध्यापकों मे पुलिस वालों से भी बुरे कार्य करने वाले व्यक्ति न होंगे, जो ट्यूशन के लिये बच्चों को तग करते हैं, उन्हें फेल करते हैं, पेपर आउट कराते हैं, नकल कराते हैं तथा और भी…। आज जब समाज मे छिपे हुये, चोरी के तरीकों से लोग धनवान व बड़े-बड़े पदों पर आसीन हैं, तो उनको तो समाज मे प्रतिष्ठा और सम्मान है, परन्तु पुलिस वाला, जो समाज का अनिवार्य अग है, उसकी कोई प्रतिष्ठा नही। यह कैसी बिडम्बना है?

प्रश्न—आपके विचार से यदि इसी प्रकार पुलिस अनिच्छापूर्वक छात्रों का दमन करती रही, तो कालान्तर मे पुलिस के मन पर कैसा प्रभाव पड सकता है ?

उत्तर—उसका मानस (Morale) गिर जायगा।

प्रश्न—श्रीमान् ! तो शिक्षा में कैसे सुधार लाया जा सकता है ?

उत्तर—इस महत्व प्रश्न का एक ही महत्व उत्तर है—"अच्छा शिक्षक"।

निरजन नाथ आचार्य

(अध्यक्ष—राजस्थान विधान सभा)

•

उदयपुर में मान्यवर आचार्य महोदय के निजी घर पर मेरी उनसे भेंट हुई, तो उन्होंने मेरे आने का कारण पूछा। मैंने उत्तर दिया कि छात्र-आन्दोलन के विषय को लेकर "शिक्षक-सघ" द्वारा प्रकाशित होने वाली पुस्तक मे आपके विचार जानने हेतु मैं दो बार जयपुर भी आपसे मिल चुका हूँ। आपके पास अवकाश का अभाव प्रायः बना ही रहता है, अच्छा हो यदि आज सक्षेप मे आप अपने कुछ विचार देने का कष्ट कर सकें। हमारा सघ आपके शिक्षा-सम्बन्धी विचारों का विशेष मान करता है। कुछ देर शान्त मुद्रा मे चुप रहने के पश्चात् (अनुमानतः उन्होंने इस समय मे अपने समय-विभाजन को व्यवस्थित किया होगा) वे बोले कि सक्षेप मे ही क्यों ? जब आपको विचार जानने ही हैं, तो पूरी प्रश्नावली मुझे दे दें तो अधिक सुन्दर रहेगा। मैंने हर्षित हो, अवसर से लाभ उठाते हुए कहा—महोदय, पूरी प्रश्नावली लेकर कब आऊँ, क्या आज ही ? कितने बजे ? उत्तर मे श्री आचार्य महोदय ने इतना भर ही कहा, 'आज शाम को आठ बजे।' पुन' आठ बजने मे कुछ मिनट पूर्व ही मै उनके स्थान पर पहुँच गया, लेकिन मुझे यह जानकर थोडी चिन्ता-सी हुई कि आचार्य जी घर पर नही थे। लेकिन आठ बजते न बजते उनकी कार दरवाजे पर आकर खडी हो गई। घडी की ओर देखते हुए वे बोले, "मै ठीक समय पर ही हूँ न ?" मैंने कहा, "जी हां महोदय" कमरे की ओर चलने का सकेत देते हुए उन्होंने कहा कि कुछेक प्रश्नों को एक साथ सुना जाइये। उनके पास वाली कुर्सी पर बैठकर मैंने कुछ प्रश्न पढकर सुनाये, तो उन्होने बीच मे रोक कर पूछा कि अपका पहला प्रश्न क्या था ? पूछिये। मैंने पहला प्रश्न किया—

प्रश्न—महोदय, क्या आप कृपया बता सकेंगे कि आपके मतानुसार सारे भारत मे व्याप्त इस छात्र-आन्दोलन के क्या कारण हैं ?

उत्तर—मेरे मत से इसके कई कारण हैं, लेकिन सबसे बडा कारण है—विद्यार्थी के घर की वर्तमान परिस्थिति। विद्यार्थी से हम जिस प्रकार

के अनुशासन भी अपेक्षा विद्यालयों में करते हैं, वह अनुशासन उन्हें अपने माता-पिता तथा पारिवारिक वातावरण से, प्राप्त नहीं होता। यद्यपि इसके लिये हमारी आज की सामाजिक-व्यवस्था ही उत्तरदायी है, तथापि इस तथ्य को भी नहीं भुलाया जा सकता कि "परिवार ही नागरिक गुणों की प्रथम पाठशाला है।" आज का अभिभावक आमतौर से कभी इस बात की चिन्ता ही नहीं करता कि उसका बच्चा पढ़ भी रहा है, अथवा नहीं तथा उसकी अतिरिक्त गतिविधियाँ क्या और कैसी हैं ? कर्त्तव्यों के प्रति उदासीनता को देखते हुए यदि अभिभावकों को उनके बच्चों की अनुशासनहीनता के लिये कानून में उत्तरदायी ठहरा दिया जाय, तो मेरा अनुमान है कि अनुशासनहीनता की इस गम्भीरता में कमी अवश्य आयेगी। परन्तु हमारी वर्तमान प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में कदाचित् यह व्यावहारिक एवं उचित नहीं होगा। अभिभावक का कर्त्तव्य अपने बालक के प्रति घर में सजगता रखना तो है ही, किन्तु उसका इसके अतिरिक्त भी विद्यालय में उसके प्रति जागरूक रहना अनिवार्य है। कई विद्यालयों ने अभिभावकों को सजग करने हेतु तथा यदाकदा उनका सहयोग प्राप्त करने के प्रयत्नों में "अभिभावक शिक्षक-संघ" जैसी संस्थाओं की स्थापना भी विद्यालय स्तर पर की है। अपने बालक के प्रति अभिरुचि रखने का आग्रह करने पर भी अभिभावक इस सम्बन्ध में पूर्ण उदासीन ही रहा। मेरी सम्मति से ऐसे संघों को पुष्ट करना आवश्यक है, जिससे अभिभावक के कर्त्तव्य को परखा जा सके।

प्रश्न—आपके विचार से किस प्रकार के छात्रों में अनुशासनहीनता की प्रवृत्ति विशेष रूप से पाई जाती है ?

उत्तर—वैसे तो मैंने अनुशासनहीनता का कारण अभी बताया ही है। उसीसे समाज के तीनों वर्ग—उच्च, मध्यम तथा निम्न—के छात्र प्रभावित हो रहे हैं, परन्तु यह बात भी स्पष्ट है कि अधिकतर वे छात्र जो प्रारम्भ से ही शहरी वातावरण में पले हैं, अपेक्षाकृत अधिक अनुशासन की मर्यादाओं की अवहेलना करते पाये जाते हैं।

प्रश्न—महोदय ! क्या आप अनुशासनहीनता के लिए अन्य भी किसी को उत्तरदायी समझते हैं ?

उत्तर—हाँ, क्यों नहीं ? सरकार भी इसके लिये उत्तरदायी है, वह शिक्षाधिकारियों तथा शिक्षकों के चयन हेतु जिस प्रकार की पद्धति अपनाती

रही है, वह दूषित है। इससे स्थिति पर नियन्त्रण पाना कठिन हो गया है। यहाँ तक की व्यवस्था तो फिर भी सन्तोषप्रद है, कि एक जिला विद्यालय निरीक्षक लगभग १० वर्षों के अध्यापन-अनुभव तथा एक उप शिक्षा निदेशक कई वर्षों तक जिले के शिक्षा-निरीक्षण कार्य के पश्चात् अपने-अपने पदों पर नियुक्त होते हैं। लेकिन शिक्षा-निर्देशक, शिक्षा-सचिव तथा शिक्षा मन्त्री के लिये, जो सारे प्रदेश की शिक्षा रीति-नीति को दिशा देते हैं, आप क्या कहेंगे ? क्या इन्हें (मैं एक सामान्य सा प्रश्न उठा रहा हूँ) शिक्षा-क्षेत्र की समस्याओं का तनिक भी अनुभव होता है ? अखिल भारतीय सेवाओं (आई० ए० एस०) मे चयनित, ये व्यक्ति कदाचित् ही शिक्षा की इस असहाय तथा विपन्नावस्था से परिचित होते है। इस प्रकार के शिक्षा-प्रशासक अध्यापक की त्रुटि को देखकर उसे दण्डित अथवा स्थानान्तरण तो कर सकते है, परन्तु उसे न तो उचित मार्ग दिखा सकते हैं और न सही अध्यापक बनने के लिये भावनात्मक सानिध्य ही प्रदान कर सकते है।

प्रश्न—अभी आपने बताया कि अध्यापको के चयन की प्रणाली भी ठीक नही है, तो इसमे क्या दोष हैं ?

उत्तर—इसके विषय मे पहली बात तो यह है, कि वे ही लोग अध्यापक बनना पसन्द करते हैं, जिन्हे अन्य स्थानो से जवाब मिल चुका होता है और इस प्रकार शिक्षा मे रुचि न रखने वाला मानस ही अधिकतर शिक्षा-क्षेत्र मे आता है।

दूसरे, यह भी बडी विचित्रता है, कि उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण होना ही अध्यापक बनने की उच्च-योग्यता का एकमात्र प्रमाण माना जाता है। उच्च श्रेणी तथा उससे नीचे वाली श्रेणी मैं उत्तीर्ण दोनो व्यक्तियो मे यही तो एक बडा अन्तर है कि प्रथम श्रेणी वाले व्यक्ति में अधिक बुद्धि-चातुर्य, मैन्टल शार्पनैस (मानसिक तीव्रता) तथा मेधा होती है तथा इससे नीची श्रेणी वाले इन बातो मे स्वभावतः इनसे नीचे होते हैं। मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि शिक्षा मे बुद्धिमान व मेधावी व्यक्ति नही होने चाहिये, बल्कि ये बातें तो आवश्यक भी हैं, परन्तु मेरी मान्यता है कि मात्र बौद्धिक-चमत्कार के चालाकी तथा "इन्सिनसीएरिटी" में परिवर्तित होने की सम्भावना सदैव बनी रहती है।

प्रश्न—आपके मत में अध्यापक-वर्ग में कौन से गुण होने चाहिये ?

उत्तर—अन्य गुणों के अलावा मैं केवल "आध्यात्मिक बौद्धिकता" के बारे की बात तो मैं पहले बता ही चुका हूँ। मेरे मतानुसार अध्यापक-वर्ग के लिये "बौद्धिकता" से अधिक "सेवा भावना" की आवश्यकता है। ऐसा व्यक्ति यदि होगा, जो आत्मा से शिक्षक हो, वह अन्य दशाओं में भी छात्रों की स्थिति में भी बहुत अच्छा परिवर्तन करेगा।

प्रश्न—महोदय ! वर्तमान अध्यापक के बारे में क्या आप अपने और भी विचार प्रकट कर सकेंगे ?

उत्तर—आज के अध्यापक में नाममात्र को भी यह चाह नहीं है, कि वह कक्षा में पढ़ाये परन्तु सबसे बड़ा कार्य है—अपने को कक्षा में 'जमाना'। इस "जमाने" की सारी प्रक्रिया तो आरम्भ होती है—सर्वप्रथम तो वह स्वयं पाँच-दस मिनट विलम्ब से कक्षा में आयेगा, फिर छात्रों की उपस्थिति लेगा, तत्पश्चात् अपने को "जमाने" के लिये कुछ गोसिपिंग (गपशप) करेगा और अन्त में निर्धारित कोर्स को समाप्त करने की दृष्टि से, पुस्तकीय विषय-वस्तु का यांत्रिक-भाव से जल्दी-जल्दी बहिर्वमन (Vomiting) कर देगा। इस प्रकार के अध्ययन-अध्यापन की शुष्क एवं सूचनात्मक प्रक्रिया से वास्तविक शिक्षा का न तो कोई आदान-प्रदान ही सम्भव है और न शिक्षक एवं शिष्य के मध्य निकट के सम्बन्ध ही स्थापित हो सकते हैं, और फिर आज तो कक्षाओं में छात्रों की संख्या भी बहुत बढ़ गई है, ऐसी स्थिति में तो गुरु-शिष्य-सम्बन्धों की निकटता होना और भी दुर्लभ है। मेरे विचार से अध्यापक के लिये अपने छात्रों को पढ़ाने से अधिक उन्हें "पढ़ना" आवश्यक है। क्या आपके विचार से अध्यापक अपना यह "करेक्टिव रोल" (छात्र-जीवन के सुधार का कार्य) पूरा कर रहा है ?

मैंने उत्तर दिया—"दुर्भाग्य से नहीं, महोदय।"

प्रश्न—महोदय, अभी आपने बताया कि अध्यापक अपने को "जमाने" के लिये काफी समय लेता है, इसका क्या कारण है ?

उत्तर—क्योंकि वह एक 'गलत टीचर' (अध्यापक) होता है, यह गुणवान नहीं होता। वह स्वयं गलत तरीकों से अध्यापक बनता है तथा अपने विद्यार्थी को बिना पढ़े-पढ़ाये परीक्षा में उत्तीर्ण होने के तौर-तरीके

तो बताता है, परन्तु अच्छा नागरिक बनने के नही। इस कारण यह जाग्रत नव-पीढी से अपनी आँखें मिलाकर अभय, स्वतन्त्रता एव दृढता से बातें नही कर सकता। विद्यार्थियो के साथ हँसी-मजाक तथा अन्य मित्र-भाव प्रदर्शित करने वाला व्यक्ति उनका कॉमरेड (साथी) हो सकता है, "अध्यापक" कदापि नही।

प्रश्न—महोदय ! क्या आप कोई योजना बता सकेंगे जिससे अच्छे अध्यापको का चयन किया जा सके ?

उत्तर—आपका प्रश्न जितना सुन्दर है, उतना ही गम्भीर भी है। लेकिन आप इस प्रश्न को ऐसी परिस्थितियो मे पूछ रहे हैं, जबकि आज हमारे शिक्षको का चुनाव 'जिला-प्रमुख' करता है। फिर भी मैं तो इस चयन के प्रश्न को इस प्रकार हल करना चाहूँगा, कि प्रत्येक विद्यालय में सातवी और आठवी कक्षाओ से ही एक ऐसा चार्ट तैयार किया जाय, जिसमें उन बच्चो के नाम अंकित हो, जो स्वेच्छा से (ऐसे बच्चों को शिक्षक के जीवन की मर्यादाओ से भलीभाति पूर्व-परिचय करा दिया जाय) अध्यापन का कार्य अपनाना चाहे। कई वर्षों तक अध्यापको द्वारा ऐसे बच्चो की गतिविधियो—चरित्र, आचरण, कर्त्तव्य-निष्ठा, ज्ञान-पिपासा इत्यादि पर सूक्ष्म निरीक्षण रखा जाय। अन्त मे, जब वे अपनी अन्तिम कक्षा उत्तीर्ण कर लें तो गत वर्षों मे अध्यापकों द्वारा रखे गये रिकार्ड तथा प्रधानाचार्य की अभिशसा (Recommendation) के आधार पर ही शिक्षको का चयन हो। इस चयन-पद्धति में छात्र की "कुल बौद्धिक-उत्कृष्टता" (Total Sum of intellectual intelligence) के मुकाबले सुशीलता, अनुशासन एव चारित्रिकता को अधिक अक प्राप्त हो सकेंगे और तब 'फर्स्ट डिविजन' होना शिक्षक के लिये उतना अनिवार्य न होगा (इससे यह कदापि न समझें कि अच्छी 'डिविजन' लाने के मैं विरुद्ध हूँ) जितना गुणवान तथा शीलवान होना।

लेकिन क्या पता है आपको कि आज अध्यापक की नियुक्ति कैसी होती है ? यह अधिकतर राजनेताओं एव राज्याधिकारियो के सकेतों पर ही होती है। इसके अतिरिक्त चयन भी अयोग्य माध्यमो से किया जाता है।

प्रश्न—क्या छात्र-असन्तोष के और भी कोई कारण हो सकते हैं ?

उत्तर—हा, एक बात और भी है। अन्दर विद्यालयो में अध्यापक-राजनीतिज्ञ एव बाहर दलीय राजनीतिज्ञ विद्यार्थी को अपना "टूल" (औजार) बनाकर असन्तोष उत्पन्न कर रहे हैं।

प्रश्न—एक प्रश्न छात्रों को राजनीति मे भाग लेने के औचित्य तथा अनौचित्य से सम्बन्धित भी उठाया जाता है, आपका इस विषय में क्या मत है ?

उत्तर—छात्रों को सर्वांगीण राजनीति का ज्ञान तो देना चाहिये, लेकिन उनका स्वय राजनीति मे भाग लेना असामायिक है। जब बीच में ही लोग ऐसा करने लग जाते हैं, तो राजनीति मे भाग लेने का आधार (रोटी-रोजी कमाने की योग्यता तथा उपस्थित समस्याओ को गहराई से समझने की अन्तर्दृष्टि) ही अपूर्ण रह जाता है। छात्र-जीवन से ही राजनीति मे भाग लेकर भविष्य में वह अपना जीवन निर्वाह कैसे करेगा ?

प्रश्न—तो फिर गाधीजी ने "स्वतन्त्रता-आन्दोलन" के समय विद्यार्थियो को राजनीति मे भाग लेने का परामर्श क्यों दिया था ?

उत्तर—उस समय सभी राजनीतिक दलो के समक्ष एक ही सर्व सम्मत लक्ष्य था—विदेशी शासन को हटाना। इस प्रकार गाधीजी के द्वारा छात्रो का आह्वान बिल्कुल उचित ठहरता है। लेकिन आजकल दलगत राजनीति किसी एक सामूहिक लक्ष्य (Common Cause) को लेकर नहीं चल रही है, बल्कि पारस्परिक छिद्रान्वेषण तथा केवल स्वयं को सशक्त बनाने के सिद्धान्त को लेकर चल रही है। ऐसी स्थिति मे छात्रों को कोई सही दिशा प्राप्त नही हो सकती। हाँ, एक बात सम्भव है कि सभी राजनैतिक दल विद्यार्थियो के विषय मे एक आचार-सहिता (Code of Conduct) बनावें कि वे विद्यार्थियो का राजनीतिक शोषण नहीं करेंगे। लेकिन यह भी व्यवहारिक बात नहीं है। असल मे तो सारी दुनियाँ की राजनीति विद्यार्थी का उपयोग कर रही है और लगता है कि यह प्रवाह फिलहाल रुकने वाला नहीं। विद्यार्थियो का राजनीतिक प्रयोग होता रहेगा, लेकिन इसके लिये आने वाली सन्तति अपने पूर्वजो को कोसेगी।

प्रश्न—क्या इस समय देश के सामने कोई ऐसा सामूहिक लक्ष्य (Common Cause) नहीं है, जिसके लिए विद्यार्थियों को आह्वान किया जा सके ?

उत्तर—हाँ, "समाज-सेवा"—जिसका अर्थ राष्ट्र-निर्माण है, एक प्रमुख कार्य-क्रम है। लेकिन आज की परिस्थितियो मे "समाज-सेवा" का क्षेत्र भी राजनीति से अछूता नही रह पाया है। "समाज-सेवा" राजनीति की आन्तरिक आधारशिला (Inherent base of politics) के रूप मे प्रयुक्त हो रही है।

प्रश्न—नवयुवको का यह दोषारोपण क्या उचित है, कि प्रौढ पीढी समाज की समस्त शक्ति एव सुविधाओ पर अधिकार करके बैठ गई है ?

उत्तर—मेरे विचार से ठीक ही है, लेकिन यह एक "नाइस स्लोगन" (एक आकर्षक नारा) होकर ही रह गया है, इसका कोई समाधान होता प्रतीत नही होता। पुराने लोग कदाचित् अपनी इन सुविधाओ को छोडने के लिये तैयार नही होगे, और इस प्रकार असन्तोष तथा सघर्ष का यह दौर चलता रहेगा और फिर यह तो निरन्तर चलने वाला एक सिलसिला है। आज का नौजवान जब कल प्रौढ हो जायेगा तो उसका भी अपने अधिकारो व सुविधाओं के लिये वही रुख होगा, जो आज के प्रौढ का है। लेकिन फिर भी हताश होने की बात नहीं, कभी तो दुनियाँ मे "गुड सैन्स" (सही चिन्तन) आयेगा।

प्रश्न—विद्यार्थियो के लिये जो "राष्ट्रीय समाज सेवा" की योजना लागू की जा रही है, क्या आप उसकी सफलता के प्रति आशावान हैं ?

उत्तर—देखिये, सेवा-भाव कभी शक्ति अथवा विधि-निर्माण द्वारा उत्पन्न नही किया जा सकता, वह तो आन्तरिक प्रेरणा से स्फूर्तित होता है। क्या आज के अध्यापक छात्रों मे अनुशासन की भावना भर सके हैं ? मुझे ठीक से ज्ञात नहीं कि समाज-सेवा का यह कार्य कौन सम्पन्न करायेगा, क्या अध्यापक ? मैं स्वय कामना करता हूँ कि राष्ट्र की इन विषम परिस्थितियो को देखते हुए छात्रो मे स्वय सेवा-भाव जागृत हो सके।

प्रश्न—महोदय, अन्त में आप कृपाकर यह बतायें कि वर्तमान छात्र-आन्दोलन किस प्रकार हल किया जा सकता है ?

उत्तर—आप समस्या का हल पूछ रहे हैं, लेकिन मुझे लगता है कि 'विषमता' के क्रम का प्रारम्भ हो चुका है और उसका कहाँ अन्त होगा, इसको भविष्य ही बतला सकता है। "विषमता" की गति इसी क्रम से चलती है। "नेतृत्व" का देश में अभाव है, ऐसी स्थिति में इस विषम

परिस्थिति को कोई सम्हाल सकेगा, ऐसी आशा सम्भव प्रतीत नहीं होती। "परिवर्तन" या "युग पुरुष" फिर आयेगा और सारी व्यवस्था की पुनरंचना करेगा और इस प्रकार फिर एक बार 'प्राचीन' में से 'नवीन' का पुनर्जन्म होगा।

अभी भी इस अन्धकार के वातावरण में यदि किसी से भी आशा की किरण प्राप्त हो सकती है तो वह है—आपका "शिक्षक", 'एण्ड ही मस्ट राइज टु द ऑकेजन' (और उसे समय की पुकार अवश्य सुननी चाहिये) और इसके लिये सरकार को उसे सशक्त बनाना होगा, उसे अधिक सम्मान देना होगा।

सोफे से उठते हुए श्री आचार्यजी ने मुझसे प्रश्न किया—"हैव आई डन फुल जस्टिस टु यू ?" (क्या इस समय मैंने आपके साथ पूरा न्याय किया है ?) तो मैंने उत्तर दिया—"फुल जस्टिस, सर" (जी हां, पूरा न्याय किया है, श्रीमान्)। और इसके पश्चात् आचार्य महोदय ने अपनी सहज आत्मीयता एवं सौजन्यता से अपना हाथ मिलाने के लिये मेरी ओर बढ़ा दिया, रात्रि का समय अधिक हो रहा था और मुझे भी दो मील की यात्रा तय करनी थी, अत अभिवादन कर मैं वहा से विदा हुआ।

शिवचरण माथुर
(शिक्षा मंत्री—राजस्थान सरकार)

•

मन्त्री महोदय की उदयपुर यात्रा के दौरान जब मैं उनसे मिला, तो वे जयपुर इम्प्रवमेंट ट्रस्ट का जिक्र किसी अन्य सज्जन से कर रहे थे कि ट्रस्ट को समझना चाहिये कि शिक्षा मे खेल का सैद्धान्तिक महत्व क्या है ? हर विद्यालय के साथ खेल का मैदान होना ही चाहिये। श्री माथुर कुछ क्लान्त व थके से लग रहे थे। बातचीत का प्रसग समाप्त हुआ, उन्होंने मेरी ओर देखा—शून्य भाव से—पर वे मेरा मतव्य समझ गये। फतेहसागर की इस पहाडी पर मेरा मन कुछ निराश हुआ झील की ओर से एक ठडी हवा की लहर तैर कर आई और सबको स्पर्श कर गई, सबको चेतन कर गई मत्री महोदय ने कहा—पूछिये आप अपने प्रश्न। मैंने कहा——

प्रश्न—महोदय, क्या आप कृपया बतायेंगे कि वर्तमान छात्र-आन्दोलन के क्या-क्या प्रमुख कारण हैं ?

उत्तर—मेरे विचार से इस आन्दोलन का सबसे प्रमुख कारण यह है कि हमारा छात्र अपने भावी जीवन के प्रति आश्वस्त नही है। जीवन के प्रति अनिश्चितता की भावना होने का कारण यह है, कि अभी तक हमारी शिक्षा का जीवन से सम्पर्क स्थापित नही हो सका है। और फिर एक बात और भी है कि हमारे शिक्षार्थी का मानस अभी तक सरकारी नौकरी की ओर ही प्रमुखत' उन्मुख है। उदाहरण के तौर पर ले लीजिये—टैकनिक्ल लाइन की कभी तो मैकेनिकल ब्राच मे भीड हो जाती है तो कभी सिविल मे, और अब लोग बॉयलॉजी की ओर भाग रहे हैं। सभी नौकरी करना चाहते हैं, जो मिल नही पाती। वैसे अपने देश के हर क्षेत्र मे काम करने को शेष पडा है क्योकि हम अभी विकास की अवस्था मे से गुजर रहे हैं। परन्तु, सामान्यत आज का शिक्षित नवयुवक अपने हाथ का काम अपने व्यक्तिगत व्यवसाय के तौर पर करने को तैयार प्रतीत नही होता।

प्रश्न—आपने अभी कहा कि देश में अभी बहुत कार्य करने को शेष हैं, क्या आप कृपया अधिक स्पष्ट करेंगे कि फिर इसका क्या कारण है, कि आज के नवयुवक को कार्य करने का अवसर प्राप्त नहीं हो पाता ?

उत्तर—इसका कारण यही है कि सभी नौकरी करना चाहते हैं, कोई भी अपना निज का कार्य करना नहीं चाहता। देश के शिक्षित युवा की साइकॉलजी 'व्हाइट कॉलर' की ओर उन्मुख है। मेरे विचार मे इस सारी समस्या को लेकर पुन. विचार होना चाहिए।

प्रश्न—क्या इस छात्र-असन्तोष के राष्ट्रीय स्तर पर अन्य भी कोई कारण विद्यमान हैं ?

उत्तर—वैसे तो यह असन्तोष हमारे देश की ही कोई विशिष्ट घटना नहीं है। सारे विश्व मे मूल्यों का सकट उपस्थित है। पुरानी मान्यताओं के प्रति नवीन की एक जबरदस्त प्रतिक्रिया चल रही है और भारत की युवा-चेतना भी इस प्रवाह से अछूती नहीं रह सकती।

प्रश्न—इस 'प्रतिक्रिया' के प्रति आपकी व्यक्तिगत प्रतिक्रिया क्या है ?

उत्तर—मैं तो इसका स्वागत करता हूँ। परिवर्तन शुभ है, इसे आना है और आना भी चाहिए। परन्तु परिवर्तन की दिशा विघटनात्मक न होकर रचनात्मक होनी चाहिये। हमारा देश अभी इस स्थिति मे नहीं है कि वह तोड-फोड की इस विनाश-लीला को सहन कर सके।

प्रश्न—हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के बारे मे आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर—सारी शिक्षा व्यवस्था का 'रिओरिएन्टेशन' (पुनर्संस्कार) होना चाहिए। हमारी शिक्षा की योजनायें भी इसी मुख्य दृष्टि को लेकर ही बननी चाहिए। मेरा विचार है, कि उच्च-शिक्षा के द्वार प्रत्येक छात्र के लिये खुले न होकर मात्र मेधावी छात्रो के लिये ही खुले रहने चाहिए। इससे समस्या के समाधान मे काफी मदद मिल सकती है।

प्रश्न—हमारी शिक्षा-नीति के विषय मे क्या आप और भी कोई सुझाव दे सकेंगे ?

उत्तर—सबसे बडा सुझाव यही है कि शिक्षा का जीवन से सम्बन्ध स्थापित करना होगा। वैसे देश की आवश्यकतानुसार पर्याप्त मात्रा मे सुधार किया भी गया है, परन्तु वस्तुत अभी भी सारी व्यवस्था को एक छोर से झकझोरना शेष है। दूसरी एक महत्वपूर्ण बात और है कि हमारे युवकों में कार्य के प्रति निष्ठा उत्पन्न होनी चाहिए। आज हमारा शिक्षित नौजवान गावो मे जाकर कार्य करने को प्रस्तुत नही। गांवों में भी एक प्रकार का, 'एक्सोडस ऑफ इन्टेलीजेन्शिया' (बौद्धिक-

बहिर्गमन की प्रक्रिया) चल रहा है। इसका परिणाम अच्छा नही हो सकता।

प्रश्न—इस 'बहिर्गमन प्रक्रिया' का कारण क्या यह नही है, कि देश के हर क्षेत्र का नीति-निर्धारक उच्च-वर्ग, जिससे युवक वर्ग आदर्श और प्रेरणा ग्रहण करता है, स्वय शहर का सुविधाजनक जीवन बिताना चाहता है ?

उत्तर—हा, आपके विचार से मैं सहमत हूँ। प्राय: सभी 'बडे आदमी' शहरो मे रहना चाहते हैं। युवको को तो आदर्श चाहिये और वह मिल नही पा रहा।

प्रश्न—आपके मतानुसार छात्रो को राजनीति मे भाग लेना चाहिए अथवा नही?

उत्तर—वैसे तो हमारी जनतान्त्रिक राज्य-व्यवस्था मे समाज का कोई भी व्यक्ति 'दूध का दूध और पानी का पानी' जैसी स्थिति मे बना रह कर राजनीति से प्रथक नही हो सकता, परन्तु देश की वर्तमान राजनीतिक स्थिति मे विद्यार्थियो का सक्रिय राजनीति मे भाग लेना हितकर न होगा। आज राजनीतिज्ञ उन्हें अच्छे और बुरे दोनों मार्गों की ओर ले जा सकते हैं। अत. दलगत राजनीति अभी खतरे से खाली नही है। छात्रो को चाहिये कि वे देश की वर्तमान समस्याओ के प्रति जागरूक रहे, प्रजातान्त्रिक परम्पराओ को आत्मसात करें तथा अपने सबसे महत्वपूर्ण कार्य—ज्ञानार्जन—मे दत्तचित्त होकर लगे रहें।

प्रश्न—यदि शिक्षा अधिकारीगण अथवा सरकार दोनो छात्रो की न्यायोचित मांगो को प्रजातान्त्रिक ढग से मांगने पर भी ध्यान न दे, तो ऐसी स्थिति मे छात्रो को क्या करना चाहिये ?

उत्तर—क्या वस्तुत: ऐसा होता भी है ? आपका प्रश्न कुछ काल्पनिक सा है।

प्रश्न—श्रीमान्, कल्पना कीजिये कि यदि ऐसा होता भी हो तो ऐसी स्थिति में क्या किया जाना चाहिये ?

उत्तर—सरकार व सम्बन्धित अधिकारियो को छात्रो की वाजिब मांगो की ओर ध्यान देना चाहिये। उन्हे चाहिये कि वे ऐसे मामलो को कभी अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न (Prestige point) न बनावें, सही मांगो को स्वीकार किया जाना ही उचित है। लेकिन विद्यार्थी भी कभी-कभी ऊट-पटांग मांग प्रस्तुत करते हैं—जैसे बिना परीक्षा के पास होना, निम्नतम उत्तीर्णाङ्क कम करना इत्यादि। और साथ ही कभी-कभी विश्वविद्यालय भी छात्रों की अनुचित मांगो को स्वीकार

कर लेते हैं, उदाहरणार्थ, अभी त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम मे प्रथम वर्ष से लेकर अन्तिम वर्ष तक छात्र को अपनी परीक्षा मे उत्तीर्ण होने के छ: अवसर प्राप्त होते हैं, इससे छात्रो मे अध्ययन और कठोर परिश्रम के प्रति उदासीनता की भावना उत्पन्न होती है । लेकिन जब कभी छात्र अपनी मांगो के लिये राजनीतिज्ञ दलो से अपना गठबन्धन कर लेते हैं, तो समस्या और भी विषम हो जाती है । मेरा तो यहाँ तक कहना है कि न्यायोचित मांगो को लेकर यदि विद्यार्थी प्रदर्शन भी करते हैं तो भी बुरा नहीं है।

प्रश्न—क्या यह कथन सही है कि सर्वप्रथम गांधीजी के आह्वान पर ही छात्रो ने राजनीति मे भाग लेना प्रारम्भ किया था, और वही परम्परा अभी तक चली आ रही है ?

उत्तर—यह सही है कि गाधीजी ने छात्रो का आह्वान किया था, परन्तु आज हम गाधीजी को 'ऑपरेटिव माइड' (वाह्य क्रियात्मक पहलू) पर तो ध्यान देते हैं, परन्तु गाधी जी की किसी भी कार्य को करने के पूर्व की जो मानसिक तैयारी तथा कार्य–परिणति के उच्च 'कॉज़' (लक्ष्य) को सर्वथा भूल जाते हैं। गाधीजी के अनुसार कार्य और कारण दोनों उच्च होने चाहिये ।

प्रश्न—अभी हाल ही मे जो राष्ट्रीय समाज-सेवा योजना (National Social Service Corps) विद्यार्थियो के लिये प्रारम्भ की जा रही है, क्या आप उसकी सफलता के प्रति आशान्वित हैं ?

उत्तर—यदि कार्य करने के ढङ्ग ठीक हो, तो प्रत्येक योजना सफल हो सकती है और लाख टके की एक बात है कि यदि व्यक्ति ठीक हो, तो सभी ठीक हो सकता है। वास्तव मे तो आज सारे देश मे अच्छे 'रिसोर्स पर्सन्स' (सदर्भ–व्यक्तियो) की आवश्यकता है। एक बडी भारी त्रुटि यह भी हो रही है कि सभी लोग हर कार्य के लिये सरकारी मोटीवेशन (पहल) के आश्रित हो गये हैं। समाज के स्वय सेवी व्यक्ति अपने स्तर पर कार्य करने की ओर प्रवृत्त होते दिखाई नही देते। ऐसी परिस्थिति मे एक सच्चे लोक–राज्य की स्थापना नहीं हो सकती ।

प्रश्न—आज जैसी भी परिस्थितियाँ हैं, उनके रहते क्या आप समाज–सेवा के कार्यक्रम की सफलता के प्रति आशावान हैं ?

उत्तर—मैं तो हर अच्छी चीज के प्रति आशावान हूँ। देश मे अच्छे व्यक्तियो का अभी नितान्त अभाव नहीं है, राजस्थान को ही लीजिये शिक्षा–क्षेत्र मे कुछ अच्छे व्यक्ति हैं जो परिश्रम से कार्य कर रहे हैं।

प्रश्न—क्या अभी तक हमारा देश युवक शक्ति को सही मार्ग-निर्देशन दे सका है ?

उत्तर—नही, अभी तक तो नहीं और यही कारण है कि हमारी योजनाओं से हमारा देश लाभ नहीं उठा पा रहा।

प्रश्न—अन्त मे क्या आप यह बताने का कष्ट करेंगे कि वर्तमान छात्र-असन्तोष का समाधान कैसे किया जा सकता है।

उत्तर—देखिये, समय बडा बलवान होता है, वही कालान्तर मे सभी समस्याओं का हल निकालेगा और विद्यार्थियों को समाज के साथ समझौता करना पडेगा।

प्रश्न—कृपया इसे और स्पष्ट करदें कि यह समझौता विद्यार्थियों को (नये मूल्यों को) समाज के साथ (पुराने मूल्यों के साथ) करना पडेगा अथवा समाज को विद्यार्थी के साथ ?

उत्तर—हाँ, .हाँ, यो कह लीजिये कि समाज को विद्यार्थी के साथ करना पड़ेगा।

नारायणदत्त तिवारी

(सयोजक—भारतीय युवक कांग्रेस)

•

दिन भर 'युवक कांग्रेस' का सम्मेलन चलता रहा, जयपुर मे। श्री तिवारी को काफी जोश और दहाडने वाले स्वर मे बोलना पड़ा था, रात्रि के आठ बजे भी 'पोलीटेक्निक' के कुछ छात्र जमा थे। तिवारी जी पर्याप्त रूप से शिथिल नजर आ रहे थे, यह स्वाभाविक भी था। सम्मेलन के युवा सयोजक बन्धु जोशी ने भेंट-वार्ता का समय पहले ही निश्चित कर लिया था। निवास के बाहर वाले लान पर बैठकर वार्ता तब प्रारम्भ हुई, जब कि मैंने यह प्रश्न किया—

प्रश्न—श्रीमान् भारतीय युवको के लिये आपका क्या कार्यक्रम है ?

उत्तर—चूंकि हमारा सगठन भारतीय काग्रेस पार्टी का ही एक अग है, अत. काग्रेस के उद्देश्यों के अन्तर्गत ही भारतीय युवक कल्याण से सम्बन्वित कार्यक्रमो का हम आयोजन करते हैं।

प्रश्न—क्या आप भारतीय युवको की वर्तमान मानसिक स्थिति से सन्तुष्ट हैं ?

उत्तर—आज का युवक 'वेचैन' है।

प्रश्न—क्या आप इस वेचैनी का कारण बतायेंगे ?

उत्तर—इसका कारण यह है कि अधिकाश युवक स्वातन्त्र्योत्तर नवीन परिस्थितियों से अपना सामजस्य स्थापित नहीं कर पाये हैं।

प्रश्न—इस 'वेचैनी' को कैसे हटाया जा सकता है ?

उत्तर—अभी तो प्रगट में कोई स्पष्ट सौल्यूशन (हल) मैं दे नहीं सकता।

प्रश्न—इस 'वेचैनी' के लिये किसको उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिये ?

उत्तर—(कुछ क्षणों की मानसिक अस्तव्यस्तता तथा वाद मे मौन को तोडते हुये) मैंने अभी वताया न कि इसके लिये परिस्थितियों को ही उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

प्रश्न—परिस्थितियो के लिये कौन उत्तरदायी है ?

उत्तर—देखिये, 'वेचैनी' तो है, परन्तु है सतुलित।

प्रश्न—तो क्या आप इसे सतुलित आकुलता कहना पसन्द करेंगे ?

उत्तर—हाँ हाँ, ठीक है।

प्रश्न—आपका सगठन इस 'सतुलित आकुलता' के लिये क्या कर रहा है ?

उत्तर—इस आकुलता को हटाने की वात से ही तो 'युवक काग्रेस' का कार्य आरम्भ होता है।

प्रश्न—हां, मैंने एक प्रश्न पूछा था कि इन परिस्थितियो के लिये कौन उत्तरदायी है ?

उत्तर—देखिये अन्य देशो ने जिन—क्रमशः कोयला-भाप, विद्युत तथा अणु-शक्ति—तीनो क्रान्तियो को पार करने मे लगभग १५० वर्ष लगाये हैं, उन्ही तीनो क्रातियो के वीच से गुजरने मे इस देश ने २० वर्ष के अल्पकाल का समय लिया है। साथ ही नवन्वोन्मेपकारी योजनाओ के कारण युवको की आकाक्षाओ ने वडी ऊँची काल्पनिक उडानें भरी हैं, परन्तु उन आकाक्षाओ को पूरा करने के साघन देश पूरी तरह जुटा नही सका। इस प्रकार के परिवेशगत असामजस्यपूर्ण परिस्थितियो के फलस्वरूप मानसिक असन्तुलन का हिलडुल जाना स्वाभाविक ही है।

प्रश्न—क्या हमारे देश की योजनाओ को सतुलित ढग से नियोजित किया गया है ?

उत्तर—जी हां, आमतौर पर ठीक ही रही। देश मे साधनो की कमी तो थी ही, अत अव चौथी योजना मे कुछ वाधा उत्पन्न हो रही है।

प्रश्न—स्वतन्त्रता-आन्दोलन मे विद्यार्थियो के सहयोग के परिणाम स्वरूप जो उन्हे हम से आशायें थी, क्या हमने उन्हे पूरा किया है ?

उत्तर—स्वतन्त्रता-आन्दोलन मे भाग लेने वाले युवक, अव युवक न होकर वृद्ध हो चुके हैं, अत. उनकी अव कोई आकाक्षायें शेप नही रही।

प्रश्न—यह ठीक है कि उस समय के नौजवान अव बुड्ढे हो चले हैं। लेकिन इतिहास की कई क्रान्तियो को याद किया जा सकता है, जव कि क्रान्ति के समय के युवक या तो वृद्धावस्था मे पहुच गये अथवा काल-कलवित हो चुके, परन्तु वे ऐसी गौरवमय आदर्शों की प्रेरणा भरी परम्परायें विरासत मे आने वाली नव-पीढियो द्वारा पोपित होने के लिये छोड गये, जिन्हें आने वाले समय के नव युवको ने अपने रक्त से सिंचित कर जीवित रखा और साथ ही पुराने युवको की आकांक्षाओ के दीप को सदैव जलाये रखा। मेरे विचार से हमारे नवयुवक के हृदय मे भी इस प्रकार की मानसिक परम्परा एव आकाक्षायें हैं। आपका क्या विचार है ?

उत्तर—आपका कथन ठीक है, परन्तु अभी हमारा देश निर्माण-प्रक्रिया से गुज़र रहा है। अतः स्थायित्व की बात कहना अभी सम्भव नहीं।

प्रश्न—इस अनिश्चय की स्थिति को कैसे हटाया जा सकता है ?

उत्तर—यथास्थिति के परिवर्तन द्वारा।

प्रश्न—अभी जो 'राष्ट्रीय समाज-सेवा कार्यक्रम' विद्यार्थियों के लिये लागू किये जाने की चर्चा है, उसकी सफलता के बारे मे क्या आप आशान्वित हैं ?

उत्तर—हाँ, मैं तो आशावादी ही हूँ।

प्रश्न—आपके मत से छात्र-असन्तोष के क्या कारण हो सकते हैं ?

उत्तर—वे ही सब कारण हैं, जो मैं अभी पहले ही कह चुका हूँ।

प्रश्न—वर्तमान परिस्थितियां विद्यार्थियों के मानस पर कैसी प्रतिक्रिया डाल रही हैं—अच्छी अथवा बुरी ?

उत्तर—यह कह पाना सम्भव नही है।

भैरोंसिंह शेखावत

(नेता—जनसघ दल, राजस्थान विधान सभा)

घुटनो तक छूती लबी बाँहे, राजपूती वक्ष, बनियान और तहमद पहने श्री शेखावत से, जो अभी हाल ही मे अपने आसाम के दौरे से लौटे थे, जैसे ही मेरी बातचीत प्रारम्भ हुई, तो मुझे लगा मानो मै किसी 'हार्ड टास्क मास्टर' के सामने बैठा हूँ। मै शीघ्र ही समझ गया कि मेरे प्रश्नो की भाषा नितान्त सन्तुलित, सधी हुई, साभिप्राय तथा नुकीली होनी चाहिये, अन्यथा प्रश्नोत्तर के जाल मे फँस जाने की सम्भावना है। मेरे आने का कारण मै पूर्व ही बता चुका था। सयत और सधी हुई भाषा मे मैंने अपनी वार्ता इस प्रकार प्रारम्भ की——

प्रश्न—महोदय, आपके मत से वर्तमान छात्र-आन्दोलन के क्या कारण हैं ?

उत्तर—छात्रो का भविष्य अनिश्चित है। उन्हे प्रवेश से लेकर शुल्क, पुस्तकें, पाठ्यक्रम आदि सभी मामलो मे अनिश्चितता की स्थिति मे रहना पडता है। विद्यार्जन के पश्चात् उन्हें कोई व्यवसाय भी मिल सकेगा, इसकी भी गारटी नही है। लम्बे समय की यह अनिश्चितता की स्थिति अन्त मे अनुत्तरदायित्व पूर्ण आचरण को जन्म देती है।

प्रश्न—क्या छात्रो को राजनीति में भाग लेना चाहिये ?

उत्तर—परिपक्व बुद्धि वाले छात्रो को भाग लेना चाहिये।

प्रश्न—कुछ लोगो के विचार से तो छात्रो को राजनीति से दूर रहना चाहिये, आप इस विचार से कहाँ तक सहमत हैं ?

उत्तर—यह एक 'स्लोगन' (नारा) मात्र है। जो लोग ऐसा कहते हैं, वे स्वय भी वैसा व्यवहार मे नही करते।

प्रश्न—तब क्या आपका यह तात्पर्य है कि छात्रो को देश की ज्वलत समस्याओ मे भाग लेना चाहिये ?

उत्तर—आप देश की समस्याओं की बात कह रहे हैं, मै कहता हूँ उन्हे अपनी स्थानीय समस्याओं के समाधान में भी सक्रिय भाग लेना चाहिये।

प्रश्न—फिर भी आप किसी सीमा तक इस बात से तो सहमत होंगे ही, कि छात्रों को दलगत राजनीति से दूर ही रहना चाहिये ?

उत्तर—देखिए, आपने लगभग वही प्रश्न पुन. दुहराया है, जबकि मूल बात यह है कि वस्तुस्थितिगत परिस्थितियाँ अपने कालगत परिवेश मे किसी विशिष्ट कार्य को किसी विशिष्ट ढ ग से करने की सबसे प्रबल प्रेरक-शक्ति होती हैं। वर्तमान मे इस 'स्लोगन' का अब कोई व्यावहारिक सेन्स (अर्थ) नही है, यह खोखला हो चुका है तथा इसका अर्थ भी चुक गया है।

विद्यार्थी के मन पर भी इसका कोई असर नही होता। नेता लोग जब चाहते हैं, तो छात्रो को बुला लेते हैं तथा छात्रो को जब आवश्यकता होती है, तो वे नेताओ को बुला लेते हैं। मैं तो यह कहूँगा कि छात्र हर गतिविधि मे सम्मिलित हैं।

प्रश्न—विद्यार्थी और राजनीति की यह प्रतिबद्धता कैसे दूर की जा सकती है ?

उत्तर—भाई साहब, आप मुझे वह कहने पर विवश कर रहे हैं, जो मैं कह नही पा रहा। यदि मैं आपके अनुकूल उत्तर दूँगा तो वह उसी प्रकार का होगा, जिस प्रकार कि न्यायालय मे हर व्यक्ति को सत्य बोलने की शपथ दिलवायी जाती है और आप जानते हैं कि वे कितना सत्य बोलते हैं। मैं तो पुन. यही कहूँगा, कि जब तक विद्यार्थियों की समस्याओ का हल शासन द्वारा प्रस्तुत नही किया जाता, तब तक विद्यार्थियो और राजनीतिज्ञो का यह पारम्परिक "एक्सप्लॉयटेशन" (शोषण) बराबर चलता रहेगा। वस्तुत: विद्यार्थियो को राजनीति से दूर रखने का नारा, कोई चिरन्तन सत्य के रूप मे नही अपनाया जा सकता, अपितु यह प्रश्न तो व्यावहारिकता एव परिस्थितियो के सन्दर्भों से जुड़ा हुआ है।

प्रश्न—यदि सरकार छात्रों की न्यायोचित मांगो पर ध्यान न दे, तो छात्रों को क्या कदम उठाना चाहिये ?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर तो स्पष्ट ही है। सरकार को जिस भाषा मे समझने की आदत हो, उसी भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिये।

प्रश्न—आपके विचार मे एक अच्छी शिक्षा-व्यवस्था कैसी होनी चाहिये ?

उत्तर—जो समाज मे रहने वालों को आवश्यक नैतिक-मानदण्ड तथा व्यवसाय के अवसर प्रदान करती हो।

प्रश्न—शिक्षा-पाठ्यक्रम मे धार्मिक शिक्षा के समावेश के प्रति आपका क्या दृष्टिकोण है ?

उत्तर—प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये।

प्रश्न—क्या राजकीय विद्यालयो मे भी धार्मिक शिक्षा दी जानी चाहिये ?

उत्तर—क्यो नही, अवश्य। सभी धर्मो की मुख्य-मुख्य बातो का समावेश किया जा सकता है। लेकिन आज तो धर्म-भावना का लोप ही होता जा रहा है। बहुत सम्भव है, कालान्तर मे धार्मिक पुस्तकें भी समाज से लुप्त हो जाय। यह सब कुछ हमारी वर्तमान शिक्षा-नीति का ही दुष्परिणाम है। कैसी विचित्र बात है, कि इस विषय पर तो विश्व-विद्यालय मे शोध-कार्य की स्वीकृति भी प्राप्त की जा सकती है, कि नगरपालिका के प्रबन्ध-सगठन मे किसी विशेष जाति-वर्ग का कितना प्रतिनिधित्व हो, परन्तु धर्म-विषय पर कोई डिग्री भी प्रदान करने की व्यवस्था नहीं है। क्या धर्म का मानव-जीवन मे इतना तुच्छ स्थान है ?

प्रश्न—इतिहास मे "धर्म-युद्धो" के नाम पर जो भयकर मानवीय कुकृत्य हुए हैं, उनके परिप्रेक्ष्य में तथा आधुनिकता की दृष्टि से, क्या यह उचित न होगा कि हम अब धार्मिक-शिक्षा न देकर मानवतावादी अथवा नैतिक शिक्षा दें ?

उत्तर—नैतिकता भी धर्म की व्याख्या करेगी तथा मानवतावाद भी धार्मिकता ही है।

प्रश्न—"राष्ट्रीय कैंडेट कोर" (एन. सी. सी.) के प्रति आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर—किसी वस्तु की अच्छाई-बुराई की परख, प्रयोगकर्त्ता के मन मे उस वस्तु के प्रति उसके असल आन्तरिक-मूल्याकन (Real Intrinsic Value) के अनुपात से की जानी चाहिये। यदि विद्यार्थी एन. सी. सी. को एक "वाइड नेशनल इश्यू" (एक विस्तृत राष्ट्रीय प्रश्न) के सन्दर्भो मे अपनाता है तथा यदि परीक्षा उत्तीर्ण होने मे एन. सी. सी के अक प्राप्त करने की अनिवार्यता को हटा दिया जाय, और फिर भी छात्र एक महत् कार्य की भावना से प्रेरित होकर एन. सी सी. मे भाग लेना न छोडे, तो अवश्य ही यह एक आवश्यक उपयोगी अनिवार्यता बन जाती है।

प्रश्न—अब जब कि एन. सी. सी. की अनिवार्यता को वैकल्पिक बना दिया गया है तथा राष्ट्रीय समाज-सेवा जैसी नई योजना को लागू किया जा रहा है, तो आपकी इस नवीन योजना की सफलता के प्रति कैसी धारणा है ?

उत्तर—असफल होगी ।

प्रश्न—इसके कारण ?

उत्तर—व्यावहारिक नही है ।

प्रश्न—श्रीमान्, क्यों नहीं है ?

उत्तर—इस प्रश्न का अधिकाश उत्तर तो मैं आप द्वारा पूछे गये एन. सी सी के प्रश्न के प्रसग मे पहले ही दे चुका हूँ, दूसरे, हममे सेवा-भाव है ही नहीं । उदाहरणार्थ, जब डाक्टरों से ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर, जहाँ उनके ज्ञान और योग्यता की सबसे अधिक आवश्यकता एव उपयोगिता है, कार्य करने को कहा जाता है तो कैसी विषम परिस्थिति खडी हो जाती है, यह सभी जानते हैं । असल में अभी तक हमको अधिकारों की ही बात बताई गयी है, कर्त्तव्य एव सेवा का आदर्श प्रस्तुत नहीं किया गया । यदि आपने छात्रों के लिये इस तथाकथित "समाज-सेवा" को अनिवार्य ही बना दिया, तो फिर वही होगा, जैसा कि हर क्षेत्र में हो रहा है । सरपचों से समाज-सेवा के झूठे-सच्चे प्रमाण-पत्र लाना प्रारम्भ हो जायेगा (वैसे मुझे अभी स्पष्ट नहीं है कि इस "समाज-सेवा" का प्रमाण-पत्र कौन इश्यू करेगा ?)

प्रश्न—वर्तमान छात्र-आन्दोलन की समस्या के समाधान हेतु क्या आप कोई सुझाव दे सकेंगे ?

उत्तर—हाँ, छात्रों के मनों मे "सैन्स ऑफ सैक्योरिटी" (आत्म-सुरक्षा की भावना) की स्थापना करनी होगी । आज समाज के प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति मे से यह "सैक्योरिटी" की भावना निकल गयी है ।

○

रामानन्द अग्रवाल

(अध्यक्ष—राजस्थान साम्यवादी दल)

•

बडी ही आत्मीयता से श्री रामानन्दजी मुझ से मिले और अपने स्वागत-कक्ष मे बिठाया, मैंने अनुभव किया कि अपनी उम्र से अधिक ताज़गी, सक्रियता तथा उत्साह था उनमे। मैंने जब उनसे छात्र-आन्दोलन की बात चलाई तो वे बोले—बडा दिलचस्प और 'बर्निग टॉपिक' है आपका। आपके पास प्रश्नावली तो होगी ही, प्रश्न पूछिये। मैंने प्रश्न किया—

प्रश्न—श्रीमान्, आपके विचार से वर्तमान छात्र-आन्दोलन के क्या कारण हो सकते हैं ?

उत्तर—मेरे विचार से यह सब कुछ हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का ही परिणाम है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय जब विद्यार्थियो का आह्वान किया गया था, तो इन्हे कुछ आदर्श एव प्रेरणायें दी गयी थी और इसी कारण वे अपने जी-जान से लडे भी। वर्तमान शासन इनकी उन आकाक्षाओं और आदर्शों की रक्षा न कर सका। वैसे छात्रों मे अब भी देश-भक्ति की कमी नही है, परन्तु आज उनके पास भविष्य के लिये कोई आदर्श, कोई प्रेरणा नहीं है। उनकी शक्ति एव प्रतिभा के विकास तथा उनके आदर की काई व्यवस्था हमारे पास नही है। आज योग्यता व प्रतिभा के स्थान पर सिफ़ारिश, रिश्वत, भाई-भतीजावाद तथा राजनीति का बोल-बाला है। अत. उनके सारे सुनहरे स्वप्न भग हो गये हैं। फलतः उनमे दिशाहीनता एव नैराश्य की भावना भर गयी है। नैराश्य अपने मे विक्षोभ और बगावत को जन्म देता है।

प्रश्न—तो क्या इस प्रकार के आन्दोलन को आप सही कहेंगे ?

उत्तर—वैसे तो यह सब कुछ व्यवस्थित एव सगठित-शक्ति द्वारा सचालित नहीं हो रहा तथा ये सारे आन्दोलन नेतृत्वहीन हैं। उदाहरणार्थ अभी इन्जीनीयरिंग के छात्रो की समस्याएँ सारे देश मे प्रायः एक सी

ही हैं, परन्तु फिर भी ये आन्दोलन किसी अखिल भारतीय स्तर के सगठन मे अनुस्यूत नही हैं। रही इन आन्दोलनो के प्रति मेरी दृष्टि की बात, मैं तो इनसे कतई व्याकुल अथवा बैचेन नहीं हूँ, बल्कि मैं इनका स्वागत करता हूँ।

मै इस सारी उथल-पुथल को आन्दोलन न कह कर "क्रांति" शब्द से सबोधित करना अधिक पसन्द करूंगा। आप जिन्हें आदोलन कहते हैं, वे आन्दोलन मात्र ही नही हैं, उनके पीछे छिपी है—सत्य एव न्याय की एक चिरन्तन माग, भविष्य के महान् क्रातिकारी परिवर्तन की एक शक्तिशाली आकाक्षा। हमने अपनी गलत नीतियों के कारण अपने चारों ओर संकट ही सकट खड़े कर लिये हैं। और चूंकि विद्यार्थी एक भावुक नौजवान होता है तथा परिवर्तन मे विश्वास रखता है इसीलिये विद्रोह करता है।

प्रश्न—हमारे देश की लोकशाही के अन्तर्गत क्या अपनी न्यायपूर्ण मांगों को प्रजातान्त्रिक ढग से नही मनवाया जा सकता ?

उत्तर—यह प्रश्न उन लोगों का है, जो परिवर्तन मे विश्वास नही करते। सन् १९४७ से पूर्व विद्यार्थी एक उच्च एव पवित्र लक्ष्य को लेकर लड़ा था। आज जब उसकी कुर्बानी तथा वफादारी का उसे उचित पुरस्कार न मिला, तो क्यों नही वह ऐसी कृतघ्न एव झूठी व्यवस्था को उखाड फैंके। परतत्र भारत मे अन्याय, शोषण एव पीडा के विरुद्ध जब हमने उसे आन्दोलन, हडताल, सत्याग्रह तथा प्रदर्शन का मार्ग दिखाया, तो स्वतन्त्र भारत मे तो वह अपनी सही मागो के लिये उसी रास्ते को अपनाने के और भी अधिक अधिकारी हैं। और आज तो हड़ताल व प्रदर्शन सवैधानिक मान्यता लिये हुये हैं। लेकिन जब किसी को अधिकार मिल जाता है, तो वह स्वार्थवश दूसरे के सवैधानिक अधिकार को भी अवैध बताने लगता है। बस यही आज हो रहा है।

आज बडे लोगों की कारें और कोठियाँ विद्यार्थियो के लिये प्रेरणा की वस्तुयें नहीं बन सकती। एक ओर स्वार्थ की सीमा आ चुकी है और दूसरी ओर नैराश्य की। एक ओर अब उस सीमा के टूटने का समय आ गया है, तो दूसरी ओर विद्रोहो की बाढ चढ़ चुकी है। मैं यही कहूँगा कि छात्रों को अपराधी करार न किया जाय। उनका कोई आन्दोलन न शीशे तोडने के लिये प्रारम्भ हुआ और न

राष्ट्रीय सपत्ति जलाने हेतु । शुरूआत मे वे हमेशा ही किसी न्यायपूर्ण माँग को लेकर चले हैं । यदि वे माँग करते हैं कि हमको हिन्दी मे लिखने-पढने दीजिये, तो क्या आप उनको इस माँग के लिये अपराधी के कटघरे मे खडा करेंगे ? लेकिन हम आप सब जानते हैं कि उनको उस कटघरे मे खडा किया गया है । मेरे विचार से आम तौर पर उनके सभी आन्दोलन न्यायसगत रहे हैं ।

प्रश्न—हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के प्रति आपकी कैसी धारणा है ?

उत्तर—देखिये, बीस वर्ष के स्वतन्त्र राष्ट्र में अभी तक कोई राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली ही नही है । लगभग वही मैकॉले की नीति अब भी चल रही है । शिक्षा पद्धति की रचना राष्ट्रीय सन्दर्भों तथा सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिये । बुनियादी शिक्षा-प्रणाली ने हमारी समस्याओं को स्पर्श करने का बहुलाश मे प्रयत्न किया, परन्तु एक यह कमी रह गयी कि उसमे वर्तमान यान्त्रिक अभिनवीकरण (Modern Advanced Technology) की उपेक्षा कर दी गयी । अभी हाल ही मे प्रकाशित कोठारी आयोग के प्रतिवेदन मे इस समस्या के हल की ओर प्रशसनीय कदम उठाया गया है ।

प्रश्न—क्या विद्यार्थी को राजनीति मे भाग लेना चाहिये ?

उत्तर—मैं राजनीति से मात्र दलबन्दी का आशय नहीं लेता । मेरी सम्मति मे राजनीति का कार्य देश की ज्वलन्त समस्याओं का हल ढूँढ निकालना है । विद्यार्थी चूँकि देश का सर्वाधिक सजग प्रहरी है, अतः वह इन समस्याओं से पराङ्मुख नही हो सकता । उसे आवश्यक रूप से इस निर्माण-प्रक्रिया मे हिस्सेदार होना चाहिये । साथ ही एक बात और है कि किसी दल विशेष की सदस्यता से ही कोई व्यक्ति राजनीति मे भाग नहीं लेता, अपितु राजनीति तो तात्त्विक दृष्टि से एक विचारधारा (Ideology) या सिद्धान्त है । वर्तमान परिस्थितियों मे विद्यार्थी विभिन्न प्रचलित विचारधाराओं के माध्यम से अपने को खोज रहा है, अपनी समस्याओ का समाधान खोज रहा है । जो भी विचारधारा उसके प्रश्नों के सतोषप्रद उत्तर दे सकेगी, वह उसे अपनायेगा और तदनुकूल अपने आचरण भी करेगा । अब यदि कुछेक सुविधाप्राप्त श्रीमतों के सिद्धान्तो से उसके विचार टकराते हैं तो बस तनाव खडा हो जाता है, और यह स्वाभाविक भी है । इसी तनाव

को लोग "छात्रो द्वारा राजनीति मे भाग लेने" की सज्ञा देने लगते हैं। मै नही मानता कि इस प्रकार अपनी किसी सर्वाधिक सुलभ एव मान्य प्रणाली द्वारा अपनी सुविधाओ को प्राप्त करना राजनीति मे भाग लेना है। सामाजिक व्यवस्था ही राजनीति है तथा वही राजनीतिक नेतृत्व भी छात्रो को मान्य होगा जो उनकी आवश्यकताओ की पूर्ति करेगा।

प्रश्न—विद्यार्थियों का नेतृत्व करने के वास्तविक अधिकारी कौन हैं ?

उत्तर—यदि आपका तात्पर्य शिक्षक-वर्ग से है, तो तुलनात्मक दृष्टि से शिक्षक ही उनके अधिक समीप होते है, अत वे उनका नेतृत्व करें, परन्तु नेतृत्व सही होना चाहिये। इसी प्रसंग मे यह भी कह दूँ कि मैं नही मानता कि शिक्षको की अपेक्षा विद्यार्थी अधिक अनुशासनहीन हो चला है। यदि आप शिक्षकों को अच्छा मानते हैं, तो विद्यार्थी भी अच्छे हैं।

प्रश्न—क्या यह कथन सही है कि युवा-असतोष का एक कारण यह भी है, कि पुरानी पीढी समस्त सुविधाओ पर अधिकार करके बैठ गयी है ?

उत्तर—विद्यार्थी तो पढ रहा होता है, उसे कौनसी सत्ता हथियानी है। इस प्रकार की बात करना उन पर गलत दोष लगाना है। नि सन्देह इस प्रकार की भावना नौजवानो में है, और मेरी राय मे होनी भी चाहिये, लेकिन अभी विद्यार्जन के समय मे नही है। जैसे-जैसे नौजवान शक्ति-सम्पन्न होता जायेगा, वैसे-वैसे ही सत्ता-केन्द्रो को अपने हाथ मे लेता जायेगा।

प्रश्न—यदि वर्तमान गतिविधि को न रोका गया तो इसकी क्या दिशा होगी ?

उत्तर—हडताल और प्रदर्शन तो एक जानदार ज़िन्दगी (Robust Life) के लक्षण हैं। यह वह ज़िन्दगी है, जो अन्याय और शोषण के खिलाफ लड रही है। ये सब तो निर्माण के पद-चिह्न हैं, जीवन करवटें ले रहा है। इसके अलावा इतिहास मे पहली बार छात्रो मे भी एकता के लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे हैं। भाषागत एव राज्यगत विभिन्नताओ के बावजूद, आज जो मांग जिस प्रकार से बंगाल का विद्यार्थी कर रहा है, उसी प्रकार राजस्थान का विद्यार्थी भी।

प्रश्न—इस असन्तोष को हटाने के लिये क्या कदम उठाये जाने चाहियें ?

उत्तर—एक अच्छी शिक्षा-प्रणाली और विद्यार्थी की सुविधा-पूर्ति द्वारा ही इस समस्या का समाधान सम्भव है।

प्रश्न—यदि छात्र-असन्तोष का अविलम्ब उपचार न किया गया, तो भविष्य मे किस बात की सम्भावना है ?

उत्तर—इस असन्तोष को सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न असन्तोष से पृथक नही समझना चाहिये। नई सामाजिक व्यवस्था ही सब समस्याओं का हल प्रस्तुत करेगी। इस उथल-पुथल से निराश होने की कोई आवश्यकता नही। यह जीवन ही है, जो अपने अन्दर के पापो को झाँक रहा है, यह मृत्यु नही। इसमे व्यथित होने की भी कोई बात नही है, क्योकि देश का भविष्य उज्ज्वल है। ठीक है भी, परिवर्तन ही जीवन है और स्थैर्य ही मृत्यु।

मास्टर आदित्येन्द्र

(अध्यक्ष—संयुक्त समाजवादी पार्टी, राजस्थान)

छात्र-आन्दोलन के बारे मे कुछ प्रारम्भिक बातें मेरी मास्टरजी से हुई, तो वे भाव–रिक्त हो, अन्यमनस्क भाव से शून्य की ओर झाकने लगे। मुझे लगा, उनके हृदय को कोई बात कसक रही थी। कदाचित् उनके नेत्रों मे गाँधीजी की स्वरिणम कल्पना—रामराज्य—के शरद्कालीन हल्के–भूरे, शुभ्र–शांत बादल तैर रहे थे, जिनकी छाया में भारत का जन–मानस असत्य से परे हिंसा और वैषम्य से दूर, कटुता और विरोध से रहित, प्रेम, स्नेह, सहयोग के साम्य–भाव से स्वच्छद विचरण कर सकता। लंबी सास लेते हुये उन्होंने अपना मौन भग किया और बोले, आप क्या पूछना चाहते थे ? मैंने कहा—

प्रश्न—मान्यवर, आपके मतानुसार वर्तमान छात्र–आन्दोलन के क्या कारण हैं ?

उत्तर—मेरे मत से इस आन्दोलन का सबसे बडा कारण यह है, कि आज शिक्षा प्राप्ति का कोई निश्चित लक्ष्य नही है। छात्रों को यही नहीं पता कि अध्ययन समाप्ति के पश्चात्, उन्हें कोई व्यवसाय भी मिल सकेगा या नहीं। इस कारण उनमे बडी जबरदस्त निराशा व्याप्त हो गयी है। इतनी बडी युवा–शक्ति का कोई सदुपयोग ही नहीं हो रहा।

प्रश्न—क्या इसके कोई अन्य कारण भी हो सकते हैं ?

उत्तर—हाँ, क्यों नहीं, जैसे योग्य अध्यापकों का अभाव तथा छात्रों के घरेलू वातावरण की अस्वस्थता, अर्थात् उनके घर पर उन्हें अशिक्षाप्रद एव असुविधाजनक वातावरण का मिलना। इसके अतिरिक्त स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् हमारे राजनीतिक नेताओं व प्रशासनिक अफसरों के आचरण आदर्श नहीं रहे। वर्तमान प्रजातंत्र के चुनावों में विजय प्राप्त करके धन एव सत्ता को हथियाना ही मात्र लक्ष्य रह गया है। विजय प्राप्ति के साधनों के औचित्य एव अनौचित्य पर भी हमारा

ध्यान नहीं रहा । इस सारे दुष्चक्र को देखकर छात्रों में भी अनुशासन-हीनता बढती जा रही है ।

प्रश्न—यह राजनीतिक दुष्चक्र कैसे दूर हो सकता है ?

उत्तर—राजनेताओं को समाज के रचनात्मक कार्यों मे निस्वार्थपूर्वक स्वेच्छा से लग जाना चाहिये । यह तो सर्वविदित ही है, कि हमारी आजादी की नींव सेवा और त्याग पर निर्मित हुई थी, परन्तु आजादी के पश्चात् जो उसकी इमारत बनी, वह सेवा और त्याग के स्थान पर "शासन लोलुपता" से निर्मित हुई । इस प्रकार आज हमारे समक्ष प्रजातन्त्र का विकृत एव घिनौना रूप उपस्थित हो गया है ।

प्रश्न—हमारे इस प्रजातन्त्र से आपको और भी कोई शिकायत है ?

उत्तर—शिकायतें तो कई हो सकती हैं, परन्तु मुख्य रूप से जाति-प्रथा को ही ले लीजिये, चुनावो मे खुलकर इसका दुरुपयोग होता है । दूसरे, हमारे सभी नैतिक मूल्य भी लुप्त होते जा रहे हैं । नशीले पदार्थों के सेवन का प्रचलन बढ रहा है । हमारे छात्रों मे भी यह बीमारी व्याप्त होती जा रही है । राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रयोग की बात को भी इतने लम्बे समय से स्थगित किया जाता रहा है ।

प्रश्न—कुछ लोगो के इस विचार से आप कहां तक सहमत हैं, कि गांधीजी ने ही विद्यार्थियों को सत्याग्रह आन्दोलन मे आह्वान करके वर्तमान छात्र-आन्दोलन की परम्परा का सूत्रपात किया था ?

उत्तर—किसी सीमा तक मैं भी इस विचार से सहमत हूँ, परन्तु गाधीजी समाज के सभी अंगों को जागृत एव सक्रिय रखना चाहते थे । गाधीजी का सच्चे स्वराज्य से तात्पर्य मात्र यही नही था कि जनता अच्छे शासको का निर्माण करें, बल्कि वे जनता मे उस शक्ति को भी उत्पन्न करना चाहते थे, कि जब देश के शासक बुरे सिद्ध होने लगें तो जनता उन्हे हटा भी सके । अत मै स्वय भी आन्दोलन के इस अधिकार को उचित मानता हूँ ।

प्रश्न—आपके विचार से क्या छात्रो को राजनीति मे भाग लेना चाहिये ?

उत्तर—देखिये, राजनीति का तात्पर्य सत्ता-प्राप्ति नही है, बल्कि समाज-सेवा करना तथा देश की समस्याओ का समाधान खोज निकालना है । विद्यार्थियों को भी इन समस्याओ के प्रति सजगता प्रदर्शित करनी

चाहिये। उन्हें राष्ट्रोत्थान के महत्वपूर्ण कार्यों मे—जैसे कृषि-उत्पादन की वृद्धि हेतु 'लैण्ड आर्मी' आदि बनाकर—अपना हिस्सा बटाना चाहिये। वास्तव मे तो समाज-सेवा को राजनीति से पृथक नहीं किया जा सकता। भविष्य मे होनहार विद्यार्थियों का इस प्रकार आन्दोलनों मे प्रवृत्त होना, एक प्रकार से समाज-सेवा के हेतु प्रशिक्षण प्राप्त करना ही तो है। उनके इस कार्य मे बाधा उत्पन्न करना प्रकारान्तर से क्रांति के मार्ग को अवरुद्ध करना है। मैं तो पुन यही कहूँगा कि छात्रों को अपने अधिकार के लिये आन्दोलन करने चाहियें। वैसे तो छात्रों का मुख्य कार्य, सीखना है, परन्तु उन्हें निष्क्रिय नहीं होना चाहिये।

प्रश्न—श्रीमान्, क्या आप आन्दोलनों से सम्बन्धित साम्यवादियो तथा आपके दल की रीति-नीति की भिन्नता पर प्रकाश डाल सकेंगे ?

उत्तर—साम्यवादी आन्दोलनों का एक अनिवार्य तत्व है—हिंसा, जबकि ससोपा सैद्धान्तिक दृष्टि से अहिंसा मे विश्वास रखती है।

प्रश्न—अभी हाल ही मे छात्रों के लिये "भारतीय समाज-सेवा" की जो योजना लागू की जा रही है, उसकी सफलता के विषय में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर बिलकुल सीधा है—किसी भी कार्यक्रम की सफलता बिना मौलिक परिवर्तनो के सम्भव नहीं है जो हमारे देश में अभी आया नहीं है। मैं तो इस योजना के प्रति आशावान नहीं हूँ।

प्रश्न—छात्र-आन्दोलन की समस्या के समाधान के लिये आपके क्या सुझाव हैं।

उत्तर—व्यक्ति से लेकर दल तक, सभी के लिये चरित्र-निर्माण की आवश्यकता है। मुख्य रूप से तो शासक-प्रशासक वर्ग के सुधरने से समस्या में सुधार सम्भव है। फिर भी हमे अपने को दूसरे के आश्रय पर नहीं छोड देना चाहिये। हमे अपनी ओर से भी पहल करनी होगी।

देवीसिंह मडावा

(समतसदस्य—स्वतन्त्र दल)

•

काफी विलम्ब से रात्रि के लगभग १० वजे मडावा साहब के घर पर जव मैं पहुँचा तो भोजन करके वे बाहर अपने बरामदे मे आये । मैंने उन्हे वताया कि किस प्रकार छात्रो की समस्या को लेकर हम एक पुस्तक प्रकाशित कर रहे हैं, और मैं उनके विचार जानने के हेतु आया हूँ । समयाभाव की मजबूरी ही मेरे इतने विलम्ब से आने का कारण है। अतः उन्होंने अपनी शालीन सौजन्यता (मुझे लगा उनके व्यक्तित्व मे पूँजीभूत वह सौजन्य एक जीवन की कमाई न होकर मानो एक लम्बी पारिवारिक परम्परा से हस्तान्तरित विरासत ही हो) से कहा—ठीक है, मै जैसी धारणा रखता हूँ, उसको अवश्य व्यक्त करने का प्रयत्न करूँगा, आप प्रश्न कीजिये । मैंने पूछा——

प्रश्न—महोदय, आपके मत से आज के छात्र–आन्दोलन के क्या-क्या कारण हो सकते हैं ?

उत्तर—भाई, मेरा व्यक्तिगत विचार यह है कि इसके लिये दो–तीन बातें मुख्य रूप से उत्तरदायी हैं। एक बात तो यह है कि छात्र को अपने अध्ययन–काल मे शैक्षणिक सुविधाओ का अभाव रहता है । दूसरा कारण है—हमारी दोषपूर्ण शिक्षा–पद्धति जिसके, बारे मे मैंने एक–दो बार ससद में भी जिक्र किया है। लार्ड मैकॉले की शिक्षा–नीति, जो बाहर के शासको द्वारा एक परतन्त्र देश के लिये बनाई गई थी, आज भी चल रही है। यह शिक्षा एक स्वतन्त्र राष्ट्र की आकाक्षाओं को पूरा नही कर सकती। कैसी विडम्बना है, कि देश तो स्वतन्त्र हो गया है, लेकिन देश की भावी पीढी का मानस, जो आगे चलकर देश की दिशा निर्धारित करने को है, परतत्र युग की भाव–भगिमाओं के मध्य से गुजर रहा है। तीसरा कारण एक और है—देश के राजनीतिक दल भी छात्रो का गलत उपयोग करते रहे हैं ।

प्रश्न—छात्रों द्वारा राजनीति मे भाग लेने के प्रश्न पर आपके क्या विचार हैं?

उत्तर—इस विषय मे मेरा तो यह मत है कि अध्ययन-काल मे छात्रो का मस्तिष्क पूर्ण रूपेण विकसित नही हो पाता, अतः अच्छा यही है कि वे सक्रिय राजनीति मे भाग न लें।

प्रश्न—छात्रो द्वारा अपनी मागो को माँगने का ढग क्या होना चाहिये ?

उत्तर—मैं प्रजातान्त्रिक ढग को ही अधिक पसन्द करता हूँ। हाँ, एक कठिनाई को मैं अवश्य अनुभव करता हूँ कि हमारा प्रशासन 'स्ट्रांग डेमॉस्ट्रेशन' (उग्र प्रदर्शन) के बिना किसी भी बात को सुनना नही चाहता।

प्रश्न—तो अन्ततः आप किस प्रकार के ढग को अपनाने की सलाह देना पसन्द करेंगे ?

उत्तर—कुछ भी कहिये, मैं तो सवैधानिक और प्रजातान्त्रिक ढग अपनाने के ही पक्ष मे हूँ। बात यह है कि यदि एक बार अप्रजातान्त्रिक ढग को अपना लिया जाय तो कालान्तर मे उसके एक मानसिक परम्परा मे परिवर्तित हो जाने की आशका रहती है। और फिर छोटी-छोटी बातो के लिये भी उग्रता की प्रणाली अपनाने की प्रवृत्ति बन जाती है। अत डेमोक्रेटिक प्रॅसिस (जनतान्त्रिक ढग) ही उचित ठहरता है।

प्रश्न—आज युवा पीढी के लोग वरिष्ठ पीढी से इस कारण भी असन्तुष्ट होते बताये जाते हैं, कि वरिष्ठ पीढी समाज की समस्त शक्ति और सुविधाओ पर एकाधिकार करके बैठ गई है और नव पीढी बेरोज़गारी तथा हताशा का जीवन भोग रही है। आप इस विचार के प्रति क्या दृष्टि रखते हैं ?

उत्तर—यह बात कुछ हद तक ठीक भी है। पुराने लोग अपनी ठेकेदारी छोडना नही चाहते।

प्रश्न—कदाचित् आपने सुना होगा कि देश मे विद्यार्थियों के लिये "भारतीय समाज सेवा" की योजना प्रारम्भ की जा रही है। इस योजना की सफलता के विषय मे भी आप कृपया अपने विचार प्रगट करे।

उत्तर—देखिये, मुझे तो इसमे सफलता कम ही लगती है।

प्रश्न—श्रीमान् क्यो ?

उत्तर—इसका कारण यह है कि "समाज-सेवा" एक व्यापक और विस्तृत भाव है। किसी भी योजना की सफलता उसकी सही रूपरेखा पर निर्भर होती है। हमारे देश का दुर्भाग्य है कि किसी भी कार्य की कार्यान्विति ढग से हो ही नहीं पाती। मैं समाज-कल्याण विभाग

की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा—मैं यह नहीं कहता कि इस विभाग ने कुछ कार्य ही नहीं किया है, कही-कही जहाँ इसको अच्छे व्यक्ति मिल गये हैं, कुछ कार्य भी हुआ है, परन्तु अभी इसे अपेक्षित सफलता नही मिल पाई है।

प्रश्न—सफलता न मिल पाने के क्या कारण हैं ?

उत्तर—हमारे देश मे चरित्र-निर्माण का कोई कार्यक्रम ही नही है। नैतिकता शिक्षा से ही नही बल्कि हमारे जीवन के प्रत्येक पहलू से कूच कर गयी है। व्यक्ति के चरित्र और नैतिक-बल के अभाव मे किसी भी राष्ट्र की कोई भी योजना सफल नही हो सकती।

प्रश्न—महोदय, क्या आप यह बताने का कष्ट करेंगे कि देश मे चरित्र और नैतिकता भी पुनर्स्थापना कैसे की जा सकती है ?

उत्तर—बाल्यकाल से ही बच्चों के चरित्र एव नैतिकता को ऊँचा उठाने के लिये एक प्रभावी कार्यक्रम राष्ट्रीय-स्तर पर बनाया जाना चाहिए।

रात्रि के ११ बजने को थे, अतः मैने अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त की और उनसे विदा ली।

●

जयपुर मैडिकल कॉलेज के भूखहड़ताली छात्र

जब मार्च, १९६८ मे जयपुर मैडिकल कॉलेज के छात्रो ने अपनी कुछ माँगो के प्रश्न को लेकर कॉलेज के सामने भूख-हडताल प्रारम्भ की, तो मैंने चाहा कि उनसे कुछ वातचीत की जाय। दोपहर का समय था, शामियाने मे कुछ छात्र ताश इत्यादि खेल रहे थे जबकि प्राय: सभी-भूखहडताली छात्र सो रहे थे। जब उनसे मैंने अपना मतव्य कहा, तो उन्होंने उत्तर दिया कि विश्वविद्यालय की ओर से शीघ्र ही कुछ निर्णय लिये जाने को हैं, इसलिये इस समय हम कोई वक्तव्य नही दे सकेंगे। अत मैं वापस आ गया।

हडताल टूट जाने पर दिनाक २५–३–६८ को रात्रि के लगभग पौने नौ बजे जब मैं मुख्य पुरुष छात्रावास (Main Boys Hostel) पहुँचा और हडताली छात्रो से सम्पर्क स्थापित किया तो प्रारम्भ में उन्होंने कुछ शकालु दृष्टि से मुझे देखा, परन्तु जब मैंने उनसे नितात अनौपचारिकता, सहानुभूति एव अध्यापकीय सौहार्द्र (जो मेरी राय मे सबसे उचित, सफल एव प्रबल साधन है) से वातचीत की, तो वे मेरे प्रश्नों के उत्तर देने को सहर्ष राजी हो गये। मैंने जब उनसे पूछा कि गत दिनो मे आपने जो हडताल की थी, उसका क्या कारण था, तो उत्तर मे सभी ने बताया कि मुख्य विवाद परीक्षा प्रारम्भ करने की तिथि से सम्बन्वित था। मैंने उनसे पूछा—

प्रश्न—बन्धुवर, क्या इन छोटी-मोटी वातों के लिये आप कोई अन्य सहज रास्ता नही अपना सकते थे?

उत्तर—तो छात्र 'क'—ने उत्तर दिया, कि आजकल उत्तरदायित्व के साथ सहज में सुनता ही कौन है? सर्वप्रथम तो हमने अपनी माँगें कॉलेज अधिकारियो के समक्ष ही रखी थीं, जिसका जवाब मिला—विश्व-विद्यालय वालों से वातचीत करिये और जब वहाँ गये तो उत्तर मिला कि फैकल्टी की मीटिंग मे निर्णय होगा। बस इसी तरह टालमटोल होती रही और अन्त मे जब हम लोगो ने हड़ताल का रास्ता अपनाया

तो सभी लोग दौड़-दौड़ आये, और हमारी कठिनाइयो का समाधान प्रस्तुत करने लगे। मै आपसे ही पूछता हूं, क्या यह स्थिति सतोष-जनक है, कि किसी गभीर एव न्यायोचित बात के लिये भी अधिकारी लोग, तब तक सुनवाई न करें, जब तक कि उनके अस्तित्त्व को खतरा उत्पन्न न हो जाय ?

प्रश्न—क्या हडताल एव तोडफोड की कार्यवाहियो मे आपकी दिलचस्पी है ?

उत्तर—'ख'—तोडफोड मे हमे कतई दिलचस्पी नही है। 'ग'—और जहां तक हम लोगो का प्रश्न है, हम लोग तो इस तरीके को अपनायेंगे भी नही। इस साधन को तो आमतौर पर एकेडैमिक कॉलेजो के छात्र ही प्राय अपनाते हैं। 'ख'—वल्कि मै तो यह भी कहूँगा कि कॉलिज अथवा अन्य स्थानो के तोड-फोड के दृश्य जब हमारी आँखो के सामने आते हैं, तो बाद मे मन को बडा खेद तथा पश्चाताप होता है। 'घ' 'च' एव 'छ'—नि सन्देह, राष्ट्रीय सपत्ति की क्षति के दृश्य हृदय को बडी भारी वेदना पहुँचाते हैं। 'ग'—असल मे यदि व्यक्तिगत स्तर पर देखा जाय, तो विद्यार्थी की रुचि इस विनाशकारी प्रवृत्ति की ओर नही होती, परन्तु जब 'भीड मनोवृत्ति' बढने लगती है, तो फिर औचित्य तथा अनौचित्य का कुछ भी ध्यान नही रह पाता। (सभी छात्र इस बात पर सहमत थे, कि कभी-कभी तो हडताल इत्यादि, अहितकर परिणामो को समझते हुये भी प्रारम्भ हो जाया करती हैं। शायद वे समाप्त भी हो जाय, परन्तु जब राजनीति का हस्तक्षेप होने लगता है, तो बात का बतगड बना दिया जाता है, तथा समस्या एव उनके समाधान के सूत्र विद्यार्थी-वर्ग के हाथो से निकल कर राज-नेताओ के हाथो मे चले जाते हैं।) 'च'—इसके अलावा विद्यार्थियों मे भी कुछेक राजनीतिक एजेन्ट भी होते हैं, जो बराबर इस ताक मे रहते हैं, कि विद्यार्थियो को राजनीति की ओर मोड दिया जाय।

प्रश्न—जब आप विद्यार्थियो का इस प्रकार की दलगत राजनीति मे विश्वास नही है, तो फिर आप इन राजनीतिक दलो द्वारा किये गये हस्तक्षेप को क्यो बरदाश्त करते हैं ?

उत्तर—'ग'—यद्यपि छात्रों को ऐसी राजनीति मे विश्वास नही होता, परन्तु जब शिक्षाधिकारियो द्वारा उनकी सही माँगो को ठुकरा दिया जाता

है, तो उन्हें हड़ताल एव प्रदर्शन जैसे साधनों का आश्रय लेना पड़ता है और वैसे तो यूनिवर्सिटी स्वय ही राजनीति के कुचक्र मे फँसी रहती है ।

प्रश्न—कुछ हडतालें न्यूनतम उत्तीर्णाक प्रतिशत को कम कराने के लिये भी हुई हैं, ऐसे मामलों के प्रति आपकी क्या धारणा है ?

उत्तर—(सभी ने एक मत से कहा)—हम ऐसी माँगों के बिलकुल विरुद्ध हैं। देश मे शिक्षा का स्तर गिरने नही देना चाहिये । ऐसी माँग वाले लोग स्वय भी कदाचित् नही जानते, कि ऐसा करके अपना तथा राष्ट्र का कितना बड़ा अहित कर रहे हैं । 'ख'—हाँ, एक बात अवश्य है कि शैक्षणिक मामलों के निर्धारण के समय फैकल्टी-मीटिंग वगैरह मे यदि छात्रों का प्रतिनिधित्व हो, तो समस्या के समाधान की आशा की जा सकती है ।

प्रश्न—आपकी समस्याओ के प्रति आपके अध्यापकों का क्या रुख रहता है ?

उत्तर—वे हमारी समस्याओं के प्रति कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखते । वे कुछ तो डरते हैं और कुछ सोचते हैं कि हम तो डॉक्टर बन ही गये और माह के अन्त मे वेतन भी मिल ही जायगा । (हल्की मुस्कान)

प्रश्न—अध्यापन के प्रति आपका क्या विचार है ?

उत्तर—'घ'—हमारे यहां कक्षायें नहीं चलती, बल्कि कॉलिज ऑडीटोरिम (प्रशाल) में पाच सौ छात्रो की सभायें होती हैं । अध्यापक के चेहरे के तो दर्शन भी दुर्लभ हो जाते हैं और कभी-कभी, जब लाउड-स्पीकर खराब हो जाता है, तो अध्यापक महोदय भाषण देते रहते हैं और विद्यार्थी लोग या तो बातचीत करते हैं या ऊँघने लगते हैं । हमारे यहां शिक्षक और विद्यार्थी का कोई व्यक्तिगत सम्पर्क नही है । 'ग'—और फिर यहां के अध्यापक पढायेंगे क्या खाक, पढाना ही नहीं आता । जयपुर (राजधानी) में वे ही आ पाते हैं, जो सिफारिशी होते हैं और सिफारिशी तो प्राय. अयोग्य होते ही हैं। 'क'—कुछ अध्यापकों में ज्ञान तो अवश्य होता है, परन्तु वे पढाने का ढंग नहीं जानते तथा कुछ लोग तो साहब बडा ही प्यारा पढाते हैं ।

प्रश्न—अध्यापकों की और क्या कमिया हो सकती हैं, जिनके कारण वे आप लोगों को प्रभावित नहीं कर पाते ?

उत्तर—'घ'—कुछ अध्यापको का व्यक्तित्व बडा ही पूअर (प्रभावहीन) होता है। 'ख'—और कुछ तो यार अग्रेजी भी गलत बोलते हैं। 'क' तथा 'घ'—और विद्यार्थी भी तो अग्रेजी को ठीक से समझ नही पाते। 'ग'—मेरी राय मे तो टैक्नीकल शब्दावली (Technical terms) तो अग्रेजी मे हो और विचार अभिव्यक्ति का माध्यम (Medium of expression) हिन्दी हो, तो अच्छा रहे। (बाद मे वे ही कुछ सशोधन-सा करते हुये पुन. बोले)—हिन्दी से मेरा अभिप्राय 'मातृ-भाषा' से है। 'क'— शिक्षा का माध्यम हिन्दी होने के कारण अग्रेजी की पृष्ठभूमि पिछली कक्षाओ से ही कमज़ोर रहती है। 'ग'—कुछेक तो लडको को धमकी देते हैं कि इम्तहान मे देख लेंगे, यानी (Career Spoil) कर देंगे, क्योकि Internal Assesment तो इन्ही के हाथो मे होता है। 'ख'—असल मे प्राथमिक कक्षा से अध्यापक की Quality ए-वन होनी चाहिये, तब ही कुछ सुधार हो सकता है। 'छ'—और कुछ छात्र तो Back-Benchers होते ही हैं, जिन्हे यदि सभी सुविधायें दे दी जाय, तो भी नही पढे गे। (कुछ छात्रो के बीच यह प्रश्न कुछ देर के लिये विवाद का विषय रहा, कि यदि अध्यापक योग्य हों, तो सभी प्रकार के छात्र पढने की ओर उन्मुख हो मकते हैं।)

प्रश्न—ऐसे छात्र (Back-benchers) किस वर्ग से आते हैं ?

उत्तर—'ख'—ऐसे लडके या तो सिफारिशी होते हैं या मालदार परिवारो के। 'ख'—भई, पैसे वाले ही सिप्पेवाले (सिफारिशी) होते हैं। 'ख'—लडके सोचते हैं, कि परीक्षा मे बैठने के अवसर तो बार-बार मिल ही जाते हैं, कभी न कभी तो पास हो ही जायेंगे। यदि इतने अवसर कम हो जाय, तो ये पढने की ओर अधिक ध्यान देंगे। 'ख'—और फिर कोई पढ़े या न पढ़े, कॉलेज को अपना परीक्षा-परिणाम का प्रतिशत भी दिखाना पडता है, अत. विवश होकर अयोग्य छात्रों को भी पास करना पडता है। और मजाक यह है कि परीक्षा-परिणाम के बढाते समय भी सीमान्त छात्रो (Marginal Students) को उत्तीर्ण न करके सिफारिशी छात्रो को ही उत्तीर्ण किया जाता है। फलत सबसे थर्ड रेट का कूडा-कचरा पास हो जाता है। (एक छात्र ने विषय को ज़रा मोडते हुये कहा)—मेरे मत से तो सैद्धान्तिक

परीक्षायें तथा आन्तरिक परीक्षायें (Theory Examination and Internal Assessment) की उत्तर-पुस्तिकायें भी बाहर जाची जानी चाहिये, जिससे इन लोगो की (अध्यापकों की) धमकियों से बचा जा सके। 'क'—मेरे विचार से तो आन्तरिक-परीक्षा तो स्थानीय ही होनी चाहिये, अन्यथा वास्तविक परीक्षण सम्भव नहीं। 'ख'—मेरे हिसाब से तो मासिक–परीक्षायें भी होनी चाहिये ।

प्रश्न—भारतीय विद्यार्थी मे यह मानसिक निराशा, कुण्ठा, अनास्था तथा दिशाहीनता जैसी भावनायें क्यों घर कर गयी हैं ?

उत्तर—(सभी)—निराशा तो बडी भारी है। 'ग'—हमारा फ्यूचर डार्क (भविष्य अन्धकारमय) है। 'ख'—शिक्षित व्यक्तियों की मांग और पूर्ति मे असन्तुलन उत्पन्न हो गया है। हमारी राष्ट्रीय योजनायें ठीक नहीं हैं। 'ग'—बूढे लोग एक्सटैन्शन पर एक्सटैन्शन (सेवा-काल वृद्धि) पाते जा रहे हैं और शिक्षित नौजवान या तो सडको पर बेकार घूमते हैं या नीचे पदो पर लम्बे समय तक घिसटते रहते हैं। उन्हे आगे कोई चास (अवसर) ही नही मिलता। बडे लोग अपने प्रौढ-अनुभवो द्वारा हमे अवैतनिक रूप मे पथ-प्रदर्शन करें, परन्तु अपने विचारो का थोपना उचित नही ।

प्रश्न—क्या आप लोग पश्चिमी जगत् के प्रभावों को पसन्द करते हैं ?

उत्तर—'ग'—यदि पश्चिमी प्रभाव लाभप्रद हों, तो उन्हें अवश्य अपनाना चाहिये ।

प्रश्न—आपके मत मे भारत का प्राचीन विद्यार्थी श्रेष्ठ था अथवा वर्तमान का ?

उत्तर—'ख' और 'छ'—न तो आजकल वैसे अध्यापक ही हैं और न विद्यार्थी ही (पाठक इस उत्तर से स्वय ही अभिप्राय ग्रहण करें। मेरे विचार से अब भी हमारा विद्यार्थी मन मे भारत के प्राचीन विद्यार्थी को आदर्श मान कर चलता है—सम्पादक)

प्रश्न—स्त्रियों की उच्च-शिक्षा कैसी होनी चाहिये ?

उत्तर—'घ'—उनका कार्य-क्षेत्र अलग है, अत उन्हें उनके क्षेत्र मे ही उच्च-शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। 'ख'—परिवार की देख-भाल कौन

करेगा ? 'ग'—नही, उन्हे भी उच्च-शिक्षा मिलनी चाहिये। 'क'—लेकिन उच्च-शिक्षा प्राप्त करने पर उनकी शादी नही हो पाती, और उन्हें मिस बनकर ही जीवन भर रहना पडता है, देखो न अपने यहाँ कितनी सारी मिसें ·· · (हसी)।

प्रश्न—सह-शिक्षा (Co-education) की प्रणाली आपको कैसी लगती है ?

उत्तर—'ग'—मेरा तो यह मत है, कि सह-शिक्षा के साथ-साथ यौन-शिक्षा भी होनी चाहिये, जिससे सही दृष्टिकोण पनप सके। 'च'—जब लडके और लडकियो को परस्पर अधिक निकट मे देखने-समझने का अवसर प्राप्त होता है, तो मन की गदी भावनायें भी दूर हो जाती हैं। 'क'—निकट परिचय से सद्व्यवहार की नैतिक जिम्मेदारी भी मन मे पनपने लगती हैं तथा जब लडकियाँ भी साथ-साथ पढती हैं, तो पढने की स्पर्वा भी तेजी से बढने लगती है और वेश-भूषा भी जरा टिप्-टाप्· (वातावरण मे क्षणिक तरलता)।

प्रश्न—विद्यार्थियो के नेतृत्त्व को किसको सम्हालना चाहिये ?

उत्तर—'क'—निसन्देह अध्यापक को ही नेतृत्त्व सम्हालना चाहिये। लेकिन विद्यार्थियो को साथ लेकर ही ऐसा किया जाय। उन्हें भी उत्तर-दायित्व सौंपे जाय। 'ग'—अध्यापक छात्रो के निकटतम व्यक्ति होते हैं। 'क'—अत वे उनकी समस्याओ को अधिक अच्छी तरह से समझ सकते हैं।

प्रश्न—देश की वर्तमान स्थिति को देखते हुये आपकी क्या मानसिक प्रति-क्रिया है ?

उत्तर—(सभी)—देश की सामान्य दशा वडी भयावह है। 'ग'—एक महान् परिवर्तन की आवश्यकता है। 'क'—इसे तो वस क्राति ही सुधार सकती है। 'ग'—शिक्षा को भी न्यायपालिका के समान निष्पक्ष और स्वतत्र कर देना चाहिये। इसमे राजनीति का कतई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये। 'क'—हमारी राष्ट्रीय नीतियो मे कहीं गडवड हो गयी है। 'ग'—आज कल तो कॉलेजो व स्कूलो को खोलना तथा उनमे सीटो का भरना भी राजनीतिक प्रभावो द्वारा किया जाता है। 'क'—मेरे विचार से विद्यार्थियों को भी राजनीति में भाग लेना चाहिये। वे क्यो देश की ज्वलन्त समस्याओ के प्रति उदासीन रहें ?

आज या तो अधिकतर अयोग्य एव अवसरवादी व्यक्ति राजनीति मे भर गये हैं या पूँजीपति। 'ग'—स्वास्थ्य मत्री भी स्वास्थ्य-विशेषज्ञ ही होना चाहिये। बिना ज्ञान के ही तो यह सब घपला चल रहा है। 'घ'—शैक्षणिक सुविधाओ का नितान्त अभाव है। 'छ'—भाई, मेरे विचार से तो जनसख्या की वृद्धि ही सब समस्याओ की जड है (अट्टहास)। 'ग'—मेरा तो ऐसा अनुमान है--तीन-चार वर्षों बाद मैडिकल कॉलिजो मे भी नौकरियो के लिये हडतालें प्रारम्भ हो जावेंगी।

तृतीय खंड

'विचार-बिन्दु'

Trivandrum
18-11-1967

E. M. S, Namboodiripad,
Chief Minister

Dear Sir,

... . .I would only say that the 'Student Agitation' is not a problem in itself, nor is it a disease as conceived by many It is a reflection and sympton of the deeper malaise in which the Community is entangled No treatment to symptoms will cure the disease

Yours Faithfully,
Sd-E. M S, Namboodiripad

लक्षणो के उपचार से रोग–निवारण सम्भव नहीं
(हिन्दी–रूपान्तर)

त्रिवेन्द्रम
१८–११–१९६७

ई. एम एस नम्बूदरीपाद,
मुख्य मन्त्री

प्रिय महोदय,

.. ... . .मै तो केवल इतना ही कहूंगा कि 'छात्र–क्षोभ' स्वय में कोई समस्या नही है, और न यह कोई बीमारी ही है, जैसी कि वहुत से लोगो की धारणा है। यह तो उस गहरे रोग की प्रतिच्छाया और लक्षण है, जिससे समाज ग्रसित है। लक्षणो के उपचार से किसी भी रोग का निवारण नही हो सकता।

भवदीय
हस्ताक्षर–नम्बूदरीपाद

बुज़ुर्ग पीढ़ी का दायित्व

डॉ० मोहनसिंह मेहता

वर्तमान शताब्दी में हुए दो भीषण युद्धों ने सारे सामाजिक और वैचारिक धरातल को झकझोर कर दिया है। सभी सामाजिक, सांस्कृतिक धार्मिक और नैतिक मूल्यों की नींव हिल गई है। परिणाम स्वरूप एक व्यवस्था धराशायी हो गई है और नई व्यवस्था का जन्म हुआ है। इसे हम सक्रमण-काल की स्थिति कह सकते हैं। इसी संक्रमण-काल के बीच जो सामाजिक और राजनैतिक उथल-पुथल हो रही है, उसका हर वर्ग पर प्रभाव पडा है। इसमें आज का युवक भी अछूता नही रहा है, वह भी आज उसकी चपेट में आगया है। आज का युवक अधीर है, विक्षुब्ध है और दिशा हीन है। क्योकि वह न तो स्वयं रास्ता ढूंढने मे सक्षम है और न हमारी बुज़ुर्ग पीढी उसका ठीक तरह से मार्ग-दर्शन कर पारही है। फलत. दोनों पीढियों मे एक सघन दूरी हो गई है, जिसके सगम की आवश्यकता होते हुए भी खाई बढती जारही है।

वस्तुत यह समस्या पढे-लिखे युवको की है, जिनमे अपार बल है, वाणी मे तेज है, उत्साह है। किन्तु इन सब गुणों की परिणति आक्रोश में हो रही है। तोड-फोड, अशिष्ट व्यवहार, अनुशासन हीनता और अराजकता तथा हिंसात्मक कृत्य ही उसका मुख्य धन्धा बन गया है। बार-बार एक प्रश्न कुरेदता है, कि ऐसा क्यों है? जो पीढी देश की प्राण है और उसके भविष्य की आशा है, वही इतनी विचलित और उच्छृंखल क्यों है? इसका उत्तरदायी कौन है? क्या विद्यार्थी स्वय है अथवा शिक्षक, नेता या उसके माता-पिता? इसका सीधा और सही उत्तर भी कठिन है, क्योंकि इस स्थिति के लिए किसी एक को उत्तरदायी ठहराना समस्या के विश्लेषण के हेतु सही नहीं है। शिक्षक तथा अन्य बुज़ुर्ग पीढी के लोग अगर नि.स्वार्थ भावना से उसके निकट आकर उसे समझने का प्रयत्न करें और उसका उचित मार्ग-दर्शन करने का बोझ लें, तो मेरा ऐसा विश्वास है कि यह युवा-पीढी देश के

जन–जागरण, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र मे होने वाली क्रान्ति के लिए वरदान साबित हो सकती हैं।

अगर हम उन्हे एक उत्तरदायी नागरिक, मूल्यो का अभिरक्षक और सभ्य तथा सुसंस्कृत जीवन का आधार बनाना चाहते है, तो बुजुर्ग पीढी को अपने व्यवहार से उसमे विश्वास उत्पन्न करना होगा । किन्तु यह समस्या अब केवल 'बुद्धि का व्यायाम' मात्र ही नही है, बल्कि इसके शीघ्रातिशीघ्र हल ढूंढने को बाध्य कर रही है। अन्ततोगत्वा इसी पीढी पर हमारे देश, समाज और प्रजातन्त्रीय मूल्यों का भविष्य निर्भर है।

"सेवा सदन" विद्या भवन,
उदयपुर

"विद्यार्थी उच्च लक्ष्य को धारण करें"

•

विशनसिंह शेखावत

एक साँस में यदि कहा जाय तो छात्र-असतोष के कारण हैं—पढे-लिखों की बेरोजगारी, नवयुवको के मनो मे शिक्षक के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न होना, समाज द्वारा शिक्षक को निरा नौकर समझ लिया जाना, शिक्षक क स्वाभिमान का खोना तथा आर्थिक कठिनाइयाँ इत्यादि। इसके अतिरिक्त हमारी शिक्षा का योजना-बद्ध तरीके से विकास भी नही हुआ है। मै इस बात की नितान्त आवश्यकता अनुभव करता हूँ, कि शिक्षक के स्वाभिमान को जागृत किया जाये, शिक्षक मात्र पुस्तकीय ज्ञान, जो कोर्स मे सम्बन्धित है, उसको ही अपना आधार मान कर न चलें, अपितु राष्ट्र के निर्माण कार्य को सर्वोत्कृष्ट मान कर मिशनरी-भावना से बच्चों के हृदय में प्रवेश करें।

व्यापारिक भावनाओ को मन मे निकाल कर युवक के निर्माण को अपने हाथों मे लें। समाज एव सरकार शिक्षक के परिवार को जीवित रखने के साधन जुटा कर शिक्षक को आर्थिक कष्टो से मुक्त करें। साथ ही आन्त-रिक ज्ञान एव धार्मिक मूल्यो का छात्रो मे अधिक से अधिक विकास किया जाये। अभिभावको के दैनिक कष्टो का असर बच्चों के मस्तिष्क को विद्रोही बनाता है, उसके लिये सरकार स्वय बच्चों को घर से दूर रख कर पढाने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सम्हाले तथा बालक को किसी उपयोगी सेवा मे लगावे। जब विद्यार्थी को अपना भविष्य अन्धकारमय दिखाई नही देगा तथा वह राष्ट्र, धर्म तथा नैतिकता के मूल्यो से बधा रहेगा तो यह अनुशासनहीनता जो हमे दिखाई देती है, वह दूर हो सकेगी। उनकी शक्ति एव बुद्धि का समुचित उपयोग करने के लिये देश में ऐसी योजना की आवश्यकता है, जहाँ वे कुछ कर सकें—कुछ पा सकें—भार बन कर नही अपितु श्रमशील बन कर।

कार्यालय, राजस्थान शिक्षक-सघ,
जयपुर।

समाजवाद ही एक मात्र हल

डॉ० राम विलास शर्मा

मुझे सन् २० के उन दिनो की याद है जब हमारा स्कूल (सरस्वती पाठशाला, झाँसी) राष्ट्रीय स्कूल बना था। अचानक अध्यापको और छात्रो के परस्पर सम्बन्ध बदल गये। कई नये अध्यापक आये जो राजनीति मे सक्रिय भाग लेते थे, उन्होने छात्रों को पढाया ही नही उनके शेष जीवन पर अपने चरित्र की गहरी छाप डाली।

स्वाधीनता-प्राप्ति के बीस साल बाद आज देश का युवा-समाज निरुद्देश्य और असगठित है। अध्यापक-वर्ग जीवन की परिस्थितियों से असतुष्ट, किन्तु उन्हें बदलने मे असमर्थ है। छात्रो और अध्यापको मे ऐसे लोगो की कमी नहीं, जो सच्चाई और ईमान की चिंता न करके पैसा कमाने, तरह-तरह से स्वार्थ-सिद्धि करने मे अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं।

देश में एक समर्थ युवक-आन्दोलन की आवश्यकता है, जिसका राजनीतिक लक्ष्य स्पष्ट हो, जो समाजवाद की प्राप्ति के लिये एक साफ-सुथरा कार्यक्रम लेकर सगठित हो, जो इस लक्ष्य की दृष्टि से शिक्षा-पद्धति मे आमूल परिवर्तन करने के लिये आन्दोलन करे, जो पैसा कमाने के उद्देश्य को गौण मानकर समाज सेवा के लिये अपने को शिक्षित करे, जो देश के युवको को स्वस्थ जीवन बिताने के लिये व्यायाम, खेल-कूद आदि मे सगठित रूप से भाग लेने की प्रेरणा दे।

किसी देश की शिक्षा-पद्धति वहाँ की समाज-व्यवस्था के अनुरूप होती है। इस समय देश मे आर्थिक सकट ही नही, राजनीतिक और सास्कृतिक सकट भी विद्यमान हैं। तब छात्र-जीवन इस सकट से मुक्त कैसे हो? केवल शिक्षा के स्तर पर छात्रो की समस्या हल नही की जा सकती। देश को समाजवादी लक्ष्य की ओर ले जाने के लिये जो भी उचित प्रयास होगा, उसके अन्त-

गंत ही छात्र-जीवन की समस्या हल होगी। किन्तु अभी इस ओर समाज के कर्णधारो का ध्यान कम गया है। छात्र और अध्यापक स्वय इस दिशा मे कदम उठायें, तो अच्छा है।

आंग्ल भाषा विभाग,
सेंट जोन्स कॉलेज,
आगरा (उत्तर प्रदेश)

'बुर्जुआ'[1] और 'ब्योरोक्रेटिक'[2] शिक्षा-प्रणाली के बीच बेचारा शिक्षक और शिक्षार्थी

जनार्दनराय नागर

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद हमने दो अहम् और आधार भूत समस्याओं की ओर ईमानदारी एव जीवट के साथ आवश्यक ध्यान नही दिया। हमने इन वर्षों मे जनता की शक्ति को सग्रहित कर रक्षा-व्यवस्था का आवश्यक विकास नहीं किया है, और देश की शिक्षा-व्यवस्था के बारे मे सकल्प तथा साहस के साथ विचार नही किया है। ब्रिटिश साम्राज्य के दिनो मे भी शिक्षा-व्यवस्था हम भारतीयो के हाथो में ही रही है, और आज भी ब्रिटिश साम्राज्य के विषाक्त सास्कृतिक साये मे पले हुए, रुढ एव जड भरत जैसे हम भारतीयों के हाथो मे ही शिक्षा का आयोजन, प्रवध तथा विकास हो रहा है। परीक्षाओं की लाद से दबी तथा पाठ्य-पुस्तकों के व्यर्थ के बोझ से लदी यह अवैज्ञानिक, व्यापारिक तथा अवसरवादी वर्तमान शिक्षा–प्रणाली वह जहरवाद बन गई है, जिससे देश की योग्यता तथा क्षमता की रीढ टूट चुकी है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की विषाक्त विरासत मे प्राप्त यह बाबुओ और क्लर्कों की शिक्षा–प्रणाली भारतीय आत्मा तथा स्वरुप को खो बैठी है और हम हाथ मल–मल कर पछता रहे हैं। आज हम एक अनुकरण, एक अनुवाद, एक सभ्रम और एक सर्वहारी लघुता-ग्रन्थि हो गये है। हमारा सनातन अजय आत्मविश्वास जैसे लुप्त हो गया है, हमारा अजय आत्म–गौरव जैसे सुप्त हो गया है।

शिक्षा–व्यवस्था के महत्वपूर्ण और ऊचे पदो पर आसीन, हमारे ये बुर्जुआ शिक्षाविद हौले–हौले सुधार की बातें करते है, और क्राति के एक बादल को देखते ही ये लोग अपने आराम देह कक्षो मे छिप जाते हैं। सारी जिम्मेदारी त्रस्त और सघर्ष कातर राजनीतिज्ञो पर डाल कर ये अवसरवादी शिक्षा सरमायेदार जनता के अज्ञान पर अपना रोष व्यक्त कर राष्ट्र के प्रति

---

१. रूढ़िवादी

२. नौकरशाही

अपना यह कर्त्तव्य अदा किया करते हैं। कई रिपोर्टें बनीं और वे सब दाखिल दफ्तर हुईं। इनकी मीटिंगों और बहसों का कोई भी निर्णायक अन्त नहीं आता। अब पहली बार शिक्षा-आयोग द्वारा भारत की समूची शिक्षा-नीति, दृष्टि और व्यवस्था पर समग्रता से विचार किया गया है। परन्तु वह भी शिक्षा-सम्बन्धी तात्कालिक आकाक्षाओं को पूरा करने मे असमर्थ है।

मैंने पिछले अर्से मे जहा भी अवसर मिला है कहा है कि तीन घण्टों की पर्चे-बाजी और पाठ्य-पुस्तको की बुकिंग-आफिस को, इस व्यर्थ, अयोग्य, असमीचीन और वाहियात शिक्षा-प्रणाली को खत्म कर दें, अन्यथा पढने वाले और पढाने वाले दोनो बगावत करेंगे। हमारे ये बुर्जुआ और ब्यूरोक्रेट हिलते ही नही, तब फिर परिणाम अराजकता ही होगा। मुझसे लोग पूछते हैं कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली को दूर कर दें तब क्या होगा ? गान्धारी आंखो से पट्टिया खोल दे तो क्या होगा ? देखने लग जायगी। हम कामना करें कि हमारी ये शिक्षा-गान्धारियाँ अपनी देखती आँखो से पट्टियाँ खोल दें। विद्यार्थियो को हम बदतमीज, शैतान और अनुशासनहीन भले ही कहदें, परन्तु सत्य तो यह है कि आज विद्यार्थियो को अपने भविष्य की कोई आशा ही नही रह गई। राष्ट्र के जीवन के अतीत, वर्तमान तथा भविष्य मे विद्यार्थी जैसे कट कर आह भरता हुआ पडा है, राष्ट्र के चौराहो पर।

रही हमारी बात सो हम शिक्षक भी आज गरीब है, परित्यक्त हैं, बेज़ार और बेगाने हैं। राज्य हमारे साथ सौतेला व्यवहार करता है तथा समाज हमारे प्रति उदासीन है तथापि फटेहाल और अपमानित तथा अस्वीकृत ही सही, हम भारत के शिक्षक हैं। राष्ट्र-कल्याण के कर्त्तव्य को अदा करने मे हम सबसे आगे रहेंगे। हमें शिक्षको को सबसे आगे रहना ही होगा। राष्ट्र-जीवन की इस महान् तीर्थ-यात्रा मे शिक्षक ही राष्ट्र की मानवता को असत्य से सत्य की ओर, अंधेरे से प्रकाश की ओर एव मृत्यु से अमृत की ओर ले जा सकेगा। हम भारत के विराट् और अपार आत्मा की अजय, प्रकाश एव ज्योति की गगा और यमुना है। मैं ऐसा मानकर चलता हूँ कि शिक्षक-बन्धु भारतीय आत्मा के इस अजय तथा चिरन्तन आत्म-विश्वास के साथ अपना उपयोगी, क्रांतिकारी तथा क्रान्तिदर्शी परामर्श करेंगे और समस्त देश को समर्थ और सुन्दर जीवन-सदेश देंगे।

राजस्थान विद्यापीठ
उदयपुर

अभारतीय शिक्षा और हमारा विद्यार्थी

•

हनुमान प्रसाद पोद्दार

आज छात्र-छात्राओ मे प्राय: निम्नलिखित दोष विचारो तथा क्रियाओ के द्वारा न्यूनाधिक रूप मे आये और आते हुए बताये जाते है —

(१) ईश्वर पर अविश्वास।

(२) कर्मफल, पुनर्जन्म, परलोक पर अविश्वास ।

(३) देवपूजन, श्राद्ध, तर्पण, धार्मिक क्रिया अनुष्ठान, नित्य नैमित्तिक शास्त्रीय कर्मों पर अविश्वास ।

(४) प्राचीन काल की सभ्यता तथा सस्कृति की उच्चता पर अविश्वास । अबसे पूर्व की सभ्यता निम्नश्रेणी की तथा अविकसित थी—ऐसी धारणा ।

(५) ससार उत्तरोत्तर सभी विषयों मे उन्नत हो रहा है, ऐसी धारणा ।

(६) चार हजार वर्ष से पूर्व का इतिहास नही है । वेद, दर्शन, उपनिषद्, स्मृतियां, पुराण, महाभारत, रामायण आदि सभी आधुनिक हैं—ऐसी धारणा ।

(७) आर्यजाति भारत मे मूलत नही रहती थी, बाहर से आयी है—ऐसी धारणा ।

(८) माता-पिता की भक्ति, सेवा तथा उनके आज्ञापालन मे अरुचि ।

(९) शास्त्र, वर्णाश्रम, समाज, कुल, शिक्षा-सस्था तथा अन्य सबधित सस्थाओ का अनुशासन मानने मे आपत्ति ।

(१०) आचार्य, अध्यापक, गुरु का अपमान तथा उनके साथ दुर्व्यवहार ।

(११) खान-पान मे असयम—तामसी (मद्य, मास, अपवित्र, जूठन आदि) ।

(१२) यौन-सम्बन्ध मे स्वेच्छाचारिता।

(१३) सिनेमा आदि असंयम बढाने वाले खेलो के देखने मे, उनमे क्रियात्मक भाग लेने तथा अशुभ सदाचारनाशक साहित्य लेखन, वाचन तथा प्रचार मे उत्साह और प्रवृत्ति।

(१४) विलासिताकी सामग्रियों का अबाध और अमर्यादित सेवन तथा अत्यन्त खर्चीला जीवन।

(१५) हिंसात्मक तथा मिथ्यापूर्ण कार्यों मे उत्साह तथा प्रवृत्ति।

(१६) प्राचीन मात्र के विरोध तथा नवीन मात्र के ग्रहण में विचार-शून्य प्रवृत्ति।

(१७) प्राचीन सास्कृतिक कार्यों, व्यवहारो तथा सद चार मे अरुचि तथा उनका विरोध।

(१८) वैदिक, महाभारत तथा रामायण के गौरवपूर्ण इतिहास तथा महापुरुषो मे अपरिचय।

बालक तो निर्दोष होते है। यद्यपि पूर्व-सस्कारानुसार उनमे रुचिभेद तथा स्वभावभेद अवश्य होता है, फिर भी वे बनते हैं उनके बीच के और आस-पास के वातावरण के अनुसार ही। इसलिये इसका दायित्व बालको के अभिभावको पर है और इसके लिये प्रधानदायी तो हैं समाज तथा राष्ट्र के वे अगुवा पुरुष, जिनके हाथों में विधि-निर्माण की सत्ता है तथा जिनके आदर्श तथा आदेश पर लोग चलते हैं। बालक तो अनुकरणपरायण होता है। उसके सामने जैसी चीज आती है, वह उसी की नकल करता है। अवाछनीय शिक्षा देने वाले विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, विद्यालय किसने बनाये? उनका सचालन कौन करते हैं? पाठ्यक्रम का निर्माण किसने किया? ईश्वर का खण्डन, शास्त्र का विरोध, पुनर्जन्म और परलोक पर अविश्वास पैदा करने वाले साहित्य का प्रणयन किसने किया? प्राचीन शास्त्रो को आधुनिक किसने बतलाया? माता-पिता तथा गुरु की आज्ञा न मान कर अनुशासन भग करने की शिक्षा किसने दी? आहार-विहार मे उच्छृ खलता, यौन-सम्बन्ध में स्वेच्छा-चारिता और हिंसात्मक कार्यों मे प्रवृत्ति का आदर्श किसने उपस्थित किया? किसने गन्दे चल-चित्रो को चलाने की अनुमति दी? चोरबाजारी, घूसखोरी, मिथ्यापूर्ण कार्यों में उत्साहपूर्ण प्रवृत्ति किसने की? और सह-शिक्षा की बुरी चाल किसने चलायी? ऐसी ही अन्यान्य बातें हैं। परिस्थितिवश विदेशी शिक्षा

तथा संस्कृति के प्रभाव में आकर, जोश मे होश को खोकर, इन्द्रियो के वेग को रोकने मे असमर्थ होकर या अन्य किसी भी कारण से हो, इन सब प्रवृत्तियो के प्रेरक, प्रवर्तक, पोषक, प्रचारक प्राय बड़े लोग ही हैं। यह सत्य है और इसे सभी को समझना चाहिये। बालको को तो जैसे साचे मे आप ढालेंगे, उसी मे वह ढलेगा। अतएव विद्यालयो, महाविद्यालयो और विश्वविद्यालयो के छात्र-छात्राओ को दोष देना व्यर्थ तथा अनुचित है। उनको सुधारना है, तो पहले अपने को सुधारना होगा। आजकल शिक्षा-प्रणाली तथा शिक्षा-संस्थाओ के दोष प्रायः सभी बतलाते है, पर उनमें सुधार का कार्य नही के बराबर ही हो रहा है। इस ओर देश के सभी मनीषियो को विशेष ध्यान देकर इस विषय पर विचार करना चाहिये। ●

कल्याण प्रेस,
गोरखपुर (उ० प्र०).

अनुशासन की बात

•

डॉ० लक्ष्मीलाल के० ओड

अनुशासन भग विद्यालयों मे ही क्यों, समाज के प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई दे रहा है। कार्यालयो मे जाइये तो वहां विना उत्कोच दिए कागज आगे नहीं बढता, कारखानो में जाइये तो काम बन्द करके मजदूर लोग धरना दिये हुए हैं। विधान-सभाओ दल-बदल सामान्य बात हो गई है। इधर कही दुष्काल पडा और उधर व्यापारियो ने खाद्य-वस्तुओ का कालाबाजार आरंभ कर दिया। इधर किसी के घर मे आग लग गई तो दूसरे उसका सामान उडा ले गये। हर व्यक्ति स्वच्छन्दता पूर्वक जो करना चाहे, वह करने के लिये स्वतन्त्र हो गया है। शायद हम लोग स्वतन्त्रता की पहली सीढी पर हैं, जहां जीवन के भौतिक अभावों से मुक्त होने मे ही आत्मा की स्वतन्त्रता निहित हो गई है।

आत्मा की स्वतन्त्रता के बारे मे बड़ी-बडी बातें करने वाले देश के लोगों का यह व्यवहार कुछ विचित्र लग सकता है, परन्तु इसके पीछे अनेक ऐतिहासिक एव आर्थिक कारण हैं। जो देश १३ सदियो तक बन्धनो मे रहा हो, जिसका जीवन सदा अभावों से युक्त रहा हो, उस देश के लिए ऐसा व्यवहार कुछ अनहोना व्यवहार नहीं है। उस समय तो हमने भौतिक सुखों को बन्धन मानकर आत्मिक सुखों में एक मानसिक तृप्ति की अनुभूति करली, क्योंकि इसके अलावा कोई चारा नहीं था, परन्तु यह हमारा बाह्य आवरण मात्र था। वस्तुत. यह भूखे की दकादशी थी, और जैसे ही हमे भौतिक जीवन के सुख उपलब्ध हुए, हमारे संयम का बांध टूट गया। हम उद्दाम वेग के साथ भौतिक स्वतन्त्रता की तरफ बह चले, किनारे के वृक्षों को, तट को और जो भी मिला उसे नष्ट करते हुए।

आज का विद्यार्थी अनुशासन को भग क्यों करता है? दो संभावित कारण मुझे दिखाई देते हैं। प्रथम तो, वह येनकेनप्रकारेण उस परीक्षा को पास करना चाहता है, जो भौतिक सुखों के लिये मार्ग प्रशस्त कर देती

है और उसके इस प्रयास मे जो भी बाधाए उसके सामने आती हैं, वह उनका विरोध करता है। दूसरा कारण है, विद्यालयो मे उस पर लादा गया वह सयम, जो उसकी भौतिक स्वतन्त्रता का अपहरण करता है। वह स्वतन्त्र होना चाहता है, उसी प्रकार जैसे उसके शिक्षक हैं, जैसे उसके माता-पिता हैं, जैसे उसके राजनीतिक नेता हैं, और जैसे समाज के कोई अन्य अग हैं। उसकी स्वतन्त्रता मे जो भी नियम या विधान बाधा डालता है, वह उसका विरोध करता है। इससे निष्कर्ष यह निकला कि वह जीवन की भौतिक बाधाओ मे मुक्त होना चाहता है। उपनिषदों मे इसे अन्नमय कोष कहा गया है। आज मुक्ति का धरातल ठोस भौतिक है। जब तक हमारी शिक्षा छात्रो को भौतिक आवश्यकताओ की दुश्चिन्ता और अभावो से मुक्त नही करती, तब तक सभी प्रकार की मुक्ति की बात थोथी है, अभी तो हम अन्नमय कोष की सीढी पर ही हैं, स्वास्थ्य, ज्ञान, विज्ञान और आत्मिक आनन्द आगे की बातें हैं। पहले भौतिक आवश्यकताओ से मुक्ति मिले, तब स्वास्थ्य की चिन्ता की जा सकती है, तब इन्द्रियों का निग्रह कोई माने रखता है, तब मन सुस्थिर हो सकता है, तब सही अर्थों मे ज्ञान–विज्ञान की उपासना हो सकती है और इन सबसे ऊपर उठने के बाद ही आत्मिक स्वतन्त्रता मिल सकती है। हमारी शिक्षा-प्रणाली मे जब तक इस बात की प्रतीति नही हो जाती, तब तक हम ऊँची-ऊँची बातें करते रहेंगे, मौखिक रूप से सयम का उपदेश देते रहेंगे, और जब अनुशासनहीनता दिखाई देगी तो अपनी उपदेशों की विफलता पर कुठित होंगे और इसी प्रकार अनुशासन पर विचार-विमर्श चलता रहेगा, अनुशासन पर समितियाँ बनती रहेगी, और समस्या ज्यों की त्यों बनी रहेगी।

अनुशासन का सबसे पहला हल शिक्षा को उत्पादनोन्मुखी बनाना है। गाधीजी ने भी यही कहा था। आज भी हम यदि इस ओर आँख मूद कर अनुत्पादक नागरिक तैयार करते रहे तो वह दिन दूर नही जब कि समाज मे विस्फोट हो जायेगा और क्राति द्वारा वही चीज आयेगी, जिसे हम विकास की प्रक्रिया द्वारा लाने में असमर्थ हो रहे हैं।

आज की अनुत्पादक शिक्षा अनुशासन की समस्या हल करने मे सर्वथा असमर्थ है।

विद्या भवन, उदयपुर।

"छात्रों को दोषी न ठहराया जाय"

माणिक्यलाल वर्मा

युवको मे आन्दोलन, क्रान्ति और परिवर्तन की भावना स्वाभाविक ही है। इधर छात्र-आन्दोलन के प्रश्न को लेकर छात्रो को दोषी ठहराया जा रहा है, परन्तु वस्तुतः वे दोषी नही है। यदि कोई दोषी है, तो वह है इस देश का शिक्षक, अभिभावक, नेता तथा शिक्षा-प्रणाली। युवको का तो स्वभाव ही बड़ो के मार्ग का अनुगमन करना होता है। जब शिक्षक लोग छात्रो के सामने बिना किसी झिझक के सिगरेट पीने तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य करने मे सकोच नही करते तो छात्र भी सबके सामने ऐसे कार्य करने मे पीछे क्यों रहेगे। आज विद्यार्थियो को कोई सही नेतृत्व ही नही दे पा रहा है। हडताली छात्रो के समक्ष जाने का साहस आज नेताओ मे नही है। वे उनसे डरते हैं। युवको के पास भी आज जीवन मे कोई लक्ष्य नही रह गया। राजस्थानी में कहावत है—"नवरी नाते जाय" यानी बेकार और निठल्ली स्त्री ही पुनर्विवाह करती है। कहने का तात्पर्य है कि जिसके पास कोई कार्य करने को नहीं होता, वही इधर-उधर की बातें करने की सोचता है। युवको को आप काम दीजिये और फिर देखिये कि वे चन्द मिनटो मे कैसा करिश्मा कर दिखाते हैं।

छात्रो को राजनीति से अलग रहने की बात प्राय कही जाती है, परन्तु मेरी समझ मे नही आता कि वे राजनीति से क्योकर अलग रहें? सन् १९२१ में गाधीजी के आह्वान पर ही तो विद्यार्थी राजनीति के मैदान मे उतरे थे, तो आज क्या कोई नवीन बात हो गई है, इस राजनीति में।

छात्रो की समस्याओ को समझ कर उनके सही निराकरण करने पर ही छात्र-असन्तोष को समाप्त किया जा सकता है।

हाँ, एक बात अन्त मे और कह दूँ—शिक्षको का आर्थिक-स्तर एव सामाजिक सम्मान भी बढाया जाना अत्यावश्यक है।

भूपाल पुरा, उदयपुर,
(राजस्थान)

सैलाब का दोष

बाल गोविन्द तिवारी

आकाश मे बादल छाये। बूंदा बादी आरम्भ हुई। बारिश तेज हुई। पहले पानी धरती मे समा गया। फिर बह चला, कुछ इधर। कुछ उधर।

धरती के तल पर कुछ पहले के पानी बहने की लकीरें बनी हुई थीं। अधिकांश उधर बहा। यह नालिया जैसी बन गई। कुछ नालिया इस पानी को तालाबो में ले गईं, कुछ खेतों मे, कुछ मकानो की नीवो मे। कहीं कहीं नई नालिया भी बनी और धीरे धीरे यह गहरी भी होती गई। कोई कोई नाली तेज़ी से भी गहरी हुई। जितनी तेजी से पानी आया और जितना अधिक ढाल हुआ उतनी ही तेजी से नालिया गहरी हुई, और जितनी ही गहरी नाली हुई उतना ही अधिक पानी आया। इस प्रकार गहराई एक ओर, और ढाल और पानी की मात्रा दूसरे ओर, एक दूसरे को बढाने वाले कारण बने।

कुछ नालियों से लाभ हुआ जैसे तालाबो मे पानी ले जाने वाली नालियो से।

कुछ से थोडे समय तक लाभ हुआ: जैसे खेतो मे पानी ले जाने वाली नालियो से। फिर अधिक पानी खेतो को काटने लगा और इसके उपजाऊ तत्त्वों को बहाकर ले जाने लगा।

कुछ से हानि ही हुई : जैसे सडक को काटने वाली या मकानो की नीवों को खोदने वाली नालियों से।

कुछ से न लाभ हुआ न हानि . जैसे उन नालियों से जो अधिक पानी को वहाकर नदी मे डालती रही।

इस सब व्यापार मे, गुण दोष किसका ?

पानी का ? नहीं।

धरती का ? नही।

ढाल का ? नही।

उसका, जिसका यह कर्त्तव्य है कि नालियो और पानी के बहाव की देखभाल करे। हम वर्षा को नही रोक सकते, हम धरती के तल पर बहुत प्रभाव नही डाल सकते। हम यह अवश्य कर सकते हैं कि नालियो की दिशा मे, ढाल मे, चौडाई मे कुछ परिवर्तन करके ऐसा प्रबन्ध करें कि जितना पानी जिस वेग से जहा आवश्यक है, बहने दें और शेष को, जिसकी मात्रा अपेक्षतः बहुत बहुत अधिक है, नदियो मे बह जाने दें और आगे चलकर इन नदियों के जल का भी उपयोग करें जिससे नहरें निकाली जायें और नावो द्वारा आवागमन हो सके।

जब पानी तेजी से बहता है तो हम कहते हैं कि "क्षोभ" है। क्षोभ कुछ स्पष्ट बातों का द्योतक है —

पानी की मात्रा की अधिकता,

ढाल के कारण बहाव मे तेजी,

रास्ते मे रुकावट।

पानी प्रकृति के नियमो से बहता है। पानी का, बहाव का, क्षोभ का, दोष नही है। दोष है इजीनियरों का यदि वे इस पानी, इस बहाव का उचित उपयोग, प्रकृति के नियमो के अनुसार न करें और पुरानी बनाई हुई सडक मे वह परिवर्तन न करें जो, इस अर्से मे धरती के तत्त्वों पर हुए परिवर्तनों के कारण ढाल बदलने के फलस्वरूप, आवश्यक हो गये हैं। यदि अब तक उनका ध्यान नही हुआ तो पानी के क्षोभ से उनको अब सचेत होना चाहिये और पुरानी सडक मे नये मोड, नये ढाल, नये पुश्ते बनाने चाहियें।

समाज की बिखरी हुई शक्ति बादल हैं। इस शक्ति का गतिशील (Kinetic) स्वरूप में आना सामाजिक हलचलों के रूप मे वर्षा है। इन हलचलो मे पिछले समय के बनाये हुए पुश्ते (रीति, रिवाज, परम्पराएँ) कभी इस हलचल को उपयोगी दिशा मे, कभी हानिकारक दिशा मे मोड देने वाले कारण हैं। इन रुकावटों मे गतिशील शक्ति का संघर्ष सामाजिक क्षोभ है।

यह क्षोभ समाज के प्रत्येक अग मे होता है, किन्तु असगठित रूप से, क्योंकि एक-एक व्यक्ति की शक्ति का प्रभाव बहुत हल्का जान पडता है। जब

यह क्षोभ समाज के किसी जन–समूह मे हो तो इसका प्रभाव अधिक होता है और सबका ध्यान इस ओर जाता है। जितना ही यह जनसमूह बडा और संगठित होता है उतना ही उसका प्रभाव होता है, जैसे किसी बडे तालाब का बाँध टूटने पर।

विद्यालयों और महाविद्यालयों के छात्रो के समूह बडे बडे तालाब हैं। इनके बहाव को सोद्देश्य दिशा मे मोड मिले तो यह जनशक्ति के ऐसे समूह हैं जिनसे बहुत लाभ हो सकता है, बडे बडे खेत सींचे जा सकते हैं, बडी बडी नौकाएँ चलाई जा सकती हैं; अन्यथा बाध मे जरा सी भी सेंध बनते ही बडे बडे पुश्ते टूट जायेंगे, खेत बह जायेंगे, बस्तियाँ उजड जायेंगी।

समाज के इजीनियर समाज की वे शक्तिया है जो कायदे, कानून, परम्परा, रीति, रिवाज आदि को बनाती है। किसी समय यह काम दो प्रकार के लोग करते थे —

(क) वे जो उन नियमो को बनाते थे जिनका पालन कराते थे जिनकी अवहेलना होने पर दड दिया जाता था। यह काम राज्य का होता था।

(ख) वे जो उन नियमो को बनाते थे जिनका पालन करना सभ्य समाज के नागरिक होने का चिह्न होता था। इन नियमों को तोडने पर 'दड' तो नही मिलता था किन्तु दड जैसी बात, भले आदमियो की अप्रसन्नता जैसी होती थी। इससे अधिक महत्त्व इसका था कि इनको पालन करने वालों को आदर, प्रसन्नता आदि मिलते थे और यह बातें व्यक्ति के व्यक्तित्व बनाने वाली होती थी और इनको "धर्म" कहा जाता था।

आज "कल्याणकारी राज्य" के सिद्धान्त के अनुसार यह सब काम "राज्य" ने अपने हाथ मे ले लिया है, कम से कम सिद्धान्त मे तो ले ही लिया है। कानूनों का बाहुल्य हो चला है। परम्परा को तोडना प्रगति का लक्षण समझा जा रहा है। शालाओं मे भारतीय "कुरीतियो" के पढाने पर बल दिया जा रहा है, "सुरीतियो" का नाम भी नही लिया जाता है। "धर्म" का मनगढन्त अर्थ लगा कर उसके प्रति अश्रद्धा ही नही, घृणा का पोषण किया जाता है, ऐसी अवस्था में मात्र (क) मे ऊपर वर्णित शक्ति ही एक शक्ति रह गई है, (ख) का अस्तित्त्व मृत–प्राय: रह गया है।

अत आज "राज्य" का, केवल राज्य का "कर्त्तव्य" है (अन्य व्यक्तियों, सन्स्थाओं, समाज–कर्णों का केवल धर्म है) कि समाज की शक्ति को जीवन-मूल्यों के बनाने की ओर अग्रसर करे और जब तक रचनात्मक रूप से नये मूल्यों को न बना सके, जो हैं उनका ध्वस न करे। छात्रों में मूलतः दोष नहीं हैं। उनको दिशा स्पष्टता से दिखाने की आवश्यकता है।

लोकमान्य तिलक राष्ट्रीय शिक्षक प्रशिक्षण
महा विद्यालय, डबोक (उदयपुर).

राष्ट्रीय व्यक्तित्व की क्षुब्ध कुतरन

डॉ० इन्दु दवे

जीवन के चौराहे के मध्य मे अटके, उपयुक्त राह के चुनाव मे अनिश्चित, वर्तमान के अविश्वास और भविष्य की आशका को एक ही प्रश्न—चिह्न मे समेटे—आज का भारत, एक अत्यन्त द्रुत सक्रमण काल से गुजर रहा है। सक्रमण की यह अवधि मूलत अस्थिरता की द्योतक है। विरोधाभासी मान्यताओ की टकराहट से डगमगाती हुई धरती है यह—जबकि न तो बीतते मूल्यो मे पूरी आस्था है और न आते हुए मे पूर्ण विश्वास।

आज के नवयुवक को, जो कि कल के राष्ट्र का निर्माता है, इस अस्थिर स्थिति में जीते हुये, एक दूसरी भयकर विडम्बना का सामना करना पड रहा है और वह है—हमारे समाज के मूल को निर्दयतापूर्वक कुतरता हुआ "द्वैत व्यक्तित्व" का भयानक रोग ! आज का नवनेता और भविष्य की आशा—नवयुवक शिक्षार्थी विस्मयपूर्वक देखता है कि उसके वयस्को के विश्वासो मे पर्याप्त बल नही, पथ-प्रदर्शकों के विचारो एव व्यवहारों मे तारतम्य नही, और मानो राष्ट्र के समूचे व्यक्तित्व मे सगठन नही।

ऐसी परिस्थिति मे, यदि वह दिशा की अनिश्चितता, मूल्यो की अविश्वसनीयता एव व्यवहार-कसौटी की अवैधता से विक्षुब्ध हो उठे, तो क्या आश्चर्य ?

मै तो विद्यार्थी विक्षोभ को रोगी राष्ट्र का एक रोग लक्षण (Symptom) मानती हूँ।

विद्या भवन शिक्षक महा विद्यालय,
उदयपुर (राजस्थान).

आधुनिक छात्र—एक विवेचन

•

नाथू लाल शर्मा

एक ही आवाज, एक ही रट, एक ही गूंज चारों ओर ! सुरसा के मुख के समान राष्ट्र जीवन को निगलने वाली आज की छात्र-समस्या और उससे पराङ्मुख होकर पलायन करने वाली, मेरी सामर्थ्यहीन समाज व्यवस्था ! शिक्षक, शिक्षाशास्त्री और सरकार—सभी के द्वार खटखटाने वाले उपेक्षित छात्र की आहत सर्प के समान फुंफकार ! एक आक्रोश, एक बौखलाहट, उमडती, उफनती पागल जवानी की चुनौती भरी ललकार ! एक विस्फोटक, सर्वनाशी, आत्मघाती भू कँपाने वाली हुँकार ! फोडे की मवाद पर टूट पडने वाली मक्खियों के अम्बार के समान विघटनकारी, विदेशी, विजातीय, अराष्ट्रीय एव अभारतीय शक्तियों का खुलकर नगा नाच !

यहा छात्र को केन्द्र बिन्दु मानकर चारों ओर दृष्टिपात मात्र ही मेरा मन्तव्य है। मेरे छात्र की कुण्ठा के दो चित्र, दो रूप ही यहा निवेदन कर रहा हूँ।

कॉलेज जीवन के बाद

प्रति वर्ष विश्वविद्यालयों मे उपाधि-वितरण का जलसा बडी धूमधाम से मनाया जाता है। किसी श्रेष्ठ प्रतिभाशाली विद्वान, मान्य राज्यनेता या प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री द्वारा दीक्षात भाषण कराया जाता है। यह औपचारिक वातावरण, एक सुन्दर व आकर्षक मेले का रूप धारण कर लेता है। अच्छी खासी रगीन चहल पहल रहती है। इस रगीनी लोक मे स्नातक, थोडी देर के लिए निराशा मे आशा की झलक मात्र पा लेता है। युवकों के मुरझाये चेहरों पर, उपाधि-पत्र प्राप्त करते हुए हल्की सी हुलस की तरग दिखाई देती है, जो क्षण भर बाद ही चिंतापूर्ण चिंतना मे बदल जाती है। चिंतापूर्ण चिंतना का कारण भविष्य के प्रति अस्पष्टता और अधकार की भयकर कल्पना है। दिल मे धडकन, चेहरे पर शिकन, मुख मडल मलिन और अब तो एक ही

चिंतन है कि समाज मे सत्ता व अस्तित्व की प्रतिष्ठा कहाँ और कैसे की जाय ?

जीवन भार रूप मालूम होता है। समाज के कर्म क्षेत्र मे कूदना चाहता है। तैराक न होने पर यदि कोई समुद्र मे कूदे तो प्राणो का भय रहता है। जिसकी कर्म मे रुचि है, श्रम में निष्ठा है, जो कर्त्तव्य-परायण है वही सच्चा कर्मवीर या कर्मचारी कहा जा सकता है और उसके लिए जीवन भार नही भार स्वरूप है। परन्तु आज का युवक कर्मचारी नही, राज्य कर्मचारी बनना चाहता है। कर्म या श्रम से पसीना और पसीने से मोती की चमक के दर्शन होते हैं। समवत राज्य कर्मचारी बनना, वह लोक है जहा पसीने की एक बूद भी नही बहानी पडती। जहाँ निकम्मापन भी बेधडक खटके के साथ चल सकता है। वह बाबू बनना चाहता है, बी० ए० पास करके भी। राज्य-कर्मचारी-जगत उसके लिए एक स्वर्गतुल्य दिव्य-लोक है। जहाँ ईमानदारी सिसकती है, भ्रष्टाचार मूँछें मरोडता है, बेईमानी फलती फूलती है, रिश्वत-खोरी नंगी होकर नाचती है। उसकी मधुर कल्पना मे नौकरी या चाकरी मुफ्तखोरी जैसी ही कोई सुन्दर वस्तु है।

'कृषि कार्य ?' छि ! पैण्ट की क्रीज़ का नाश, धूलि धूसरित गात, मेहनत दिन रात और उस पर भी ग्रामीण जीवन ! ना ना....'मैं तो क्लर्क बनूँगा, चाहे अस्सी रुपये ही मिल जाँये।' यह सोचकर कभी समाज पर क्रोध करता है, कभी सरकार पर आक्रोश करता है, कभी अपनी स्थिति का सोच करता है और इस प्रकार वह युवक प्रमाण-पत्र की पिस्तौल लेकर नौकरी की शिकार में निकलता है। थर्ड डिविजन की बुलट उसके पास है। नौकरी का हिरण अब चौकडियाँ भरता हुआ मन्त्रियों के बगलों या सचिवालयो की दीवारो मे शरण के लिए जा पहुँचा है। जहाँ सिफारिश की किसी बडी भारी तोप की गडगडाहट मात्र ही सुनाई दे सकती है।

कॉलेज जीवन के अंदर

यह एक घोर निराशामय चित्र है, जिसका आभास कॉलेज प्रवेश के समय ही आज के छात्र को हो जाता है, पर फिर भी वह विवश होकर बेमन से प्रवेश ले ही लेता हैं। 'भावी है भगवान भरोसे' उसका जीवन 'डनलप टायर' की तरह लुढकता, सरकता, रेंगता हुआ बढता जाता है। जहाँ भविष्य उज्ज्वल और मगलमय होता है, वहाँ जीवन मे स्थिरता और नियमितता रहती है और जहा भविष्य ही अंधकारमय हो, वहाँ छात्र, जीवन के प्रति बेप-रवाह या लापरवाह हो जाता है। बेपरवाही या लापरवाही से दुर्घटनाएँ होती

हैं। जब उसे अपना ही नाश दिखाई देता है तो वह सर्वनाश करने पर उतारू हो जाता है। आज के छात्र का रौद्र रूप हमने देखा है। वह प्रलयकर शिव-शकर के समान ताण्डव नृत्य करता है, निशिचरराज रावण से भी आगे बढता है, हिंसा और महार, अग्नि दाह और लूटमार, चारो ओर हाहाकार और त्राहिमाम् मच जाता है। बडी-बडी बिल्डिगें धराशायी हो जाती हैं, बगले और कारें फुकती हैं, सरकार थर्राती है, लगता है फ्रास की राज्यक्राति की पुनरावृत्ति होने वाली है। ऐसी स्थिति में सरकार का 'गेम' रहता है—पहिले वह डराती है, सगीनो से मुकाबला करती है, अश्रु गैस चलाती है, छात्रो को गोलियो से भूनती है और फिर अपील करती है, आश्वासन देती है, डरने लगती है और फिर इसके बाद सरकार एकदम झुकती है, मागें मजूर होती हैं। छात्र ऐसा अनुभव करता है जैसे विजय-पताका उसी के हाथ लगी। इस दम और आवेश के पैट्रोल के साथ वह पुनः कॉलेज में आता है, अध्ययन की गाडी आगे चलती है। यही ऊटपटाग, ऊलजलूल क्रम आज के छात्र का चलता रहता है।

समाज मे सभी उससे बिदकते हैं, कटे फटे से दूर दूर रहते हैं, माता पिता उसे सिर पर बला समझते हैं, अध्यापक ज्ञान-दान मात्र अपना कर्त्तव्य समझते हैं, दानपात्र की उन्हे चिंता नही। शिक्षाशास्त्री छात्र को प्रयोग का साधन मानकर नाना प्रकार के प्रयोग करते हैं। राजनेताओ के दिमाग मे एक से एक निराली, सुन्दर-सुन्दर योजनाएँ हैं, इन छात्रो के मगलमय भविष्य के बारे मे। और वे निश्चित रूप से इनका भविष्य उज्ज्वल बना कर ही चैन लेंगे, बशर्ते कि छात्र उन्हें सहयोग दें, उनकी सभाओ मे उपस्थित हो, उनके भाषण सुने, आवश्यकता पडने पर हुल्लड बाजी, मारपीट या पत्थर बाजी से विरोधी दल की सभाओ को उखाड फेंके, चुनाव जितवाने मे सहयोग दें। जितने देश मे नेता उतनी ही शिक्षा की भिन्न भिन्न योजनायें! छात्र जायें भट्टी मे, शिक्षा जाये भाड मे, अध्यापक जायें चूल्हे में, पर हर नेता की योजना बडे मूल्यवान विचारों से परिपूर्ण है। पर क्या करें बेचारे ये नेता और सरकार—यह समाज ही सहयोग नही देता, सहकार नही करता, नही तो एक एक नेता शिक्षा मे आमूलचूल परिवर्तन करना चाहता है शिक्षा या भाषा आदि के सम्बन्ध मे इनमे आपसी मतभेद भी तो कम नही, एक दूसरे मे बिलकुल पूर्व-पश्चिम या आकाश-पाताल का फर्क है। साथ ही ये लोग इन शिक्षा शास्त्रियो की अडगेबाजियो से भी परेशान हैं, क्योकि हमारे नेतागण बडे प्रगतिशील, समन्वयवादी, अवसरवादी और नमनशील हैं। प्रात काल उत्तर भारत मे धडाके से कहते हैं 'राष्ट्रभाषा

हिन्दी ही है और रहेगी।' सायकाल उसी दिन दक्षिणी भारत मे कहते हैं 'अग्रेजी चलती रहेगी।' रोगी एक है इलाज करने वाले अनेक ! डॉक्टर, वैद्य, हकीम अपनी अपनी एलोपैथी, होम्योपैथी, आयुर्वेदिक, प्राकृतिक, यूनानी आदि अचूक रामबाण औषधियो का सुझाव देकर स्वस्थ करने का दावा करते हैं और जिसे अवसर मिलता है वही अपनी औषध दे डालता है। मर्ज बढ रहा है, रोगी परेशान है। उसके दिल और दिमाग मे इन चिकित्सको के प्रति घोर रोष, चिढ, कुढन पैदा हो गई है। ऐसी स्थिति मे कभी-कभी चिकित्सक भी अपनी जान बचाकर बेतहाशा भाग छूटते हैं। न मालूम रोगी पागल हो गया है, पर किसी की हिम्मत नही कि उसे पागलखाने मे दिखने जाय और उसे पागल तक कह दे।

यही मानसिक रोग आज मेरे देश के छात्र को है, पर यह सक्रामक रोग ऊपर से नीचे की ओर आया है। छात्र वही कार्य कर रहा है जो राज-नेता, शिक्षा शास्त्री और अध्यापक कर चुके है या कर रहे हैं। सस्कृत मे एक सुभाषित है, जिसका भाव है एक तो बन्दर स्वभाव से ही चचल और उसे पिला दी जाय शराब, साथ ही उसे बिच्छू डक मार दे, तो वह बन्दर जो जो भी उपद्रव करे वह कम है।

ऐसा लगता है जैसे कुँए मे भाँग गिर गई है और सभी मदहोश हो रहे हैं। इस समय सबसे अधिक दयनीय स्थिति उसकी है जिसे हम माता-पिता या सरक्षक वर्ग कह सकते हैं। अपनी गाढी खून-पसीने की कमाई से, आशा-भरी दृष्टि से, टेरिलिन के नये नये सूट बनाकर, दूल्हा बनाकर जिस लाडले, नयनो के तारे, कलेजे के टुकडे को कॉलेज मे भेजते हैं, वह आनन फानन देखते देखते बदल कर माता पिता का बदला ब्याज से चुकाने आता है। फूल पत्थर बनकर आता है, इसान हैवान या शैतान बनकर आता है, सीधा-सीधा बालक बबाल बनकर आता है। आँधी और तूफान के समान समस्त मान्यताओ, आस्थाओ, विश्वासो और पवित्र परम्पराओ को छिन्न विच्छिन्न करने के लिए एक बवडर के रूप मे आता है। छाती माथा ठोकते हैं वृद्ध, अध अशक्त और असहाय माता पिता। अब लाड प्यार दिल से नही भय से करते हैं, क्योकि कही वैज्ञानिक ढग से माता पिता का पूजन कर डाले तो कोई आश्चय नही।

वे कौन कौन सी परिस्थितियाँ या अवाछित तत्व हैं जिनके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव से आज का छात्र बहक जाता है, सनक जाता है और 'नट मर्कट इव' पराये इगित पर नाच उठता है ? परवाह नहीं करता अपने मान्य

और भविष्य की। स्वय अपने पैरो पर कुठाराघात करता है। विषय के इस पहलू पर विचार हेतु थोडा विस्तार अपेक्षित है, जो इस लघु आकार के लेख मे सम्भव नही, फिर कभी निवेदन कर सकूँगा।

छात्रो की इस दशा पर दया आती है, थोडा क्रोध भी आना असम्भव नही। फिर भी निराश होने का कोई कारण नही। देश की यह युवा शक्ति अपार शक्ति का भण्डार है। इसका सही मार्ग-दर्शन और सदुपयोग आवश्यक है। भारत-पाक सघर्ष में, छात्रो ने जो सराहनीय भूमिका अदा की, वह चिरस्मरणीय रहेगी। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा का स्वरूप पूर्णतया भारतीय वातावरण के परिवेश मे हो, राष्ट्र-प्रेम की भावना से ओतप्रोत हो। इसे राजनीति-निरपेक्ष, शिक्षा-शास्त्रियो के चिन्तन का विषय रखा जाय। शिक्षा के स्वरुप व पाठ्यक्रम मे अनुचित परिवर्तन की माँग करने वाले समाज विरोधी तत्व एवम् उनके हाथ मे खेलने वाले छात्रवर्ग के आन्दोलन को कठोरता से दबा दिया जाये। जनतन्त्र के नाम पर शिक्षा के क्षेत्र मे घुटने टेक नीति बरतना, कानून की अवहेलना करने वालो के सामने झुकना—कायरता है, पाप है एव अमिट कलक है। यह एक अक्षम्य समाज—द्रोह का अपराध है।

हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय,
दौसा

छात्र आन्दोलन क्यों ?

•

रामस्वरूप गुप्त

विद्यार्थी आन्दोलन आधुनिक युग की एक ज्वलन्त समस्या है। इस समस्या ने राष्ट्र ही नहीं, अपितु समस्त विश्व के मानस को बुरी तरह झकझोर दिया है। आधुनिक युग के विचारक, चिंतक एवं शिक्षाशास्त्री इसके भिन्न २ कारण बताते हुए, निराकरण पर भी प्रकाश डालते है, किन्तु यह एक ऐसा रोग है कि, ज्यों २ इसकी चिकित्सा की जा रही है, निरन्तर इसमे वृद्धि हो रही है। इसका एक मात्र कारण यह है कि, हम बीमारी के मूल मे नही पहुँच पा रहे हैं।

अभी कुछ दिन पूर्व हुई, कलकत्ता, बनारस एव इलाहाबाद के छात्र आन्दोलन की दुर्घटनाएँ सुनकर हृदय कांपने लगता है, और यह मानने को विवश होना पडता है कि, यदि छात्र इसी मार्ग का अनुसरण करते रहे तो हमारे ही हाथो हमारा सर्वनाश निश्चित है।

शिक्षक होने के कारण मै इस समस्या की गहराइयो मे गया हूँ, और अब मैं मान्यता के साथ कह सकता हूँ कि, इसके निम्न कारण हैं।

(१) छात्र आन्दोलन के प्रमुख कारणो मे एक मैं आज की पाठ्यक्रम-निर्धारण पद्धति को मानता हूँ। यह सर्वथा ढिलमिल एव असन्तुलित है। इसमे छात्र के लिए पाठ्यक्रम नही अपितु पाठ्यक्रम के लिए छात्र होता है।

(२) कॉलेज एव विद्यालयो मे पहुँचने के बाद छात्र अपने अधिकारो के प्रति जागरूक होता है, तथा वह समाज से वाजिब अधिकारों की प्राप्ति के लिए आशा करता है।

सम्बन्धित अधिकारी स्वार्थ के वशीभूत होकर अथवा हठधर्मी से उसके अधिकारो के प्रति उपेक्षा बरतते हैं, और इसीके परिणाम स्वरूप छात्र आन्दोलन हिंसात्मक रूप ले लेता है।

(३) आज के शिक्षको मे अधिकाश शिक्षक आर्थिक एव मानसिक रूप से अशान्त हैं।

अधिकारी वर्ग द्वारा उनकी समस्याओं का निराकरण तो दूर अपितु वे उन्हें आर्थिक एव मानसिक कष्ट पहुँचाने म सहायक होते है। इसीके परिणाम स्वरूप शिक्षक अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठता है और उसीका कुप्रभाव छात्रों पर पडता है।

(४) इसका एक महत्वपूर्ण कारण शिक्षक का चयन भी है। आज-कल शिक्षक के रूप मे ऐसे २ व्यक्तियो का चयन हो जाता है, जिनमे इस पद के अनुरूप न तो योग्यता ही होती है, और न व्यवहार कुशलता। फलत छात्रों पर उनका कोई प्रभाव नही पडता और धीरे २ छात्र उद्दण्ड प्रवृत्तियो की ओर अग्रसर होता है

(५) राजनैतिक नेता भी अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति हेतु छात्रो का प्रयोग करते हैं।

अत यदि हमे इस महामारी का निदान करना है तो यह आवश्यक है कि, शिक्षक को मानसिक एव आर्थिक रूप से इतना मुक्त कर दें कि, वह अपनी शक्ति सही रूप से छात्र-हित मे लगा सके।

यह निश्चित है कि, आदर्श छात्र का निर्माण शिक्षक के चरणो मे ही होगा।

अधिकारी वर्ग भी योग्य एव अनुभवी हो, तथा उन्हे चाहिए कि वे छात्रो की समस्याओं पर हठधर्मी न करके उनका समय से पूर्व निराकरण कर सन्तुष्ट करे।

शिक्षको के चयन मे हम पक्षपातपूर्ण एव स्वार्थपूर्ण नीति का प्रयोग न कर योग्य एव अनुभवी व्यक्तियो का ही चयन करें।

प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री डा० कोठ्यारी के अनुसार "यदि हमने एक भी व्यक्ति का शिक्षक के रूप मे गलत चयन कर लिया तो देश का बडा भारी अहित होगा।"

राजनेताओ को भी छात्रो को प्रोत्साहन देकर उन्हें भडकाना नहीं चाहिए। यदि हमने उक्त कारणो एव निदानो का सिंहावलोकन कर इन्हें क्रियान्वित किया तो मेरी यह मान्यता है कि, हम निश्चितरूपेण छात्र आन्दोलन से राहत पा सकेंगें।

मन्त्री
जयपुर जिला शिक्षक संघ,
जयपुर।

हमारे विचारक

•

डॉ० वी के आर वी राव

•

सुप्रसिद्ध अर्थ शास्त्री चेयरमेन, इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ फॉरिन ट्रेड, डाइरेक्टर, इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ इकॉनामिक ग्रोथ, भूतपूर्व उपकुलपति, दिल्ली विश्वविद्यालय, योजना आयोग के सदस्य। अर्थशास्त्र पर अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थो का प्रणयन। सम्प्रति—मन्त्री, जहाजरानी, भारत सरकार।

•

श्री वी वी जॉन

•

प्रबुद्ध विचारक तथा शिक्षा शास्त्री, मेयो कॉलिज अजमेर तथा महाराणा भूपाल कॉलिज के आचार्य। निदेशक, कॉलेज शिक्षा, राजस्थान सरकार। सप्रति अवकाश प्राप्त।

•

डॉ० एस एन. मुकर्जी

•

महाराजा सयाजी राव विश्वविद्यालय, बडौदा मे शिक्षा एव मनोविज्ञान निकाय के डीन, शैक्षणिक अनुसधान एव प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद् के तत्वावधान मे सचालित शिक्षा प्रशासन विभाग के प्रधान, शिक्षक प्रशिक्षको के राष्ट्रीय सगठन के अध्यक्ष, शिक्षा विषयक अनेक ग्रन्थो के प्रणेता, सप्रति—आचार्य, विद्याभवन जी एस. टीचर्स कॉलिज, उदयपुर, राजस्थान।

•

डॉ० सम्पूर्णानन्द

•

प्रधान शिक्षक, डूंगर कॉलेज बीकानेर में प्राध्यापक, अंग्रेजी 'टूडे' तथा हिन्दी 'मर्यादा' पत्रो के संपादक उत्तर प्रदेश प्रान्तीय काग्रेस समिति

के मत्री, २९ वें हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष, प्राध्यापक, काशी विद्यापीठ उ प्र मत्री मडल में कई महत्वपूर्ण विभागों का मत्रीत्व तथा मुख्य मत्रीत्व, राजनीति, इतिहास, दर्शन तथा साहित्य विषयक ३५ पुस्तको के प्रणेता 'समाजवेद' शीर्षक पुस्तक पर मगला प्रसाद पारितोपिक प्राप्त, राजस्थान के भूतपूर्व राज्यपाः सप्रति–अवकाश प्राप्त ।

•

डॉ० मथुरालाल शर्मा

•

आचार्य हर्बर्ट कॉलिज कोटा तथा महाराजा कॉलिज, जयपुर, कई स्थानो पर इतिहास के विभागाध्यक्ष, शिक्षा निदेशक राजस्थान, उपकुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय, सप्रति–अवकाश प्राप्त ।

•

डॉ० वाई वी. दामले

•

सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री, समाजशास्त्र के क्षेत्रीय अनुसधान मे महत्वपूर्ण योग समाज शास्त्र सम्बन्धी महत्वपूर्ण सामग्री का प्रणयन, सप्रति–रीडर, समाज शास्त्र विभाग, डक्कन कॉलिज, पूना महाराष्ट्र ।

डॉ० एस पी रुहेला

•

शिक्षा तथा समाज शास्त्र विषय पर महत्वपूर्ण प्रबन्धो के लेखक । सप्रति–राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसधान एव प्रशिक्षण परिषदान्तर्गत समाज शास्त्र शाखा के प्रधान ।

•

श्री काका साहब कालेलकर

•

पद्मविभूषण दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर गांधीवादी विचारधारा के प्रमुख चिन्तक एव लेखक, कई पत्रों के संपादक, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ

के अध्यक्ष, उपकुलपति—गुजरात विद्यापीठ, ७ भाषाओ के विद्वान् । गुजराती, मराठी, हिन्दी और अंग्रेजी मे लगभग ५० पुस्तको का प्रणयन, 'जीवन व्यवस्था' पुस्तक राष्ट्रीय पुरस्कार से पुरस्कृत । सप्रति सपादक, 'मगल प्रभात' ।

•

श्री ब्रजनन्दन

•

'अरविंद दर्शन' के विचारक, सप्रति 'श्री अरविंद आश्रम' पाडिचेरि मे सेवा-रत ।

•

प्रो० बालकृष्ण नेमा

•

विचारक, लेखक, सप्रति बी० आइ० टी० एस०, पिलानी के दर्शन विभाग मे प्राध्यापक ।

•

श्री प्रभाकर माचवे

•

सुप्रसिद्ध कवि, लेखक, विचारक, कई ग्रन्थो का प्रणयन, सप्रति—सहायक सचिव, साहित्य अकादमी, दिल्ली ।

•

श्री गुरुदत्त

•

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार, दर्जनो लोकप्रिय उपन्याम के प्रणेता ।

•

डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिघवी

•

सुप्रसिद्ध विधिवेत्ता, विचारक, सर्वोच्च न्यायालय के वकील, विजिटिंग प्रोफेसर, लॉ कॉलेज, दिल्ली । सदस्य लोकसभा, सप्रति-संवैधानिक एवं समदीय अध्ययन सस्थान दिल्ली मे प्रधान ।

महामहोपाध्याय भगवानदास माहार

•

भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम के क्रांतिकारी योद्धा, जागरूक विचारक, सम्प्रति बुन्देलखण्ड कॉलेज, झाँसी (मध्य प्रदेश) मे प्राध्यापक ।

•

डॉ० रामानन्द तिवारी 'भारती नन्दन'

•

सुप्रसिद्ध साहित्यकार एव दर्शन शास्त्री, 'पार्वती' महाकाव्य तथा 'सत्यं, शिव, सुन्दरम्' जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थो के प्रणेता, सप्रति–अलवर कॉलेज मे दर्शन विभाग के अध्यक्ष पद पर ।

•

डॉ० चन्द्रशेखर भट्ट

•

अध्यापक, शिक्षणाल॰ निरीक्षक, राष्ट्रीयकृतपाठ्य पुस्तक मडल, राजस्थान के सचिव, संप्रति–उदयपुर स्थित राज्य शिक्षा–सस्थान के उप–निदेशक ।

•

प्रो० शभुसिह मनोहर

•

प्रवुद्ध लेखक तथा विचारक. संप्रति प्राध्यापक हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर,

•

श्री विद्यासागर

•

हिन्दी विस्तार–कार्य से सम्वद्ध लेखक, हिन्दी प्रचार समिति, दिल्ली के सयोजक ।

श्री राकेशदत्त त्रिवेदी

•

इतिहास एव पुरातत्व से सम्वद्ध । पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशन । सप्रति लैक्चरर-गाइड, राष्ट्रीय-सग्रहालय, दिल्ली ।

•

प्रो० एम. वा. माथुर

•

राजस्थान विश्वविद्यालय मे अर्थ शास्त्र के विभागाध्यक्ष, उपकुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय, अर्थशास्त्र विषयक महत्वपूर्ण सामग्री के प्रणेता, शिक्षा आयोग के अध्यक्ष, सप्रति-सयुक्त राष्ट्र सघ के तत्वावधान मे संचालित ऐशिया शैक्षणिक नियोजन तथा प्रशासन सस्थान के प्रधान ।

•

श्री जे. पी नायक

•

शिक्षा क्षेत्र के मर्मज्ञ अनेक प्रबन्धो के प्रणेता, कोठारी शिक्षा आयोग के सदस्य सचिव, कई महत्व पूर्ण पदो पर सफलता पूर्वक कार्य करने के उपरान्त आजकल भारत सरकार के शिक्षा-सलाहकार के पद पर ।

•

डॉ० राजकृष्ण

•

जागरूक विचारक-लेखक विदेशो मे आयोजित कई व्याख्यान मालाओ के वक्ता, अर्थ शास्त्र सम्बन्धी महत्वपूर्ण सामग्री के ख्याति प्राप्त लेखक सप्रति-प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर ।

•

डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय

•

सुप्रसिद्ध लेखक, अनेक पुस्तको के प्रणेता, सप्रति-राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर मे इतिहास विभागाध्यक्ष के पद पर ।

श्री एल. पी श्री वास्तव

उच्च शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं के क्षेत्र मे व्यावहारिक अनुभव प्राप्त, अवकाश प्राप्त सहायक रजिस्ट्रार, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर।

श्री रघुवीर प्रसाद भटनागर

चिन्तक, लेखक, सम्प्रति–प्राध्यापक, अंग्रेजी विभाग, राजस्थान विश्व-विद्यालय, जयपुर।

श्री हनुमान शर्मा

राजस्थान राज्य आरक्षी विभाग के कई महत्वपूर्ण पदो पर, सम्प्रति-महानिरीक्षक, आरक्षी विभाग, राजस्थान जयपुर।

श्री निरजन नाथ आचार्य

राजस्थान के ख्याति प्राप्त वकील, कई सार्वजनिक सस्थाओ के जन्मदाता एव पोषक, राजस्थान के गृह एव शिक्षा मत्रालय मे मत्री, सुविख्यात साहित्यकार, हिन्दी तथा राजस्थानी के माध्यम से साहित्य सेवा, सम्प्रति–अध्यक्ष, राजस्थान विधान सभा, जयपुर।

श्री शिवचरण माथुर

शिक्षा मन्त्री, राजस्थान प्रबुद्ध विचारक एवं राजनीतिज्ञ, कई सार्वजनिक सस्थाओं से सम्बद्ध।

श्री नारायण दत्त तिवारी

•

प्रसिद्ध वक्ता, लेखक, सम्प्रति–संयोजक–भारतीय युवक कांग्रेस।

•

श्री भैरोंसिंह शेखावत

•

सुप्रसिद्ध वक्ता, चिन्तक, राजनीतिज्ञ, अखिल भारतीय जनसंघ के उपाध्यक्ष, सम्प्रति राजस्थान सभा मे जनसंघ दल के नेता।

•

श्री रामानन्द अग्रवाल

•

चिन्तक, राजनीतिज्ञ, राजस्थान साम्यवादी दल के अध्यक्ष।

•

मास्टर आदित्येन्द्र

•

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम के कर्मठ सेनानी, गांधी विचारधारा से प्रभावित, सम्प्रति–राजस्थान प्रजा समाजवादी दल के अध्यक्ष।

•

श्री देवीसिंह मंडावा

•

राजनीतिज्ञ, राजस्थान से स्वतन्त्रदल के लोकसभा–सदस्य।

•

श्री ई० एम० एस० नम्बूदरीपाद

•

महामंत्री, वामपंथी साम्यवादी दल मलयालम और अंग्रेजी मे कई पुस्तको के प्रणेता, सुप्रसिद्ध चिन्तक–लेखक, सम्प्रति–मुख्य मंत्री केरल राज्य।

•

डॉ० मोहनसिंह मेहता

•

सुप्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री, विद्याभवन सोसायटी के सस्थापक, मेवाड राज्यान्तर्गत कई महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदो पर पाकिस्तान तथा स्विटजरलेण्ड मे भारत के राजदूत, राजस्थान विश्व विद्यालय के उपकुलपति, (भूतपूर्व) सप्रति—सेवा मन्दिर 'नामक' सस्था के सचालक।

•

श्री विशनसिंह शेखावत

•

शिक्षक प्रबुद्ध, चिन्तक, प्रधानाध्यापक, रेजिडेन्सी माध्यमिक शाला, जयपुर, महा मत्री, राजस्थान शिक्षक सघ, जयपुर।

•

डॉ० रामविलास शर्मा

•

प्रगतिशील लेखक, प्रबुद्ध चिन्तक सुविख्यात हिन्दी आलोचक—सप्रति अग्रेजी के विभागाध्यक्ष, सैन्ट जॉन्स कॉलेज, आगरा।

•

श्री जनार्दनराय नागर

•

प्रेमचन्द युगीन कथाकार, कई पुस्तको के प्रणेता, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के भूतपूर्व अध्यक्ष मनीषी 'सगम चद्रक' आदि उपाधियो से अलकृत, सप्रति—राजस्थान विद्यापीठ नामक सस्था के सचालक।

•

श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार

•

भारतीय सस्कृति एव दर्शन के विद्वान्, गीता प्रेस गोरखपुर के सचालक एव सुप्रसिद्ध मासिक पत्र 'कल्याण' के यशस्वी सपादक।

•

डॉ० लक्ष्मीलाल के ओड

•

सुप्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री, बुनियादी शिक्षा–क्षेत्र के विद्वान्, लन्दन से शिक्षा मे पी. एच डी उपाधि प्राप्त, शैक्षणिक जगत् के पत्र 'जन–शिक्षण' के सम्पादक, अनेक पुस्तको के प्रणेता सप्रति–प्रोफेसर विद्या भवन गोविन्दराम सेक्सरिया टीचर्स कॉलेज उदयपुर।

•

श्री माणिक्यलाल वर्मा

•

स्वतन्त्रता सग्राम के अग्रगण्य नेता, राजस्थान के सार्वजनिक जीवन से कई सस्थाओ के माध्यम से सम्बद्ध । सुप्रसिद्ध चिन्तक, राजनीतिज्ञ, सम्प्रति–अध्यक्ष, राजस्थान खादी मण्डल।

•

श्री बालगोविन्द तिवारी

•

अध्यापक, शिक्षणालय निरीक्षक, आचाय—राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महा विद्यालय, बीकानेर। निदेशक–राज्य शिक्षा-सस्थान, उदयपुर, सम्प्रति—लोकमान्य तिलक राष्ट्रीय शिक्षक प्रशिक्षण महा विद्यालय, डबोक, उदयपुर राजस्थान विद्यापीठ मे प्राचार्य पद पर।

•

डॉ० (श्रीमती) इन्दु दवे

•

अध्यापक, अमरीका से स्नातकोत्तर उपाधि (शिक्षा मे), मिशीगन विश्वविद्यालय से योग्यता छात्र–वृत्ति, अमरीका से पोस्ट–डॉक्टोरल शोध–कार्य, शोध–कार्य के लिये अमरीकन अन्तरराष्ट्रीय पुरस्कार, विद्या भवन शिक्षक महा विद्यालय, उदयपुर की कार्य० आचार्या, अमरीकन विश्वविद्यालय की राष्ट्रीय सम्मान सोसाइटी मे आमन्त्रित प्रथम विदेशी विदुषी, सम्प्रति—विद्या भवन शिक्षक महा विद्यालय, उदयपुर मे स्नातकोत्तर [illegible] प्रयोजक।